

बाल-पुराण



लेखक

पण्डित रामजीलाल शर्म्मा

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग



बालसखा—पुस्तकमाला, संख्या २२

बाल-पुराण

अठारहों पुराणों की कथाओं का संक्षिप्त वर्णन

लेखक

पण्डित रामजीलाल शर्म्मा

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग

[द्वितीय वार] संं० १९७६ वि० [मूल्य आठ आने

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

पुस्तक-परिचय ।



डियन प्रेस, प्रयाग से "बाल-सखा-पुस्तकमाला" की अब तक २१ पुस्तकें निकल चुकीं । यह "बाल-पुराण" बाईसवीं पुस्तक है ।

'बाल-पुराण' में अठारहों पुराणों की संक्षिप्त कथा-सूची दी गई है। हर एक पुराण की कथाओं के लिखने से पुस्तक बहुत बढ़ जाती, इसी लिए हमने हर पुराण की कथाओं का, अध्यायानुसार, संक्षिप्त वर्णन देना ही उचित समझा। इससे पाठकों को यह मालूम हो जायगा कि किस किस पुराण में कितने अध्याय हैं, कितने श्लोक हैं और कौन कौन सी कथायें हैं। संक्षिप्त कथाओं की सूची लिखने के साथ ही हमने अध्यायों की संख्या भी दे दी है। आशा है, पाठक इस पुस्तक से पुराणों के विषय में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। यदि, इस 'माला' की अन्य पुस्तकों की तरह इस 'बाल-पुराण' को भी पाठकों ने पढ़कर पसन्द किया और इससे पाठकों को कुछ भी लाभ हुआ, तो मैं समझूँगा कि मेरा काम सफल हुआ ।

अभी इस 'पुस्तक-माला' के लिए और भी कितनी ही उपयोगी पुस्तकें लिखने का विचार है। आशा है, पाठक इस 'माला' की पुस्तकों का अधिक प्रचार कर हमारा और प्रकाशक महाशयों का उत्साह बढ़ा कर, हिन्दी-साहित्य की वृद्धि करने में सहायता देंगे ।

८ । ६ । ०८ 

विनीत,

रामजीलाल ।

विषय-सूची ।

बाल-पुराण

हमारे यहाँ संस्कृत में अठारह पुराण प्रसिद्ध हैं। उनमें सैकड़ों नहीं हज़ारों कथायें हैं। उनके नाम ये हैं;—

१ ब्रह्मपुराण

२ पद्मपुराण

३ विष्णुपुराण

४ शिवपुराण (या वायुपुराण)

५ श्रीमद्भागवत (या देवीभागवत)

६ नारदपुराण

७ मार्कण्डेयपुराण

८ आग्नेयपुराण

९ भविष्यपुराण

१० ब्रह्मवैवर्त्तपुराण

११ लिंगपुराण

१२ वाराहपुराण

१३ स्कन्दपुराण

१४ वामनपुराण

१५ कूर्मपुराण
१६ मत्स्यपुराण
१७ गरुड़पुराण
१८ ब्रह्माण्डपुराण

१—ब्रह्मपुराण

अब हम क्रम से एक एक पुराण का वर्णन करते हैं। सबसे पहले 'ब्रह्मपुराण' है। इसमें कुल २४३ अध्याय हैं। ठीक ठीक पता नहीं लगता कि इसमें कुल श्लोक कितने हैं। शिवपुराण में लिखा है कि ब्रह्मपुराण में कुल श्लोक-संख्या १०,००० है। और, देवीभागवत, श्रीमद्भागवत, नारदपुराण और ब्रह्मवैवर्त्त-पुराण में भी इसकी श्लोक-संख्या दस हज़ार ही लिखी है। परन्तु मत्स्यपुराण की राय इनके विरुद्ध है। उसमें ब्रह्मपुराण के श्लोकों की संख्या १३,००० बतलाई गई है। अर्थात् औरों से ३ हज़ार ज़्यादा !

ब्रह्मपुराण दो भागों में बाँटा गया है। पहले भाग में देव, असुर, प्रजापति और दक्ष आदि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। फिर भगवान् सूर्य के वंश की कथा कही गई है। उसी में भगवान् रामचन्द्रजी की कथा विस्तारपूर्वक लिखी गई है। सूर्यवंशी राजाओं की कथा कहने के बाद पीछे चन्द्रवंशी राजाओं का भी हाल लिखा गया है। उसी में भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रजी का चरित लिखा गया है। उसी में सब द्वीप द्वीपान्तर,

समुद्र, वर्ष, पाताल और स्वर्ग का भी वर्णन खूब विस्तार से किया गया है। सब नरकों के नाम, सूर्य की प्रशंसा, पार्वती के जन्म और विवाह की कथा बड़ी मनोहरता से लिखी गई है। फिर दक्ष का और एकाभ्रक्षेत्र का वर्णन किया गया है। बस, पूर्व भाग में इन्हीं कथाओं का वर्णन है।

दूसरे भाग में पहले तीर्थ-यात्रा के विषय में बड़े विस्तार से कथा लिखी गई है। फिर यमलोक का वर्णन करते हुए पितरों के लिए श्राद्ध की विधि लिखी गई है और सब वर्णों के अलग अलग धर्मों का वर्णन किया गया है। इस के पश्चात् वैष्णव धर्म, सत्ययुग आदि चारों युगों की कथा, प्रलय की कथा और ब्रह्म-सम्बन्धी अनेक विषयों की कथा इत्यादि अनेक कथायें लिखी गई हैं।

अध्याय-क्रम से कथा की सूची।

१—मङ्गलाचरण, नैमिषारण्य क्षेत्र का वर्णन, लोमहर्षण मुनि का पुराण-कथनारम्भ।

२—स्वायम्भुव मनु के साथ शतरूपा का ब्याह, प्रियव्रत और उत्तानपाद की उत्पत्ति, दक्ष का जन्म, उत्तानपाद के वंश का वर्णन, राजा पृथु की कथा, प्रचेतागण की उत्पत्ति, दक्ष का जन्म और उसकी सृष्टि की कथा।

३—देव आदि की उत्पत्ति, हर्यश्व और शवलाश्व का जन्म, दक्ष द्वारा साठ कन्याओं की उत्पत्ति, उनकी सन्तान और मरुद्गणों की उत्पत्ति।

४—ब्रह्मा द्वारा देवताओं को अपने अपने देशों में राजतिलक करना, और राजा पृथु का चरित।

५—मन्वन्तरों की कथा, महाप्रलय का वर्णन, छोटे प्रलय की कथा।

६—सूर्यवंश का वर्णन, छाया और संज्ञा का चरित, यमुना आदि सूर्य की कन्याओं की कथा।

७—वैवस्वत मनु का वंश, कुवलयाश्व का चरित, धुन्धुमार और उसके वंशधरों की कथा, सत्यव्रत और गालव की कथा।

८—सत्यव्रत का त्रिशंकु नाम होने का कारण, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, सगर और भगीरथ की कथा और गंगा का भागीरथी नाम होने का कारण।

९—सोम और बुध का चरित।

१०—राजा पुरूरवा का चरित और उस के वंश की कथा, गाधि का चरित, जमदग्नि और परशुराम तथा विश्वामित्र की जन्म-कथा।

११—आयु के पाँच पुत्रों की उत्पत्ति, रजेश्वर-चरित, अनेना का वंश और धन्वन्तरि भगवान् का जन्म, आयुर्वेद का विभाग।

१२—राजा ययाति के वंश की कथा।

१३—पुरुवंश की कथा और कार्तवीर्य अर्जुन का वर्णन और उसको आपव मुनि का शाप लगना।

१४—वसुदेवजी का जन्म और उनकी स्त्रियों के नाम।

१५—ज्यामघ का चरित, बभ्रु और देवावृध की महिमा

का वर्णन, देवक को सात कुमारियों की प्राप्ति की कथा और कंस के जन्म की कथा।

१६—सत्राजित का चरित, स्यमन्तक मणि की कथा, श्रीकृष्ण का जाम्बवती और सत्यभामा के साथ विवाह।

१७—शतधन्वा के हाथ से सत्राजित का मरना और मणि लाकर अक्रूर के पास रखना।

१८—भूगोल और सातों द्वीपों का वर्णन।

१९—भारतवर्ष का वर्णन।

२०—द्वीप-द्वीपान्तरों का वर्णन।

२१—पाताल आदि सातों लोकों का वर्णन।

२२—स्वर्ग और नरक की कथा और रौरव आदि नरकों का वर्णन।

२३—आकाश और पृथिवी की नाप, सूर्यमण्डल और सातों लोकों की लम्बाई-चौड़ाई का हाल तथा महत्त्व आदि की उत्पत्ति।

२४—शिशुमार चक्र और ध्रुवलोक का वर्णन।

२५—शरीर-तीर्थों का वर्णन।

२६—कृष्ण-द्वैपायन का संवाद।

२७—भरतखण्ड और उसके भीतर के पर्वत, नद, नदी और देशों का वर्णन।

२८—औंड्र देश के रहनेवाले ब्राह्मणों की प्रशंसा, कोणादित्य और रामेश्वर-लिंग-वर्णन।

२९—सूर्य की पूजा का माहात्म्य-वर्णन।

३०—सूर्य ही से सारे जगत् की उत्पत्ति का कथन, सूर्य की बारह मूर्त्तियों का वर्णन, मित्र नामक सूर्य और नारद जी का संवाद।

३१—चैत्र आदि महीनों के नाम पर सूर्य के बारह नामों का वर्णन।

३२—अदिति का सूर्य की आराधना करना, सूर्य का दर्शन, अदिति के गर्भ से सूर्य का जन्म, आदि आदि सूर्य के चरित।

३३—ब्रह्मा आदि देवों का सूर्य को वर देना और सूर्य के १०८ नामों की कथा।

३४—रुद्र की महिमा, दाक्षायणी का संवाद और पार्वती की कथा।

३५—उमा और मित्र का संवाद और शिव-पार्वती के संवाद की कथा।

३६–पार्वती के स्वयंवर की कथा, स्वयंवर में सब देवों का आना और शिव के साथ पार्वती का विवाह।

३७—देवताओं का किया हुआ महेश्वर-स्तोत्र, शिव का अपने स्थान में बसना।

३८—शिव के नेत्र की आग से कामदेव का भस्म होना, रति का शिव के वर से अपने अभीष्ट स्थान को जाना और पार्वती के क्रोध को शान्त करने के लिए शिव का बोलना।

३९—दक्ष के यज्ञ के आरम्भ में दधीचि और दक्ष की बातचीत; उमा और महेश्वर का संवाद, वीरभद्र का जन्म,

उसके द्वारा दक्ष के यज्ञ का विध्वंस, शिव को यज्ञ-भाग का मिलना, शिव से दक्ष को वरलाभ और दक्ष का कहा हुआ 'शिवाष्टसहस्रनाम' स्तोत्र।

४०—शिवकृत ज्वर-विभाग।

४१—एकाम्रक्षेत्र का वर्णन।

४२—विरजा क्षेत्र और उसी के भीतर और अनेक तीर्थों की कथा।

४३—अवन्ति-माहात्म्य।

४४—इन्द्रद्युम्न की कथा।

४५—विष्णु कृत सृष्टि का वर्णन, पुरुषोत्तम क्षेत्र में स्थित वटवृक्ष और उसके दक्षिण की ओर विष्णु की मूर्त्ति का वर्णन।

४६—पुरुषोत्तम क्षेत्र, उसकी चित्रोत्पला नदी और दोनों नदियों के किनारे के गाँवों और उनमें रहनेवाले लोगों का हाल।

४७—इन्द्रद्युम्न का यज्ञ के लिए एक बहुत बड़ा महल बनाना।

४८—प्रतिमा-प्राप्ति की इच्छा से इन्द्रद्युम्न का सब भोग-विलासों को छोड़ना।

४९—इन्द्रद्युम्न के द्वारा विष्णु की स्तुति।

५०—चिन्तातुर राजा को स्वप्न में भगवान् का दर्शन।

५१—प्रतिमा-प्राप्ति के उपाय का ज्ञान और विश्वकर्मा द्वारा तीन मूर्त्तियों का लाना।

५२—राजा इन्द्रद्युम्न को विष्णुपद की प्राप्ति, ब्रह्मा के किये हुए पुरुषोत्तम क्षेत्र के बीच में ही पाँच और तीर्थों का वर्णन ।

५३—मार्कण्डेय की कथा, कल्पवट का दर्शन, मार्कण्डेय को भगवान् का दर्शन, और उनसे भगवान् की बात-चीत ।

५४—भगवान् के पेट में मार्कण्डेय का घुसना और वहीं पृथिवी का दर्शन ।

५५—मार्कण्डेय का भगवान् के पेट से बाहर निकलना; और उनके द्वारा भगवान् की स्तुति करना ।

५६—भगवान् के अन्तर्धान हो जाने की कथा ।

५७—मार्कण्डेय-ह्रद की प्रशंसा और पञ्चतीर्थों का वर्णन ।

५८—नरसिंह की पूजा की विधि ।

५९—कपाल गौतम ऋषि के मरे हुए पुत्र के जिलाने के लिए श्वेत राजा की प्रतिज्ञा । श्वेत-माधव के स्थान की कथा और श्वेत के प्रति विष्णु भगवान् का वर देना ।

६०—नारायण-कवच और समुद्र-स्नान की विधि ।

६१—शरीर की शुद्धि और पूजा की विधि ।

६२—समुद्र में स्नान करने का माहात्म्य ।

६३—पंचतीर्थ-माहात्म्य ।

६४—महाज्यैष्ठी-प्रशंसा ।

६५—श्रीकृष्ण के स्नान की विधि और स्नान का माहात्म्य ।

६६—गुण्डियात्रा का माहात्म्य ।

६७—बारह यात्राओं के फल का वर्णन।

६८—विष्णुलोक का वर्णन।

६९—पुरुषोत्तम-माहात्म्य।

७०—चौबीस तीर्थों के लक्षण और गौतमी-माहात्म्य।

७१—गंगा के जन्म की कथा, तारकासुर का वर्णन और कामदेव का भस्म होना।

७२—हिमवान् पर्वत का वर्णन, महादेव का विवाह, गौरी के रूप का दर्शन करके ब्रह्मा की दुर्दशा और उनके ब्रह्मचर्य का खण्डन, उससे बालखिल्य गण की उत्पत्ति और शिव के पास से ब्रह्मा को कमण्डलु का मिलना।

७३—बलि और वामन भगवान् की कथा और गङ्गा का शिव की जटा में समा जाना।

७४—गङ्गा के दो रूपों की कथा, गौतम को गोहत्या का पाप, और उस पाप से छुटकारा पाना और गौतम का कैलाशगमन।

७५—गौतम का किया हुआ उमा-महेश्वरस्तव, गौतम की गङ्गा-प्रार्थना।

७६—पन्द्रह रूप होकर गङ्गा का चलना, गोदावरी के स्नान की विधि।

७७—गौतमी की प्रशंसा।

७८—वसिष्ठ के पुत्र होने की कथा, राजा सगर का अश्वमेध यज्ञ करना, कपिल मुनि के शाप से सगर के पुत्रों का नाश,

असमञ्जस का देश-निकाला, भगीरथ का जन्म और गङ्गा का लाना ।

७९—वाराह-तीर्थ का वर्णन ।

८०—लुब्धक-चरित ।

८१, ८२, ८३—स्कन्द की विषयासक्ति और बुलाई हुई स्त्रियों के माता के समान रूप देखने से विषय को छोड़ना, कुमारतीर्थ की कथा ।

८४—केशरी नामक वानर का दक्षिण के समुद्र में जाना, अञ्जना और अद्रिका के पुत्र होने की कथा और पैशाच नामक तीर्थ का वर्णन ।

८५—क्षुधा-तीर्थ की उत्पत्ति की कथा ।

८६—विश्वधर नामक एक वैश्य की कथा और चक्रतीर्थ की उत्पत्ति की कथा ।

८७—अहल्या के लाने के लिए गौतमजी की पृथ्वी-प्रदक्षिणा, अहल्या और इन्द्र का संवाद, गौतम का अहल्या को शाप, अहल्या को फिर अपने रूप का मिलना और इन्द्र-तीर्थ का वर्णन ।

८८—वरुण और याज्ञवल्क्य का संवाद, जनस्थान-तीर्थ का वर्णन, ऊषा और सूर्य का समागम, उन दोनों से गंगा में कुमार की उत्पत्ति और त्वष्टा से कुमार की बातचीत ।

८९—शेषजी के पुत्र मणिनाग द्वारा शिवजी की स्तुति ।

९०—विष्णु भगवान् के द्वारा गरुड़ के अभिमान का खण्डन करना, गरुड़ के द्वारा विष्णु की स्तुति, गङ्गा के

स्नान से गरुड़ को वज्रदेह का मिलना और विष्णु की प्राप्ति।

९१—गोवर्धनतीर्थ की कथा।

९२—धौतपाप नामक तीर्थ की उत्पत्ति।

९३—विश्वामित्र-तीर्थ या कौशिक-तीर्थ का स्वरूप-कथन।

९४—श्वेताख्यान और यम को फिर जीवन मिलने की कथा।

९५—शुक्रद्वारा शिवजी की स्तुति, और शिवजी से उनको मृतसञ्जीवनी विद्या का मिलना।

९६—मालव देश के नाम का कारण।

९७—वरुण से कुबेर की हार और कुबेर की शिव-स्तुति।

९८—अग्नितीर्थ की उत्पत्ति की कथा।

९९—कक्षीवान् के पुत्रों से तीन ऋणों के छुड़ाने के लिए विवाह कराने का उपदेश. विवाह कराने में उनकी बेपरवाही, उनको गौतमी नदी में स्नान करने के लिए उपदेश।

१००—बालखिल्यगणों का कश्यप से पुत्र पैदा करने की कथा का कहना, सुपर्ण का जन्म, ऋषि-यज्ञ में कद्रू और सुपर्णा का जाना, और ऋषियों के शाप से उसका नदी हो जाना।

१०१—पुरूरवा और उर्वशी अप्सरा की बातचीत, सरस्वती को ब्रह्मा का शाप और स्त्री-स्वभाव का वर्णन।

१०२—मृग का रूप धारण किये हुए ब्रह्मा से व्याध-रूपधारी शिव की बातचीत, सावित्री आदि पाँच नदियों का ब्रह्मा के पास जाना।

१०३—शम्यादि तीर्थों का वर्णन।

१०४—हरिश्चन्द्र की कथा, वरुण देवता की कृपा से उसके पुत्र का होना, उसके रोहित नामक पुत्र के लेने के लिए वरुण की प्रार्थना, रोहित का वन में जाना, अजीगर्त का पुत्र बेचना, अजीगर्त के पुत्र शुनःशेप पर विश्वामित्र का प्रसन्न होना, विश्वामित्र के द्वारा शुनःशेप के बड़ा पुत्र होने की कथा।

१०५—गंगा से मिलनेवाली नदियों का वर्णन।

१०६—देव और दैत्यों की सलाह, समुद्रमन्थन, समुद्र से अमृत का निकलना, विष्णु द्वारा राहु का सिर काटना। राहु का अभिषेक।

१०७—एक बुढ़िया और गौतम ऋषि की बातचीत, गङ्गा के वर से बुढ़िया का फिर जवान हो जाना और गौतम के साथ सहवास।

१०८—इला-तीर्थ की कथा और उसी के साथ इला का चरित।

१०९—चक्रतीर्थ का वर्णन और दक्ष-यज्ञ की कथा।

११०—दधीचि, लोपामुद्रा, दधीचिपुत्र, पिप्पलाद का जीवन-चरित और पिप्पलेश्वर तीर्थ का वर्णन।

१११—नागतीर्थ की कथा, उसी कथा के प्रसंग में सोमवंशी शूरसेन नामक राजा की कथा।

११२—मातृतीर्थ का वर्णन।

११३—ब्रह्मतीर्थ का वर्णन और ब्रह्मा के पाँच मुखों का विदारण और शिव का ब्रह्मशिर का धारण करना।

११४—अविघ्न नामक तीर्थ की कथा।

११५—शेष नामक तीर्थ की कथा।

११६—बड़वा आदि तीर्थों का वर्णन।

११७—आत्मतीर्थ का वर्णन और दत्तात्रेय की कथा।

११८—अश्वत्थ आदि तीर्थों का वर्णन और उसी के प्रसंग में अश्वत्थ और पिप्पल नामक राक्षस की कथा।

११९—सोमतीर्थ का वर्णन, और गंगा द्वारा सोम और अन्य ओषधियों का विवाह-वृत्तान्त।

१२०—धान्यतीर्थ की कथा।

१२१—रेवती का कठ के साथ व्याह।

१२२—पूर्णतीर्थ का वर्णन, धन्वन्तरि का संवाद और बृहस्पति द्वारा इन्द्र का अभिषेक।

१२३—रामतीर्थ वर्णन और इसी के प्रसंग में राम-चरित का वर्णन।

१२४—पुत्र-तीर्थ का वर्णन और ब्रह्मा के पुत्र की कथा।

१२५—यम-तीर्थ की कथा।

१२६—तप के तीर्थ की कथा ।

१२७—देवतीर्थ का वर्णन और आर्ष्टिषेण राजा की कथा ।

१२८—तपोवन आदि तीर्थों का वर्णन और संक्षेप से कार्त्तिकेय का चरित-वर्णन ।

१२९—गङ्गा के सङ्गम का वर्णन, इन्द्र-माहात्म्य, फेन नामक नमुचि दैत्य का मारना, हिरण्य दैत्य के पुत्र महाशनि का मारना, और इन्द्र को कही हुई वृषाकपि की कथा ।

१३०—आपस्तम्ब-चरित और आपस्तम्ब-तीर्थ की कथा ।

१३१—यम-तीर्थ के वर्णन में सरमा की कथा ।

१३२—यक्षिणी-सङ्गम का माहात्म्य, विश्वावसु गन्धर्व की स्त्री की कथा और दुर्गा-तीर्थ का वर्णन ।

१३३—शुक्र-तीर्थ की कथा और भरद्वाज के यज्ञ का वर्णन ।

१३४—चक्रतीर्थ का वर्णन और वसिष्ठ आदि ऋषियों के द्वारा यज्ञ की कथा ।

१३५—वाणीसंगम का आख्यान और उसमें ज्योतिर्लिङ्ग की कथा का प्रसंग ।

१३६—विष्णुतीर्थ का वर्णन और मौद्गल्य की कथा ।

१३७—लक्ष्मीतीर्थ आदि छः हज़ार तीर्थों का वर्णन और उसी के प्रसंग में लक्ष्मी और दरिका की कथा ।

१३८—भानुतीर्थ का वर्णन और राजा शर्याति की कथा ।

१३९—खड्गतीर्थ की कथा और कवष के पुत्र ऐलुष मुनि का चरित ।

१४०—आत्रेय-तीर्थ का वर्णन और आत्रेय ऋषि का चरित्र-वर्णन ।

१४१—कपिलासङ्गम तीर्थ की कथा और कपिलमुनि-पृथुचरित-वर्णन ।

१४२—देवस्थान नामक तीर्थ का वर्णन और उसी के मेल में राहु के पुत्र मेघहास नामक दैत्य की कथा ।

१४३—सिद्धतीर्थ का वर्णन और रावण के तप का प्रभाव ।

१४४—परुष्णी-संगम तीर्थ और उसके प्रसंग में अत्रि ऋषि और उनकी पुत्री आत्रेयी का चरित ।

१४५—मार्कण्डेयतीर्थ की कथा और मार्कण्डेय की महिमा का वर्णन ।

१४६—कालञ्जर-तीर्थ का वर्णन और राजा ययाति की कथा ।

१४७—अप्सरो-युग-संगम-तीर्थ और दो अप्सराओं के द्वारा विश्वामित्र का तपोभङ्ग और विश्वामित्र के शाप से अप्सराओं का नदी हो जाना ।

१४८—कोटितीर्थ का वर्णन और कण्व के पुत्र वाह्लीक की कथा ।

१४९—नारसिंह तीर्थ और नरसिंह के द्वारा हिरण्यकशिपु के मारने की कथा ।

१५०—पैशाच तीर्थ का वर्णन और शुनःशेप के जन्म देने वाले अजीगर्त की कथा ।

१५१—उर्वशी के त्यागे हुए पुरूरवा के प्रति वसिष्ठजी का उपदेश।

१५२—चन्द्रमा के द्वारा तारा (बृहस्पति की स्त्री) का हरण और तारा का उद्धार।

१५३—भावतीर्थ आदि सात तीर्थों का वर्णन।

१५४—सहस्र-कुण्ड आदि तीर्थों की कथा के प्रसंग में रावण को मार कर रामचन्द्रजी का अयोध्या में जाना, वहाँ सीता का वनवास, रामाश्वमेध-यज्ञ की कथा और लव-कुश का वृत्तान्त।

१५५—कपिला-संगम आदि दस तीर्थों की कथा के प्रसंग में अंगिरा को सूर्य का भूमिदान करना।

१५६—शंखतीर्थ आदि दस हज़ार तीर्थों का वर्णन और ब्रह्मा के खाने के लिए आये हुए राक्षसों का विष्णुचक्र के द्वारा मारा जाना।

१५७—किष्किन्धा-तीर्थ का वर्णन, रावण को मार कर सीता के साथ रामचन्द्रजी का गौतमी के पास आना।

१५८—व्यास-तीर्थ की कथा। आङ्गिरस का वर्णन।

१५९—वञ्जरा-संगम और गरुड़ की कथा।

१६०—देवागमतीर्थ और देवासुर-सङ्ग्राम का वर्णन।

१६१—कुश-तर्पणतीर्थ और विराट की उत्पत्ति की कथा।

१६२—मन्यु पुरुष की कथा।

१६३—ब्रह्मा का रूप धारण करनेवाले परशु नामक राक्षस और शाकल्य की कथा।

१६४—राजा पवमान और चिञ्चिक पक्षी का संवाद।

१६५—भद्रतीर्थ और एक कन्या के विवाह की कथा।

१६६—पतत्रितीर्थ का वर्णन।

१६७—भानु आदि सौ तीर्थों का वर्णन।

१६८—अभिष्टुत राजा के अश्वमेध-यज्ञ का वर्णन।

१६९—वेद नामक एक द्विज और शिवपूजक व्याध की कथा।

१७०—चक्षुतीर्थ और गौतम तथा कुण्डलक नामक वैश्य की कथा।

१७१—उर्वशी-तीर्थ और इन्द्र तथा प्रमति की कथा।

१७२—सामुद्र-तीर्थ और गंगा तथा सागर का संवाद।

१७३—भीमेश्वरतीर्थ और सात तरह से बहनेवाली गङ्गा की कथा।

१७४—गङ्गासागर-सङ्गम, सोमतीर्थ और बार्हस्पत्य आदि तीर्थों की कथा।

१७५—गौतमी-माहात्म्य और गङ्गावतरण की कथा।

१७६—अनन्त वासुदेव का माहात्म्य, देवों के साथ रावण का युद्ध और राम और रावण की लड़ाई।

१७७—पुरुषोत्तम-माहात्म्य।

१७८—कण्डु-मुनि का चरित।

१७९—व्यासजी से श्रीकृष्णावतार का प्रश्न।

१८०—कृष्ण-चरित का आरम्भ।

१८१—अवतार लेने का प्रयोजन, कंस द्वारा देवकी का कारागार (जेल) में डालना।

१८२—ईश्वर की माया से देवकी का गर्भ, रोहिणी के पेट में गर्भस्थिति, देवकी के उदर में भगवान् श्रीकृष्ण का आना, देवकी से श्रीकृष्ण की बातचीत, वसुदेव का गोकुल में जाकर श्रीकृष्ण को वहीं छोड़ आना, माया का आकाश में जाकर कंस के डराने के लिए भविष्य-कथन, देवगणों के द्वारा माया की स्तुति।

१८३—बालकों के मारने के लिए कंस का दैत्यों को भेजना और वसुदेव तथा देवकी को बन्धन से छुड़ाना।

१८४—वसुदेव और नन्द की बातचीत, पूतना का मारना, शकट का मारना, गर्ग ऋषि द्वारा बालकों का नामकरण संस्कार, यमलार्जुन-वृक्षों का उखाड़ना, कृष्ण की बाल-लीला।

१८५—कालिय-नाग-दमन।

१८६—धेनुकासुर-वध।

१८७—राम और कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन।

१८८—इन्द्र का गोकुल के नाश करने के लिए मेघों को भेजना, श्रीकृष्ण का गोवर्धन पर्वत को उठाना, इन्द्रकृत श्रीकृष्ण-स्तुति, इन्द्र से श्रीकृष्ण की बातचीत और गोवर्धन-याग।

१८९—रासलीला और अरिष्टासुर का वध।

१९०—कंस और नारद का संवाद, अक्रूर का भेजना और केशी का वध।

१९१—गोकुल में अक्रूर का जाना।

१९२—श्रीकृष्ण और अक्रूर की बातचीत, बलदेवजी और श्रीकृष्ण का मथुरा में जाना।

१९३—कुब्जा के साथ कृष्णचन्द्र की बातचीत, चाणूर और मुष्टिक दैत्य का वध, कंसवध और वसुदेव के द्वारा भगवान् की स्तुति।

१९४—वसुदेव और देवकी के पास श्रीकृष्णजी का जाना, कंस के मर जाने पर उसके बाप उग्रसेन को राजगद्दी पर बिठाना, राम और कृष्ण को सान्दीपनि के पास से अस्त्र की प्राप्ति और सान्दीपनि को पुत्र-प्राप्ति।

१९५—राम-कृष्ण का जरासन्ध के साथ युद्ध और जरासन्ध का वध।

१९६—कालयवन की उत्पत्ति, मुचुकुन्द के द्वारा कालयवन का मारा जाना और मुचुकुन्द के द्वारा भगवान् के गुणों का वर्णन।

१९७—मुचुकुन्द को भगवान् का वरदान देना और गोकुल में बलदेवजी का आना।

१९८—वरुण-वारुणी और यमुना-बलदेव का संवाद और बलदेवजी का फिर मथुरा में आना।

१९९—श्रीकृष्ण का रुक्मिणी-हरण और प्रद्युम्न की उत्पत्ति।

२००—शम्बरासुर द्वारा प्रद्युम्न का हरण, शम्बरासुर-वध, प्रद्युम्न का द्वारका को लौट आना और श्रीकृष्ण-नारद का संवाद।

२०१—रुक्मिणी के पुत्रों के नाम, कृष्णचन्द्र की स्त्रियों के नाम और बलदेवजी द्वारा रुक्मिवध।

२०२—कृष्णचन्द्रजी का प्राग्ज्योतिषपुर में जाना और नरकासुर-वध ।

२०३—श्रीकृष्ण और अदिति का संवाद और पारिजात-हरण ।

२०४—इन्द्र-श्रीकृष्ण-संवाद, ऊषा के साथ अनिरुद्ध के विवाह का वर्णन, चित्रलेखा का चित्रनिर्माण-कौशल ।

२०५—बाणासुर के नगर (शोणितपुर) में अनिरुद्ध का लाया जाना ।

२०६—श्रीकृष्ण और बलदेवजी का युद्ध के लिए जाना ।

२०७—पौंड्रक-वासुदेव की कथा, पौंड्रक और काशिराज का वध, श्रीकृष्ण के चक्र से काशीपुरी का दाह, फिर कृष्णचन्द्र के हाथ में चक्र का आना ।

२०८—साम्ब द्वारा दुर्योधन की कन्या का हरण, दुर्योधन आदि के द्वारा साम्ब का पकड़ा जाना, बलदेवजी के साथ कौरवों का युद्ध, बलदेवजो का हस्तिनापुर पर अधिकार करना और कौरवों की प्रार्थना ।

२०९—बलदेवजी के द्वारा द्विविद वानर का वध ।

२१०—श्रीकृष्ण का द्वारका को छोड़ना और प्रभासक्षेत्र में यदुवंश का विध्वंस ।

२११—श्रीकृष्ण की प्रसन्नता से लुब्धक का स्वर्गगमन ।

२१२—रुक्मिणी आदि का परलोकगमन, भीलों के साथ अर्जुन का युद्ध, म्लेच्छों के द्वारा यादवों की स्त्रियों का हरण,

अर्जुन का दुखी होना, अष्टावक्र की कथा, अर्जुन के मुँह से श्रीकृष्णचन्द्र आदि के परलोकगमन का समाचार सुनकर युधिष्ठिर का भाइयों सहित महायात्रा के प्रस्थान को उद्यत होना और परीक्षित को राज्यभार सौंप कर युधिष्ठिर आदि का वनगमन और श्रीकृष्ण-चरित की समाप्ति।

२१३—वाराह-अवतार, नृसिंह-अवतार, वामन-अवतार, दत्तात्रेय-अवतार, जामदग्न्यावतार, श्रीरामचन्द्र-अवतार, श्रीकृष्णावतार और कल्क्यवतार का वर्णन।

२१४—नरक और यमलोक की कथा।

२१५—दक्षिणमार्ग से जानेवाले प्राणियों के क्लेशों का वर्णन, चित्रगुप्त-कृत पाप-वर्णन और पातक के अनुसार नरक की प्राप्ति का कथन।

२१६—श्रीव्यासदेव-कृत धर्माचार का वर्णन और अच्छी गति की प्राप्ति का वर्णन।

२१७—अनेक प्रकार की योनियों में जन्म होने का वर्णन।

२१८—अन्न-दान का माहात्म्य।

२१९—श्राद्ध की विधि।

२२०—श्राद्धकल्प और पिण्डदान।

२२१—सदाचार का वर्णन और ब्राह्मण के रहने योग्य देशों का हाल।

२२२—वर्णधर्म-कथन।

२२३—ब्राह्मणों के शूद्र हो जाने और शूद्रों के उत्तम वर्ण होने का वर्णन, और वर्णसङ्करों का हाल।

२२४—मनुप्रोक्त धर्मों का फल और कर्म-फलों की कथा।

२२५—देवलोक की प्राप्ति और नरक की प्राप्ति का कारण।

२२६—वासुदेव की महिमा, मनु का वंश और वासुदेव की पूजा।

२२७—उर्वशी और एक मूर्ख ब्राह्मण का संवाद और शकटदान की कथा।

२२८—कपाल-मोचन तीर्थ और सूर्य आदि की आराधना, कामदेव की कथा और माया की उत्पत्ति।

२२९—महाप्रलय का वर्णन और कलियुग के भविष्य का कथन।

२३०—द्वापरयुग का अन्त और भविष्य का वर्णन।

२३१—सृष्टि और प्रलय-सम्बन्धी वर्णन।

२३२—प्राकृत लय का स्वरूप वर्णन।

२३३—आत्यन्तिक प्रलय, तीन प्रकार के तापों का वर्णन, और मुक्ति के ज्ञान की महिमा।

२३४—योगाभ्यास का फल।

२३५—योग और सांख्य का वर्णन।

२३६—मोक्ष की प्राप्ति और पञ्च-महाभूतों की कथा।

२३७—सब धर्मों के विशेष धर्मों का वर्णन।

२३८—क्षर-अक्षर के विचार का निरूपण और चौबीस तत्त्वों का वर्णन।

२३९—अभिमानियों के साधनों का वर्णन।

२४०—सांख्य-ज्ञान और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का वर्णन।

२४१—अभेद में सांख्य-योग का वर्णन।

२४२—जनक और वशिष्ठ का संवाद।

२४३—व्यासजी की प्रशंसा, ब्रह्मपुराण के सुनने का माहात्म्य और धर्म की प्रशंसा।

२—पद्मपुराण

यह पुराण पाँच खण्डों में बँटा हुआ है। उन पाँचों खण्डों के नाम ये हैं।

१—सृष्टिखण्ड

४—भूमिखण्ड

३—स्वर्गखण्ड

४—पातालखण्ड

५—उत्तरखण्ड

इन पाँचों खण्डों में क्रम से ८२, १२५, ३९, ११७ और २८२ अध्याय हैं। इन पाँचों खण्डों में सब मिला कर कोई ५५,००० श्लोक हैं। यह खण्ड आदि की सूची गौडीय पाद्मोत्तर-खण्ड और नारदपुराण के अनुसार है, परन्तु पद्मपुराण के सृष्टि-खण्ड में जो सूची दी गई है वह इसके विरुद्ध है। उसमें खण्ड नहीं, पर्व माने हैं। उसके अनुसार पहला पौष्कर-पर्व है जिसमें विराट् पुरुष कि उत्पत्ति कही गई है। दूसरा तीर्थ-पर्व है। उसमें सब ग्रहों

की कथा वर्णित है। तीसरे पर्व में बड़े बड़े दानी राजाओं की कथा लिखी गई है। चौथे पर्व में बड़े बड़े जनों के जीवनचरित और वंश-कथा का वर्णन है और पाँचवें पर्व में मोक्षतत्त्व का वर्णन किया गया है। खुलासा यह है कि पहले पर्व में ब्रह्मा के द्वारा नौ तरह की सृष्टि-रचना, देवता, मुनि और पितरों की कथा है; दूसरे में पर्वतों, द्वीपों और सातों समुद्रों का हाल है; तीसरे पर्व में रुद्रसर्ग और दक्षशाप की कथा है; चौथे में राजाओं की उत्पत्ति की कथा और उनके जीवन-वृत्तान्त भी लिखे हैं; और पाँचवें पर्व में मोक्ष के साधन और मोक्ष-शास्त्र का परिचय इत्यादि वर्णित है।

सृष्टि-खण्ड में इस प्रकार पर्व के होने की कथा देखते हुए और आज कल पद्मपुराण में पर्वों का सर्वथा अभाव देख कर हमें बड़ा आश्चर्य होता है। अच्छा, यह तो हुई पद्मपुराण के सृष्टि-खण्ड की बात। अब उसी पुराण के उत्तरखण्ड की राय सुनिए। उसमें पाँचों खण्डों का ब्यौरा इस तरह है:—

१—सृष्टिखण्ड

२—भूमिखण्ड

३—पातालखण्ड

४—पौष्करखण्ड

५—उत्तरखण्ड

देखिए, यहाँ चौथा पौष्करखण्ड बतलाया गया है पर आज-कल पद्मपुराण में का कहीं नाम-निशान भी नहीं मिलता।

नारद-पुराण में पद्मपुराण के खण्डों की विषय-सूची भी दी

गई है। उसी सूची के अनुसार हम यहाँ पद्मपुराण की कथा का वर्णन लिखते हैं। क्योंकि हर एक अध्याय की सूची देने में बड़ा भारी तूल होजाता। इसलिए हमने संक्षेप से ही कथा-सूची देनी अच्छी समझी। वह इस प्रकार है।

१—प्रथम सृष्टिखण्ड में सृष्टि की रचना के विषय में तरह तरह की कथायें लिखी हैं। इतिहास के साथ साथ विस्तारपूर्वक धर्म की कथायें लिखी गई हैं। फिर पुष्कर-माहात्म्य, ब्रह्मयज्ञ-विधान, वेदपाठी आदि के लक्षण, दान, व्रत, पार्वती का विवाह, तारक की कथा, पुण्यदायक गयादि का माहात्म्य और कालकेय दैत्य का वध, ग्रहों की पूजा और दान इत्यादि कथाओं का वर्णन है।

दूसरे भूमिखण्ड में माता-पिता आदि की पूजा, शिवशर्म की कथा, सुव्रत की कथा, वृत्रासुर के मारने की कथा, पृथु और वेन राजाओं की कथा और धर्म-विचार, पिता की सेवा, नहुष की कथा, ययाति और गुरु तथा तीर्थ का वर्णन, एक राजा और जैमिनि मुनि का संवाद, हुण्ड दैत्य का आश्चर्यजनक चरित, अशोकसुन्दर का वृत्तान्त, विहुंड का वध, और कामोदाख्यान, महात्मा च्यवन और कुण्डल का संवाद, सूत-शौनक के संवाद में भारत-भूमि का सविस्तर वृत्तान्त दिया गया है।

तीसरे स्वर्ग-खण्ड में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, भूमि के साथ और लोकों के ठहरने की कथा, तीर्थों का वर्णन, नर्मदा की उत्पत्ति की कथा, कुरुक्षेत्र आदि पवित्र तीर्थों का वृत्तान्त, कालिन्दी नदी की कथा, काशी, गया और प्रयाग का माहात्म्य-वर्णन,

वर्णाश्रम-धर्मों की कथा, व्यास और जैमिनि का संवाद, समुद्र-मथन की कथा, ऊर्ज और पञ्चाह-माहात्म्य और सर्वापराधभञ्जन स्तोत्र आदि सब पापों के नाश करने वाले उपायों का वर्णन है ।

चौथे पाताल-खण्ड में, रामचन्द्रजी का अश्वमेध यज्ञ करना, राज्याभिषेक, अगस्त्य का आना, पौलस्त्य-चरित, अश्वमेध करने की सलाह, हयचर्या और अनेक राजों की कथा, जगन्नाथ और वृन्दावन का माहात्म्य, श्रीकृष्णावतार की अनेक लीलाओं की कथा; माघ-मास में स्नान, दान और पूजा-पाठ का फल ; पृथ्वी और वाराह का संवाद, यमराज और ब्राह्मण की कथा, राजदूतों का संवाद, कृष्णस्तोत्र, शिवशम्भुसमायोग, दधीचि की कथा, भस्ममाहात्म्य, शिवमाहात्म्य, देवरात-सुत की कथा, पुराण के जानने वाले की प्रशंसा, शिवगीता और भरद्वाज के आश्रम में ठहरे हुए रामचन्द्रजी की कथा है ।

पाँचवें उत्तर-खण्ड में गौरी के प्रति शिवजी का पर्वत-वर्णन, जालन्धर दैत्य की कथा, श्रीशैलमाहात्म्य, राजा सगर की कथा, गङ्गा, प्रयाग, काशी और गया की कथा, २४ प्रकार की एकादशी की कथा, एकादशी-माहात्म्य, विष्णुधर्म, विष्णुसहस्रनाम, कार्त्तिक-व्रत-माहात्म्य, माघस्नान का फल, जंबूद्वीप के अनेक तीर्थों की कथा, साभ्रमती-माहात्म्य, नृसिंह की उत्पत्ति, देवशर्मा आदि की कथा, गीता-माहात्म्य, भक्तों की कथा, श्रीमद्भागवत का माहात्म्य, अनेक तीर्थों की कथा, मन्त्र-रत्न, त्रिपाद-विभूति का वर्णन, मत्स्य आदि अवतारों की कथा, राम-शतनाम और

उनका माहात्म्य, भृगु की परीक्षा और विष्णु भगवान् के वैभव की कथा है।

३—विष्णु-पुराण

तीसरे पुराण का नाम विष्णु-पुराण है। इसमें ६ अंश हैं। इसकी श्लोक-संख्या, जो दूसरे पुराणों में दी गई है, २३ हज़ार है। परन्तु प्रचलित विष्णु-पुराण में इतने श्लोक नहीं हैं। उसमें तो मुशकिल से कोई ७ हज़ार होंगे। १६ हज़ार कम ! किसी किसी की राय है कि ब्रह्मोत्तर-खण्ड को भी विष्णुपुराण का अन्तिम अंश मानना चाहिए। अच्छा, हम ब्रह्मोत्तर को भी थोड़ी देर के लिए, उसमें शामिल कर लें तो भी २३ हज़ार श्लोक पूरे नहीं होते। दोनों को मिलाने पर भी १६ हज़ार ही श्लोक होते हैं। समझ में नहीं आता कि यह क्या गोरखधन्धा है।

अस्तु, अब वर्तमान विष्णुपुराण के ६ अंशों के अध्याय और उनकी कथा-सूची सुनिए।

विष्णुपुराण के पहले अंश में २२, दूसरे में १६, तीसरे में १८, चौथे में २४, पाँचवें में ३८ और छठे में ८ अध्याय हैं। सब मिलाकर कुल १२६ अध्याय हैं। अब क्रमशः हर एक अंश के अध्यायों की कथा-सूची सुनिए।

पहला अंश।

१—पराशर के प्रति मैत्रेय का प्रश्न।

२—विष्णुस्तुति और संसार की सृष्टि की कथा।

३–सृष्टि रचनेवाली ब्रह्मशक्ति का वृत्तान्त और आयु-कथन।

४–कल्प के अन्त में सृष्टि की कथा।

५–देव आदि की सृष्टि।

६–चारों वर्णों की सृष्टि।

७–मानस पूजा की सृष्टि और प्रलय का वर्णन।

८–भृगु की उत्पत्ति की कथा।

९–इन्द्र के प्रति दुर्वासा का शाप, ब्रह्मा के पास देवताओं का जाना, समुद्र-मथन और इन्द्र का लक्ष्मी की स्तुति करना।

१०–भृगु सर्ग आदि फिर सृष्टि-रचना का वर्णन।

११––ध्रुव की कथा।

१२–ध्रुव को वर मिलने की कथा।

१३–राजा वेन और राजा पृथु की कथा।

१४–प्रचेतस आदि की घोर तपस्या।

१५–कण्डु मुनि का चरित और दक्ष की सृष्टि।

१६–मैत्रेय का प्रह्लाद-चरित्र-सम्बन्धी प्रश्न।

१७–प्रह्लाद-चरित।

१८–प्रह्लाद के मारने में हिरण्यकशिपु का वियोग।

१९–प्रह्लाद के प्रति हिरण्यकशिपु के वचन और प्रह्लादकृत विष्णु-स्तुति।

२०–नरसिंह रूप में भगवान् का अवतार और हिरण्यकशिपु का वध।

२१–प्रह्लाद के वंश का वर्णन।

२२–विष्णु की चार तरह की विभूतियां की कथा।

दूसरा अंश।

तीसरा अंश।

३–वेदव्यास के अट्ठाईस नामों का वर्णन ।

४–वेदव्यास का माहात्म्य और वेदों के विभाग की कथा ।

५–यजुर्वेद की शाखाओं का विभाग और सूर्य की स्तुति ।

६–साम और अथर्ववेद की शाखाओं का विभाग, पुराणों के नाम और पुराण के लक्षण ।

७–यम-गीता ।

८–विष्णु की पूजा का फल और चारों वर्णों के धर्म ।

९–चारों आश्रमों के धर्म ।

१०–जातकर्म और कन्या का लक्षण ।

११–गृहस्थ का सदाचार ।

१२–गृहस्थ के आचार का वर्णन ।

१३–मुर्दे का दाह, उसका अशौच, एकोद्दिष्ट श्राद्ध और सपिण्डीकरण ।

१४–श्राद्ध का फल और पितृ-गीता ।

१५–श्राद्ध में भोजन कराने योग्य ब्राह्मण की पहचान और योगी की प्रशंसा ।

१६–श्राद्ध में नपुंसक आदि न देखना ।

१७–नग्न का लक्षण, भीष्म और वशिष्ठ का संवाद, विष्णु की स्तुति और माया-मोह की उत्पत्ति ।

१८–असुरगणों के प्रति माया-मोह का उपदेश, बौद्ध धर्म की उत्पत्ति, नग्न-सम्पर्क-दोष और शतधनु नामक राजा की कथा ।

चौथा अंश ।

१–वंश के विस्तार की कथा, ब्रह्मा और दक्ष आदि की उत्पत्ति, पुरूरवा का जन्म और रेवती के साथ बलदेवजी का विवाह ।

२–इक्ष्वाकु का जन्म, ककुत्स्थवंश, युवनाश्व और सौभरि की कथा ।

३–साँप के मारने का मन्त्र, अनरण्यवंश और सगर की उत्पत्ति ।

४–सगर का अश्वमेध यज्ञ करना, भगीरथ का गङ्गा को लाना, और श्रीरामचन्द्रजी का जन्म ।

५–विश्वामित्र के यज्ञ की कथा और सीताजी की उत्पत्ति और कुशध्वज के वंश का वर्णन ।

६–चन्द्रवंश-कथन, तारा-हरण और तीनों अग्नियों की उत्पत्ति ।

७–राजा पुरूरवा और चन्द्रवंश का वर्णन ।

८–आयु का वंश, धन्वन्तरि की उत्पत्ति और उसका वंश ।

९–रात्रि और दैत्यों की लड़ाई और क्षत्रवृद्धि की वंशावली ।

१०–नहुष-वंश और ययाति की कथा ।

११–यदुवंश और कार्तवीर्य अर्जुन के जन्म की कथा ।

१२–क्रोष्टुवंश की कथा ।

१३–स्यमन्तकमणि की कथा, जाम्बवती और सत्यभामा का श्रीकृष्ण के साथ विवाह और गान्दिनी की कथा ।

१४–शिनि, अम्बक और श्रुतश्रवा के वंश की कथा ।

१५–शिशुपाल की मुक्ति का कारण, श्रीकृष्ण का जन्म और यदुवंशी लोगों की संख्या ।

१६–तुर्क सुवंश का वर्णन ।

१७–द्रुह्यु-वंश की कथा ।

१८–अनुवंश का वर्णन और कर्ण का अधिरथ के पुत्र होने का कारण ।

१९–राजा जनमेजय का वंश और भरत आदि की उत्पत्ति ।

२०–जह्नु और पाण्डु के वंश का वर्णन ।

२१–भविष्य राजाओं का वंश और परीक्षित-वंश ।

२२–इक्ष्वाकु राजवंशी क्षत्रियों का भविष्य वंश-कथन ।

२३–बृहद्वंशीय भविष्य राजवंश का वर्णन ।

२४–प्रद्योतवंशी भविष्य राज-गण का वृत्तान्त, नन्दराज्य, कलि की उत्पत्ति और राजाओं के चरित ।

पाँचवाँ अंश ।

१–वसुदेव और देवकी का ब्याह, ब्रह्मा के पास पृथ्वी का जाना, विष्णु की स्तुति, कंस के मरने के लिए भगवान् के अवतार लेने की प्रतिज्ञा ।

२—यशोदा के गर्भ में योगमाया का और देवकी के गर्भ में भगवान् का प्रवेश और देवताओं का भगवान् और देवकी की स्तुति करना ।

३—श्रीकृष्ण का जन्म, वसुदेव का श्रीकृष्ण को गोकुल में पहुँचाने जाना और कंस के प्रति योगमाया का कथन ।

४—कंस का अपनी रक्षा के लिए उपाय सोचना और वसुदेव तथा देवकी को बन्धन से छुड़ाना।

५—श्रीकृष्ण को मारने के लिए कंस की भेजी हुई पूतना नाम की राक्षसी का मारा जाना।

६—शकट-भंजन और कृष्ण-बलदेव का नामकरण-संस्कार।

७—कालियदमन-लीला।

८—धेनुकासुर का मारना।

९—प्रलम्बासुर-वध।

१०—इन्द्रयज्ञ का उत्सव और गोवर्धन-पूजा।

११—इन्द्र के द्वारा महावृष्टि और श्रीकृष्ण का गोवर्धन-धारण।

१२—श्रीकृष्ण के पास इन्द्र का आना।

१३—राम और गोपी-सङ्गीत।

१४—अरिष्टासुर का वध।

१५—कंस के पास नारद मुनि का आना।

१६—केशी-वध।

१७—श्रीकृष्ण के बुलाने के लिए अक्रूर का वृन्दावन में जाना।

१८—श्रीकृष्ण की मथुरा-यात्रा।

१९—श्रीकृष्ण का धोबी को मार कर माली के घर जाना।

२०—कुब्जा पर प्रसन्न होना, धनुष-शाला में जाना और कंस-वध।

२१—कंस के मारे जाने पर उसके पिता उग्रसेन को राजगद्दी पर बिठाना और मथुरा में सुधर्मा सभा को लाना।

२२—जरासन्ध-पराजय।

२३—कालयवन की उत्पत्ति और उसका वध।

२४—बलदेव की वृन्दावन-यात्रा।

२५—बलदेव का वारुणी-लाभ और यमुना को खींचना।

२६—रुक्मिणी-हरण।

२७—प्रद्युम्न-हरण, मायावती को प्रद्युम्न का मिलना और प्रद्युम्न के हाथ से शम्बर दैत्य का वध।

२८—बलदेवजी के द्वारा रुक्मिणी के भाई रुक्मी का वध।

२९—श्रीकृष्ण को सोलह हज़ार स्त्रियों के मिलने की कथा।

३०—पारिजात-हरण और इन्द्र आदि का युद्ध।

३१—इन्द्र की क्षमा-प्रार्थना और द्वारिका-गमन।

३२—बाणासुर-युद्ध के प्रसंग में उषा का स्वप्न-वर्णन।

३३—अनिरुद्ध-हरण, शिव-युद्ध और कृष्ण-द्वारा बाणासुर की भुजा का छेदन।

३४—पौंड्रक काशिराज-वध और काशीपुरी का दाह।

३५—लक्ष्मणा-हरण और साम्ब को बन्धन से छुड़ाना।

३६—द्विविद-वध।

३७—मूसल की उत्पत्ति, यदुवंश का विध्वंस और श्रीकृष्ण का वैकुण्ठ-गमन।

३८—कलियुगारम्भ, अर्जुन को व्यास का उपदेश और राजा परीक्षित को राज्याभिषेक।

छठा अंश।

१—कलि के स्वरूप और कलि के धर्मों का कथन।

२—थोड़े से ही धर्म से बहुत फल मिलने की कथा।

३—कल्प की कथा और ब्रह्मा के दिन का वर्णन।

४—प्रलय में ब्रह्मा की स्थिति और प्राकृतिक प्रलय।

५—तरह तरह के दुःखों और नरकों का वर्णन और अद्वितीय ब्रह्म का निरूपण।

६—योग-कथन, केशिध्वज की कथा, धर्मधेनु-वध और खांडिक्य की मन्त्रणा।

७—आत्म-ज्ञान, देहात्म-वाद की निन्दा। योग-प्रश्न, तीन तरह की भावना, ब्रह्मज्ञान, साकार-निराकार-धारणा, खाण्डिक्य तथा केशिध्वज की मुक्ति।

८—विष्णुपुराण की प्रशंसा, विष्णु-नाम-स्मरण का माहात्म्य, फल और विष्णु की महिमा।

४—शिवपुराण।

शिवपुराण को किसी किसी ने वायुपुराण भी कहा है। इस पुराण में, नाम के अनुसार, शिव की महिमा गाई गई है। पर किसी किसी की राय में शिवपुराण और वायुपुराण भिन्न भिन्न हैं।

प्रचलित शिवपुराण में छः संहितायें हैं। उनके नाम ये हैं:—

१—ज्ञान-संहिता ।

२—विद्येश्वर-संहिता ।

३—कैलास-संहिता ।

४—सनत्कुमार-संहिता ।

५—वायवीय-संहिता ।

६—धर्म-संहिता ।

पाँचवीं वायवीय-संहिता में जो शिवपुराण की सूची है, उसके देखने से मालूम होता है, कि शिवपुराण में छः नहीं, बारह संहितायें हैं। उन संहिताओं के नाम श्लोक-संख्या सहित इस प्रकार हैं;—

१—विद्येश्वर-संहिता	श्लोकसंख्या	१०,०००
२—रौद्र-संहिता	,,	८,०००
३—विनायक-संहिता	,,	८,०००
४—औम-संहिता	,,	८,०००
५—मातृ-संहिता	,,	८,०००
६—रुद्रैकादश-संहिता	,,	१३,०००
७—कैलास-संहिता	,,	६,०००
८—शतरुद्र-संहिता	,,	१०,०००
९—कोटिरुद्र-संहिता	,,	१०,०००
१०—सहस्रकोटिरुद्र-संहिता	,,	१०,०००
११—वायुप्रोक्त-संहिता	,,	४,०००
१२—धर्म-संहिता	,,	५,०००

इस हिसाब से शिवपुराण की बारह संहिताओं के श्लोकों की संख्या सब मिला कर एक लाख होती है। परन्तु आज कल के शिवपुराण में सिर्फ़ २४,००० ही श्लोक हैं। शायद किसी ज़माने में यह एक लाखवाला बड़ा शिवपुराण रहा हो; पर आज कल तो वह कहीं मिलता नहीं। अस्तु, प्रचलित शिवपुराण की छहों संहिताओं की अध्यायानुक्रम से विषय-सूची इस प्रकार है;—

१—ज्ञान-संहिता

१—सूत के प्रति ऋषियों का प्रश्न।

२—ब्रह्मा और नारद का संवाद तथा ज्योतिर्लिङ्ग की उत्पत्ति।

३—ओङ्कार की उत्पत्ति, शिव का शब्दमयत्व, ब्रह्मा और विष्णु के साथ शिव की बात-चीत।

४—शिव का प्रसाद, विष्णुकृत शिव की स्तुति, ब्रह्मा और विष्णु के प्रति शिव का वरदान।

५,६—ब्रह्मा का हंसरूप और विष्णु का वराहरूप धारण करने का कारण, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, सृष्टि-निरूपण के लिए ऋषियों की उत्पत्ति।

७—दाक्षायणी का देह-त्याग और शिव की पूजाविधि।

८—मन्त्रों के द्वारा शिव-पूजा-विधि।

९—ब्रह्मा के पास देवताओं का जाना।

१०—ब्रह्मा और देवताओं का संवाद और शिव के तप का वर्णन।

११—कामदेव का भस्म करना और पार्वती का फिर लौटना।

१२—पार्वती की तपस्या।

१३—पार्वती की कठोर तपस्या से अचम्भे में होकर देवताओं और ऋषियों का शिव के पास जाना, ब्रह्मचारी का वेष धारण करके शिव का पार्वती के पास जाना और पार्वती से बातचीत।

१४—महादेव-पार्वती का संवाद।

१५—शिव के विवाह का उद्योग।

१६—शिव की बरात का हिमालयनगर में जाना।

१७—शिव के विरूप को देख कर पार्वती की माता मेनका का खेद करना और पार्वती को ज्ञानोपदेश करना।

१८-१९—पार्वती का विवाह, कार्त्तिक का जन्म, उनका देवताओं का सेनापति बनाना और तारक-वध।

२०—त्रिपुर दैत्य के मारने के लिए विष्णु का उपाय करना।

२१—मुण्डन दैत्य को मोह पैदा करना।

२२—विष्णु आदि देवों द्वारा शिव की स्तुति।

२३—विश्वकर्मा के बनाये दिव्य रथ में चढ़ कर शिव का त्रिपुर दैत्यको मारना।

२४—देवताओं द्वारा शिवस्तुति और वर मिलना।

२५—शिवलिङ्ग-पूजा-विधि।

२६—देवताओं के प्रति ब्रह्मा का शिव-पूजा-विधि-वर्णन।

२७—शिव-पूजा-विधि।

२८—षोडशोपचार से शिव-पूजा की विधि।

२६—शिव-पूजा का विशेष-फल-कथन।

३०—शिवपूजा में केतकी के पुष्प शामिल न होने के लिए सीता जी का शाप और रामचरित-वर्णन।

३१—ब्राह्मण और चम्पक पुष्प के प्रति नारद का शाप।

३२—गणेश-चरित।

३३—गणेश के द्वारा शिवजी के गणों का पराजय और शिवजी के द्वारा गणेश का सिर कटना।

३४—गणेश के शिर काटने की बात सुन कर पार्वती का क्रोध, शिव द्वारा गणेश को ज़िन्दा कराना और गणों का नेता बनाना।

३५—विवाह के विषय में गणेश और कार्त्तिक का झगड़ा और गणेश की जीत।

३६—गणेश का विवाह सुन क्रोध में भर कर कार्त्तिक का पर्वत पर चला जाना।

३७—रुद्राक्ष-धारण का माहात्म्य।

३८—प्रधान प्रधान शिव-चिह्नों का पूजन।

३९—नन्दिकेश-तीर्थ का वर्णन और गोवत्स-संवाद।

४०—नन्दिकेश-तीर्थ का माहात्म्य।

४१, ४२—अत्रीश्वर महादेव का माहात्म्य।

४३—शिव-चिह्नों का इतिहास और पूजा-विधि।

४४—शिवरात्रि के व्रतभङ्ग हो जाने पर दधीचि के पुत्र को दोष लगना।

४५—सोमेश्वर की कथा।

४६—महाकाल और ओङ्कारेश्वर की उत्पत्ति।

४७—केदारेश्वर का वर्णन।

४८—भीमशङ्कर की उत्पत्ति।

४९—विश्वेश्वर-माहात्म्य।

५०—गौरी के प्रति शिव का काशी-माहात्म्य-वर्णन।

५१—काशी में मरने से ही मोक्ष-प्राप्ति की कथा।

५२—गौतम की तपस्या और उसका माहात्म्य।

५३—गौतम को दुख देने के लिए ब्राह्मणों द्वारा गणेश-पूजा और गौतम-चरित।

५४—गौतम की प्रशंसा, गङ्गा की स्थिति, कुशावर्त-सम्भव, और त्र्यम्बक-माहात्म्य।

५५—रावण की तपस्या और वैद्यनाथ की उत्पत्ति।

५६—नागेश-माहात्म्य।

५७—रामेश्वर का माहात्म्य।

५८—घुश्मेश्वर शिव का माहात्म्य।

५९—वराहरूप धारण करके हिरण्याक्ष को मारना और प्रह्लादचरित।

६०—प्रह्लाद और उसके पिता हिरण्यकशिपु की बातचीत।

६१—नृसिंह-चरित और हिरण्यकशिपु का वध।

६२—नल-जन्मान्तर की कथा।

६३—पाण्डवों के द्वारा दुर्वासा की सन्तुष्टि।

६४—अर्जुन की तपस्या और इन्द्र से भेंट करना।

६५—शिव और अर्जुन के हाथ से मूक नामी दैत्य का वध।

६६—भील का रूप धारण करके शिव का अर्जुन के पास आना।

६७—भील-रूपधारी शिव के साथ अर्जुन का युद्ध करना और वर-प्राप्ति।

६८—मिट्टी के शिव की पूजन-विधि।

६९—बिल्वेश्वर-माहात्म्य।

७०—शिवद्वारा विष्णु को सुदर्शन-चक्र का मिलना।

७१—शिव के हज़ार नाम।

७२—विष्णु के प्रति शिव का, शिवरात्रि-व्रत का, उपदेश।

७३—शिवरात्रि के व्रत का उद्यापन।

७४—व्याधद्वारा शिवरात्रि-व्रत की प्रशंसा।

७५—शिवरात्रि-व्रत का फल सुनने से महापापी वेदनिधि ब्राह्मण की मुक्ति।

७६—चार प्रकार की मुक्ति और ब्रह्मज्ञान की कथा।

७७—शिव के द्वारा विष्णु आदि देवताओं की उत्पत्ति।

७८—शिवभक्तों की कथा।

२—विद्येश्वर-संहिता

१—साधन और साधन करने योग्य का वर्णन।

२—मनन आदि का कथन।

३—शिवपूजन का कथन।

४—ब्रह्मा और विष्णु को युद्ध में भिड़े देख कर देवताओं का शिव के पास आना।

५—तेजोमय शिवलिङ्ग का पैदा होना और उसे देख कर ब्रह्मा और विष्णु का झगड़ा शान्त होना।

६—शिव के रचे हुए वैभव के द्वारा ब्रह्मा का सिर काटना और ब्रह्मा पर शिव का प्रसन्न होना।

७—ब्रह्मा और विष्णु के द्वारा शिव-पूजा।

८—ब्रह्मा और विष्णु के प्रति शिव का ओङ्कार के स्वरूप का कथन।

९—शिवलिङ्ग का बनाना, उसकी प्रतिष्ठा की विधि और मूर्ति-पूजा का वर्णन।

१०—शिवक्षेत्र आदि सेवन का माहात्म्य।

११—ब्राह्मणों का सदाचार और नित्यकर्म।

१२—पञ्चमहायज्ञों का वर्णन।

१३—देशभेद से पूजा का फल।

१४—मिट्टी की मूर्त्ति की पूजा का विधान।

१५-१८—ओङ्कार की महिमा, शिव-पूजाविधि, बन्धन और मोक्ष का वर्णन।

१९—पार्थिवेश्वर-महिमा।

२०—जैसी कामना वैसी पूजा की विधि।

२१—शिव पर बेलपत्र चढ़ाने का माहात्म्य।

२२, २३—भस्म के नाम और रुद्राक्ष-धारण का माहात्म्य।

२४—दो प्रकार की भस्म धारण करने की विधि।

२५—रुद्राक्ष का माहात्म्य।

३—कैलास-संहिता

१—काशी में मुनियों से सूतजी का ओङ्कार के अर्थ का वर्णन।

२—कैलास पर्वत पर बैठे हुए शिव से पार्वती का ओङ्कार का अर्थ पूछना।

३—प्रणव (ओङ्कार) का वर्णन।

४—प्रणव के अर्थ बतानेवाले मन्त्र के बनाने की विधि।

५—प्रणव का उद्धार और उसके पूजन की विधि।

६—शङ्ख-पूजा, गुरु-पूजा और शिव-पूजा का विधान।

७—गुह से वामदेव का ओङ्कार का अर्थ पूछना।

८—प्रणव की उपासना आदि का कथन।

९—प्रणव की उपासना और सप्तन्यास-विधि।

१०—छः तरह के अर्थ का ज्ञान।

११—योगपट्ट आदि का वर्णन।

१२—संन्यासियों के लिए अन्त्येष्टि (मृतक-कर्म) कर्म का कथन।

४—सनत्कुमार-संहिता

१—नैमिष क्षेत्र में सनत्कुमार का आना, व्यास आदि मुनियों का इकट्ठा होना, ऋषियों का शिवपूजा-विषयक प्रश्न।

२—पृथिवी आदि के ठहरने की कथा।

३—जगत् की सृष्टि और सात द्वीपों का वर्णन।

४—नीचे के लोकों का वर्णन और नरक आदि का वर्णन।

५—ऊपर के लोकों का वर्णन और योग की महिमा ।

६—रुद्रमाहात्म्य और शिव की पाँचों मूर्त्तियों की कथा

७—रुद्र की स्तुति और उसका फल ।

८—सनत्कुमार का चरित और उनकी सिद्धि का वर्णन

९—सनत्कुमार का शिव आदि का वर्णन ।

१०—ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और रुद्रलोक का वर्णन ।

११—रुद्र के सात स्थानों का कथन ।

१२—रुद्र के सर्वोत्तम स्थान का वर्णन ।

१३—विभीषण और शिव का संवाद ।

१४—शिव-पूजा और शिव के नाम-कीर्तन का फल ।

१५—स्थान-माहात्म्य-कथन ।

१६—तीर्थों की कथा ।

१७—तीर्थों का माहात्म्य ।

१८—ब्रह्मा, विष्णु और शिव में कौन बड़ा इसका वर्णन ।

१९—शिवलिङ्ग के स्थापन करने का मुहूर्त्त ।

२०—शिव के प्रसन्न करनेवाली पूजा ।

२१—शिव पर चढ़नेवाले पुष्पों का वर्णन ।

२२—न खाने की विधि ।

२३—शिव के प्रसन्न करनेवाले काम ।

२४—लक्षणाष्टमी के व्रत की कथा ।

२५—अन्नदान आदि दानों की महिमा ।

२६—धर्म-कर्मों का उपदेश ।

४६—नन्दी की कठिन तपस्या का वर्णन ।

४७—नन्दी को शिव का वरदान ।

४८—महादेव के याद करते ही देवताओं का उनके प
आना ।

४९—शिव की आज्ञा से नन्दी को गणपति बनाना
स्तुति-कथन ।

५०—नन्दी का विवाह ।

५१—नीलकण्ठ-माहात्म्य ।

५२—त्रिपुर की कथा, देवगण की स्तुति से शिव
प्रसन्न होना ।

५३—त्रिपुर के नाश का उद्योग, नारद के कहने से
आदि का युद्ध करना ।

५४—त्रिपुर-दाह ।

५५—पार्वती के पूछने पर शिव का विप्र-माहात्म्य-कथन ।

५६—सनत्कुमार का पाशुपत योग-कथन ।

५७—देह की नाडियों का वर्णन ।

५८—शुद्ध ज्ञान और ईश्वर की प्राप्ति का प्रकार ।

५९—शिवलोक का वर्णन

५—वायवीय-संहिता

इस संहिता के दो भाग हैं। दोनों में तीस तीस अध्या
हैं। पूर्व-भाग के अध्यायों की कथा इस तरह है :—

१—महादेव की कृपा से कृष्ण के पुत्र होना, देव आदि का वर्णन और पुराणों की प्रशंसा।

२—ऋषियों का ब्रह्मा के पास जाकर शैवतत्त्व सुनना और ब्रह्मोक्त यज्ञ करने के लिए निमिष-क्षेत्र में जाना।

३—नैमिषारण्य में जाकर वायु से कुशल-मंगल पूँछना।

४—पाशुपत-तत्त्व, माया का स्वरूप-वर्णन।

५—शम्भु का कालरूप-कथन।

६—कालमान-कथन।

७—शक्ति आदि की सृष्टि का वर्णन।

८—प्रकृति से सृष्टि का वृत्तान्त।

९—ब्रह्मा का वाराह रूप में जन्म लेना और जगत् की स्थिति।

१०—शिव की कृपा से ब्रह्मा की जगत्-रचना।

११—ब्रह्मा, विष्णु और शिव का आपस में एक दूसरे के वश में रहना।

१२—रुद्रसृष्टि के बाद ब्रह्मा से और सृष्टि रचने के लिए कहना।

१३—ब्रह्मा के कहने से शिव की प्रजा की वृद्धि के लिए चेष्टा।

१४—शक्तिरूपिणी स्त्रियों की रचना।

१५—स्वायम्भुव आदि के द्वारा प्रजा की वृद्धि।

१६—दक्ष-यज्ञ की कथा में पितरों का दक्ष को शाप देना और सती का देहत्याग।

१७—दक्षयज्ञ-विध्वंस के लिए शिव का वीरभद्र और भद्रकाली को उत्पन्न करना।

१८—दक्ष-यज्ञ-विध्वंस।

१९—वीरभद्र के द्वारा विष्णु आदि का पराजय।

२०—ब्रह्मा आदि के द्वारा वीरभद्र की स्तुति, देव आदि का शिव के समीप जाना, छागमुण्ड की कथा।

२१—शुम्भ-निशुम्भ के वध के लिए गौरी का कौशिकी रूप धारण करना।

२२—व्याघ्र के ऊपर पार्वती का अनुग्रह।

२३—गौरी का शिव के पास जाना, व्याघ्र का सोमनन्दी नाम होना।

२४—शिव-पार्वती-संवाद।

२५—तीन तरह के शब्दों के अर्थ का वर्णन।

२६—महर्षियों का शिवचरित्र-वर्णन।

२७—ऋषियों के पूछने पर वायु का शिवतत्त्व और मुक्ति के कारण ज्ञान का उपदेश।

२८—कर्मों के द्वारा पाशुपत योग में मुक्ति मिलने का वर्णन।

२९—पाशुपत व्रत का वर्णन और भस्म की महिमा।

३०—शिव-कृपा से ऋषिकुमार को क्षीरसमुद्र की प्राप्ति।

उत्तर-भाग के अध्यायों की सूची इस प्रकार है:—

१—प्रयाग में मुनि और सूत का संवाद।

२—श्रीकृष्ण के प्रति उपमन्यु का पाशुपत व्रत-कथन।

३—सुरेन्द्र आदि की परीक्षा।

४—ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों को शिवरूप-कथन।

५—सारा जगत् पार्वती-महेश्वर के अंश से दो प्रकार का है—इसका वर्णन।

६—परा और अपरा के भेद से ब्रह्म के दोनों रूपों को एक ही वर्णन करना।

७—ओङ्कार का रूप-कथन।

८—सब देव-देवियों के प्रति, महादेव का वेदसार-कथन।

९, १०—शिव के ११२ अवतारों का वर्णन।

११—पार्वती के प्रति शिव का सब वर्णधर्मों का कथन।

१२—शिव के पाँच अक्षरवाले (ओं नमः शिवाय) मन्त्र का माहात्म्य।

१३—शिव-मन्त्र के ग्रहण करने का प्रकार।

१४—दीक्षाप्रयोग।

१५—शिवपूजा-विधि।

१६—शैवों के मन्त्र-साधन करने का प्रकार।

१७—अभिषेक आदि कराने का प्रकार।

१८—शिवभक्तों का नित्य कर्म।

१९—अन्तर्याग और बहिर्याग का वर्णन।

२०—कई प्रकार से शिव और पार्वती की पूजा।

२१—होमकुण्ड की नापतोल आदि।

२२—महीने महीने में शिवपूजा का विधान।

२३—शिवपूजा का क्रम।

२४—शिवस्तोत्र।

२५—और प्रकार से पूजा।

२६—शिवपूजा के फल से ब्रह्मा आदि को अपने अपने पद की प्राप्ति।

२७—ब्रह्मा और विष्णु के द्वारा शिव के दर्शन की कथा।

२८—शिव की प्रतिष्ठा-विधि।

२९—योग का उपदेश।

३०—मुनियों के निकट शिव के चरित का वर्णन, वायु का छिप जाना, नन्दि का आना और नन्दि का शिवकथा-वर्णन।

९—धर्म-संहिता

१—शिवमाहात्म्य-कथन।

२—श्रीकृष्ण महाराज की शिवमन्त्रदीक्षा।

३—त्रिपुरदाह का वर्णन।

४—अन्धक दैत्य का वध।

५—शुक्र का शिवजी के पेट में जाना, शुक्र के प्रति देवी का प्रसन्न होना और अन्धक-सिद्धि।

६—रुरु नामक दैत्य का वध।

७—गौरी के वेष में अप्सराओं का महादेव के साथ विहार, ऊषा और अनिरुद्ध की कथा और बाणासुर का युद्ध।

८—कामतत्त्व-निरूपण।

९—काम के प्रकार।

१०—काली की तपस्या, आदि दैत्य का वृत्तान्त, वीर के नन्दि रूप में जन्म ग्रहण करने का हेतु, शिव की काम-कथा और शिव की उत्पत्ति।

११—देवताओं के साथ शिवकृत अनेक लीलायें।

१२—महात्मा लोगों की कथा।

१३—विश्वामित्र आदि की काम के जीतने की कथा।

१४—श्रीरामचन्द्रजी के कामाधीन होने की कथा।

१५—नित्यनैमित्तिक शिवपूजा की विधि।

१६—क्रियायोग और उसका फल-कथन।

१७—शिवभक्त की पूजा का फल।

१८—नाना प्रकार के पापों का कथन।

१९—पापों के फलों का वर्णन।

२०—धर्म की कथा।

२१—अन्नदान की विधि।

२२—जलदान, तप और पुराण के पढ़ने का माहात्म्य।

२३—धर्म के सुनने का फल।

२४—महादान का माहात्म्य और धर्मप्रसङ्ग।

२५—सुवर्णदान और पृथ्वीदान की कथा।

२६—हाथी के दान की कथा।

२७—एक दिन की पूजा से शिव के प्रसन्न हो जाने की कथा।

२८—शिव के सहस्र (हज़ार) नाम।

२९—धर्म का उपदेश और तुलापुरुष-दान।

५१—सृष्टिकथन ।

५२—ब्रह्मा-कृत संसार की रचना का वर्णन ।

५३—पृथु के पुत्र आदि की कथा ।

५४—दैत्यों और देवों की विस्तार-पूर्वक सृष्टिरचना ।

५५, ५६—अधिपति की कल्पना और अङ्गवंश की कथा ।

५७—राजा पृथु की कथा ।

५८—मन्वन्तरों की कथा ।

५९—संज्ञा और छाया की कथा ।

६०—सूर्यवंश का वर्णन ।

६१—सत्यव्रत और सगर आदि राजाओं की कथा ।

६२—पितृकल्प और श्राद्ध-कथन ।

६३—पितृसप्तक-वर्णन ।

६४—साधुओं के संग से लोगों की परमगति का लाभ ।

५—भागवत पुराण

भागवत दो हैं। एक श्रीमद्भागवत और दूसरा देवी-भागवत । विष्णु के भक्त श्रीमद्भागवत को पुराणों में गिनते हैं और देवी के भक्त देवीभागवत को। परन्तु हमें इन झगड़ों से कुछ मतलब नहीं। दोनों प्रकार के लोगों की प्रसन्नता के लिए हम यहाँ दोनों भागवतों का वर्णन किये देते हैं।

पहले श्रीमद्भागवत का वर्णन सुनिए । इसमें बारह

स्कन्ध हैं । सब स्कन्धों में ३३५ अध्याय हैं । प्रत्येक स्कन्ध में क्रम से १९, १०, ३३, ३१, २६, १९, १५, २४, २४, ९०, ३१ और १३ अध्याय हैं ।

पहला स्कन्ध ।

१—मङ्गलाचरण, नैमिष क्षेत्र की कथा, ऋषियों का प्रश्न ।

२—ऋषियों के प्रश्न का उत्तर और भगवद्वर्णन ।

३—अवतार-कथा के प्रसङ्ग में भगवान् के चरित्रों का वर्णन ।

३—तप करने पर भी चित्त की सन्तुष्टि न होने पर व्यासजी का भागवत बनाने का आरम्भ करना ।

५—व्यासजी का चित्त प्रसन्न करने के लिए नारदमुनि-कृत भगवद्गुण-कीर्तन ।

६—भगवान् के चरित-कीर्तन का अद्भुत फल ।

७—भागवत के सुनने वाले राजा परीक्षित के जन्म की कथा और उनको गर्भ में ही मारने का उद्योग करने वाले अश्वत्थामा के दण्ड की कथा ।

८,९—अश्वत्थामा के अस्त्र से श्रीकृष्ण द्वारा परीक्षित की रक्षा, कुन्ती की स्तुति, राजा का दुःख-वर्णन, युधिष्ठिर के प्रति भीष्मजी का धर्म-कथन, भीष्म-कृत श्रीकृष्ण-स्तुति और उनकी मुक्ति ।

१०,११—श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर से द्वारिका को जाना और स्त्रियों की की हुई स्तुति ।

१२—द्वारिकावासियों से प्रशंसित पुरी में श्रीकृष्ण का आना और उनकी प्रीति का वर्णन ।

१३—विदुर के कहने से धृतराष्ट्र का स्वर्ग जाने के लिए घर से निकल जाना ।

१४—बुरे बुरे शकुनों को देख कर युधिष्ठिर के जी में सन्देह का होना और अर्जुन के मुँह से श्रीकृष्ण के परमधाम सिधारने का कुसमाचार सुनना ।

१५—परीक्षित को राज्य का सब कारोबार सौंप कर राजा युधिष्ठिर का परलोकगमन ।

१६—राजा परीक्षित के पास कलियुग के सताये हुए धर्म और पृथिवी के आने की कथा ।

१७—परीक्षित-कृत कलिनिग्रह ।

१८—राजा परीक्षित को ऋषि का शाप और वैराग्य होना ।

१९—गङ्गा किनारे शरीर छोड़ने के लिए राजा परीक्षित का मुनियों के साथ आना और उनके पास श्रीशुकदेव जी का आना ।

दूसरा स्कन्ध ।

१—भगवान् के गुण-कीर्तन, श्रवण आदि की महिमा ।

२— विष्णु की भक्ति की महिमा ।

३—विष्णु की भक्ति की कथा सुन कर राजा परीक्षित की भगवद्धर्म-श्रवण में अधिक रुचि ।

४—श्रीहरिचेष्टित सृष्टिविषय में राजा परीक्षित का प्र
ब्रह्म-नारद-संवाद में उत्तर देने के लिए शुकदेव का मङ्गलाचरण

५—नारद के पूछने पर हरिलीला और विराट्-सृष्टि क
वर्णन।

६—विराट् पुरुष की विभूति का वर्णन और पुरुषसू
द्वारा ब्रह्मरूप-वर्णन।

७—नारद के प्रति ब्रह्मा का भगवल्लीला-कथन।

८—राजा परीक्षित का पुराण के अर्थ के विषय में प्रश्न।

९—परीक्षित के प्रश्न का उत्तर और शुकदेव के द्वार
भागवत-धर्म-कथन।

१०—भागवत की कथा का आरम्भ।

तीसरा स्कंध।

१—विदुर और उद्धव का संवाद।

२—श्रीकृष्ण के वियोग से दुखी उद्धव का विदुर के पास
जाकर श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन।

३—उद्धव द्वारा श्रीकृष्ण का मथुरा जाना, कंस को मारना
और द्वारिका का वर्णन।

४—भाईबन्धों का मरना सुनकर ज्ञान की बातें सुनने की
इच्छा से, उद्धव के कहने से विदुर का मैत्रेय के पास जाना।

५—विदुर के पूछने पर मैत्रेय का भगवल्लीला और सृष्टि
का कथन और श्रीकृष्णस्तुति।

६—विराट् पुरुष की सृष्टि की कथा।

७—मैत्रेय के प्रति विदुर के अनेक प्रश्न ।

८—जलशायी नारायण की नाभि के कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति ।

९—संसार के रचने की इच्छा से ब्रह्मा का नारायण की स्तुति करना और नारायण का प्रसन्न होना ।

१०—दस तरह की सृष्टि का वर्णन ।

११—परमाणु से लेकर काल-वर्णन, युग और मन्वन्तरों का परिमाण ।

१२—ब्रह्मा की सृष्टि

१३—वाराह अवतार के द्वारा जल में डूबी हुई पृथ्वी का उद्धार और हिरण्याक्ष दैत्य का वध ।

१४—कश्यप से दिति के गर्भ-स्थिति ।

१५—ब्रह्मा के द्वारा वैकुण्ठ-वासी नारायण के सेवकों को शाप मिलने का वर्णन ।

१६—भगवान् का उन दुखी ब्राह्मणों को समझाना, उन दोनों सेवकों पर भगवान् का अनुग्रह करना और शाप के कारण वैकुण्ठ से उनका गिरना ।

१७—उन दोनों सेवकों का पृथ्वी पर राक्षस बन कर जन्म लेना, और हिरण्याक्ष का अद्भुत प्रभाव ।

१८—वाराह और हिरण्याक्ष का घोर युद्ध ।

१९—ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर विष्णु का हिरण्याक्ष को मारना ।

२०—मनुवंश का विस्तारपूर्वक कथन करने के लिए सृष्टि का वर्णन ।

२१, २२—मनु की कन्या देवहूति के साथ कर्दम ऋषि का विवाह ।

२३—विमान पर बैठकर देवहूति और कर्दम का आनन्द-विहार ।

२४—देवहूति के गर्भ से कपिल का जन्म ।

२५—माता की आज्ञा से कपिल का भक्ति-विषयक उपदेश ।

२६—प्रकृति और पुरुष की व्याख्या में सांख्यतत्त्व का वर्णन ।

२७—मोक्ष की रीति का वर्णन ।

२८—ध्यान में योग के द्वारा आत्मस्वरूप का ज्ञान ।

२९—भक्तियोग, वैराग्य पैदा करने के लिए संसार की असारता ।

३०—कुटुम्ब-परिवार में फँसे हुए कामी जनों की तामसी गति का वर्णन ।

३१—पाप और पुण्य दोनों के मेल से रजोगुणी मनुष्य की योनि की प्राप्ति का वर्णन ।

३२—धर्म करनेवाले सात्त्विक जनों के, ऊपर के लोकों की प्राप्ति का वर्णन और तत्त्वज्ञानहीन जन का संसार में फिर जन्म लेना ।

३३—कपिल भगवान् के उपदेश से देवहूति को ज्ञानलाभ और जीवन्मुक्ति ।

चौथा स्कन्ध ।

१—मनु की कन्याओं के वंश का अलग अलग वर्णन ।

२–शिव और दक्ष का आपस में वैर भाव।

३—अपने पिता दक्ष का यज्ञोत्सव देखने के लिए सती का हठ।

४–शिव का कहना न मान कर, सती का पिता के घर आना और पिता के अपमान से सती का देहत्याग।

५–सती का मरना सुन कर शिव का क्रोध और वीरभद्र की उत्पत्ति, उसके द्वारा दक्ष-वध।

६–दक्ष को जिला देने के लिए देवताओं का शिव को प्रसन्न करना।

७–दक्ष और शिव के स्तुति करने से भगवान् विष्णु का प्रकट होना और उनकी सहायता से दक्ष का यज्ञ पूर्ण होना।

८–अपनी मौसी के तिरस्कार से क्रोध में भर कर निकले हुए ध्रुव की तपस्या और भगवान् का प्रसन्न होना।

९–भगवान् से वर प्राप्त कर ध्रुव का नगर में आना और राज्य भोगना।

१०–ध्रुव के पराक्रम का वर्णन।

११–यक्षों के साथ ध्रुव का घोर युद्ध, यक्षों का विध्वंस देख कर मनु का रणभूमि में आना और ध्रुव को युद्ध से शान्त करना।

१२–यक्षों पर विजय पाकर ध्रुव का घर लौट आना और यज्ञ करना और अन्त में सबसे ऊपर के लोक में गमन।

१३–ध्रुव के वंश में पृथु के जन्म की कथा और वेन के पिता अङ्ग का वृत्तान्त।

१४–राजा अङ्ग का राजपाट छोड़ वन में जाकर भजन करना, ब्राह्मणों का वेन को राजगद्दी पर बैठाना, वेन का चरित, और अधर्मी वेन का ब्राह्मणों के हाथ से मारा जाना ।

१५–ब्राह्मणों के द्वारा वेन की भुजाओं से पृथु के जन्म की अद्भुत कथा, और उन को राजा बनाना ।

१६–स्त्रीसहित राजा पृथु की प्रजा-कृत स्तुति ।

१७–प्रजा को दुखी देख कर राजा पृथु का पृथ्वी पर कोप, पृथ्वी का प्रसन्न होकर दोहन का वर देना ।

१८–गोरूपिणी पृथ्वी का दोहन करना और ऊँची नीची धरती को जोतने बोने लायक़ बराबर करना ।

१९–पृथु-कृत अश्वमेध यज्ञ, यज्ञ का घोड़ा हर ले जाने वाले इन्द्र के वध के लिए पृथु का उद्योग, ब्रह्मा द्वारा ऐसा करने से रोका जाना ।

२०–यज्ञ में प्रसन्न होकर भगवान् का पृथु को उपदेश, और पृथु-कृत उनकी स्तुति ।

२१–पृथु की दुखी प्रजा को समझाना और धर्म से प्रजा-पालन ।

२२–पृथु के प्रति सनत्कुमार का ज्ञानोपदेश ।

२३–स्त्रीसहित पृथु का वन को जाना और समाधि द्वारा परलोकगमन ।

२४–पृथु के वंश की कथा, प्रचेता आदि की उत्पत्ति और उनको शिवजी के द्वारा रुद्रगीता का उपदेश ।

२५–प्रचेतागणों को तपस्या में लगे देख कर उनके पित

प्राचीनबर्हि के पास नारद मुनि का आना और पुरञ्जन की कथा कह कर संसार में प्रवृत्ति दिलाना।

२६—पुरञ्जन को शिकार खेलने की कथा के बहाने सोने और जागने की दशा का वर्णन।

२७—स्त्री-पुत्र आदि में मन लगाने के कारण पुरञ्जन का ईश्वर से विमुख होना, गन्धर्वयुद्ध, कालकन्या की कथा के द्वारा बुढ़ापे और बीमारी का वर्णन।

२८—पुरञ्जन का देहत्याग, स्त्री की चिन्ता अधिक रहने के कारण स्त्री-शरीर की प्राप्ति, ज्ञान के उदय से मुक्ति का होना।

२६—ऊपर की कथा का सार निकाल कर संसार और उससे मुक्त होने का वर्णन।

३०—तप करने से भगवान् का प्रचेतागणों पर प्रसन्न होना और फिर उनका विवाह करना, राज्य भोगना और सन्तान पैदा करना।

३१—दक्ष को राज्य सौंप कर प्रचेताओं का वनगमन, और नारद की कही हुई मुक्ति का वर्णन।

पाँचवाँ स्कन्ध।

१—प्रियव्रत की कथा।

२, ३—आग्नीध्र-चरित, आग्नीध्र का पूर्वचित्ति नाम की अप्सरा में पुत्र पैदा करना, उस नाभि नामक पुत्र का मङ्गल-चरित। यज्ञ से प्रसन्न होकर भगवान् का नाभि का पुत्र होना स्वीकार करना।

४—नाभि से मेरुदेवी के गर्भ से भगवान् ऋषभ का जन्म और उसके राज्य भोगने का वर्णन।

५—ऋषभ का अपने पुत्रों को मोक्षमार्ग का उपदेश देना।

६—ऋषभ का परलोक-गमन।

७—राजा भरत का विवाह, भगवद्भजन, सब कामों में भगवान् की पूजा।

८—ईश्वर के परम भक्त भरत को हिरन से प्रीति करने के कारण दूसरे जन्म में मृगरूप मिलना और मृत्यु को प्राप्त होना।

९—कर्मानुसार तीसरे जन्म में भरत का जड़रूप ब्राह्मण होना।

१०—जड़भरत और राजा रहूगण की कथा।

११—रहूगण के प्रति जड़भरत का ज्ञानोपदेश।

१२—रहूगण का जड़भरत से अपने सन्देह दूर करना।

१३—रहूगण के वैराग्य को पक्का करने के लिए जड़भरत का 'भवाटवी' वर्णन।

१४—रूपकालङ्कार में वर्णित 'भवाटवी' का स्पष्ट वर्णन।

१५—जड़भरत के वंश का वर्णन।

१६—प्रियव्रत का चरित्र, द्वीप-द्वीपान्तरों का वर्णन, परीक्षित का शुकदेवजी से प्रश्न, जम्बूद्वीप-कथन, मेरु पर्वत का वर्णन।

१७—इलावृत वर्ष के चारों ओर गङ्गा का जाना।

१८—सुमेरु पर्वत के चारों ओर का वर्णन।

१६—किंपुरुष-वर्ष और भारतवर्ष का और उसके सर्वोत्तम होने का वर्णन ।

२०—समुद्र सहित छहों द्वीप, सबकी लंबाई चौड़ाई, और लोकालोक पर्वत का वर्णन ।

२१—सूर्य की गति, राशिसंचार, इत्यादि का वर्णन ।

२२—खगोल में चन्द्रमा और शुक्र के रूप का वर्णन; और उनकी गति के अनुसार मनुष्यों पर शुभाशुभ फलों का मिलना ।

२३—ज्योतिश्चक्र का वर्णन, ध्रुवलोक का वर्णन, शिशुमार-चक्र का वर्णन ।

२४—सूर्य के नीचे रहने वाले राहु का वर्णन, नीचे के लोकों का वर्णन, और उनमें रहनेवाले प्राणियों की कथा ।

२५—पातालवासी शेषनाग का वर्णन ।

२६—दक्षिण दिशा में सब नरकों का वर्णन और वहाँ जानेवाले पापियों की कथा ।

छठा स्कन्ध ।

१—विष्णु के और यम के दूतों की बातचीत, धर्म-निरूपण ।

२—यमदूतों को राम-नाम की अद्‌भुत महिमा सुना कर विष्णु-दूतों का अजामिल को वैकुण्ठ ले जाना ।

३—यमराज का अपने दूतों को समझाना और यह कहना कि तुम लोग भगवद्‌भक्त को मत पकड़ा करो ।

४—प्रजा की रचना करने के लिए दक्ष का हरिभजन ।

५—नारद मुनि का दक्ष की सन्तान को संसार-जाल से छुड़ा कर मुक्तिमार्ग में लगाना। दक्ष का नारद को शाप।

६—दक्ष की ६० कन्याओं के जन्म की कथा।

७—इन्द्र के द्वारा देवगुरु-बृहस्पति का अपमान और बृहस्पति का देवों की पुरोहिताई छोड़ना।

८—नये पुरोहित विश्वरूप द्वारा इन्द्र को नारायण-कवच का उपदेश।

९—वृत्रासुर की कथा।

१०—इन्द्र और वृत्रासुर का युद्ध।

११—वृत्रासुर का युद्ध के लिए देवों को ललकारना।

१२—इन्द्र का वृत्रासुर के साथ घोर युद्ध और वृत्र वध।

१३—वृत्र की हत्या के पाप से इन्द्र का दुखी होना और उस पाप के दूर करने का उपाय।

१४—ईश्वर में वृत्रासुर की भक्ति होने का कारण।

१५—चित्रकेतु की कथा।

१६—चित्रकेतु को नारद मुनि का उपदेश।

१७—पार्वती के शाप से चित्रकेतु का वृत्रासुर बनना।

१८—इन्द्र के द्वारा दिति के गर्भ के उनचास टुकड़े करना।

१९—दिति के पुंसवन व्रत की कथा।

सातवाँ स्कन्ध।

१—हिरण्यकशिपु दैत्य और उसके पुत्र प्रह्लाद के पहले जन्म की कथा।

२—अपने भाई हिरण्याक्ष के मारे जाने पर क्रुद्ध होकर हिर-

ण्यकशिपु का सारे संसार को दुखी करना, हिरण्यकशिपु का सब दैत्यों से यह कहना कि 'तुम साधु लोगों को खूब सताओ'।

३—हिरण्यकशिपु के कठिन तप को देख कर ब्रह्मा का आना और उसको वर देना।

४—वर पाकर हिरण्यकशिपु का सब लोकों को जीतने की इच्छा करना और भगवान् के भक्तों को दुखी करना, सताना।

५—गुरु के उपदेश को न मान, प्रह्लाद का ईश्वर-भजन, ऐसे भक्तशिरोमणि प्रह्लाद को मरवाने के लिए साँप और हाथियों आदि द्वारा अनेक यत्न।

६—अपने साथी बालकों के प्रति प्रह्लाद का ज्ञानोपदेश।

७—नारद के कहे हुए उपदेश सब दैत्य-पुत्रों को सुनाना।

८—प्रह्लाद को मारने का उद्योग करनेवाले हिरण्यकशिपु का नरसिंह भगवान् के हाथ से मारा जाना।

९—नरसिंह भगवान् के क्रोध को शान्त करने के लिए प्रह्लाद का हाथ जोड़ कर स्तुति करना।

१०—नरसिंहजी का प्रह्लाद पर प्रसन्न होना और छिप जाना।

११—मनुष्य-धर्म, आश्रम-धर्म और स्त्री-धर्म का वर्णन।

१२—ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और चारों आश्रमों के धर्मों का वर्णन।

१३—संन्यासी का धर्म, एक परमहंस की कथा, सिद्धों की दशा का वर्णन।

१४,१५—गृहस्थ-धर्मों का वर्णन, देश, काल के भेद से धर्मों का वर्णन, मोक्ष का लक्षण।

आठवाँ स्कन्ध।

१—स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम और तामस इन चार मनुओं का वर्णन।

२—गजेन्द्र-मोक्ष का वर्णन। हाथी और ग्राह की लड़ाई हाथी का दुखी होकर भगवान् को याद करना।

३—भगवान् का प्रसन्न होकर हाथी को बचाना।

४—ग्राह और गजेन्द्र दोनों का अपने अपने शाप से छूटना, ग्राह का गन्धर्व बनना और गजेन्द्र का विष्णुपार्षद।

५—पाँचवें और छठे मनुओं की कथा।

६—देवों और दैत्यों का मिल कर अमृत निकालने का उद्योग।

७—समुद्र-मथन में विष का निकलना, उसे महादेव को पिलाना।

८—समुद्र से लक्ष्मी का निकलना, उसका विष्णु के पास जाना, धन्वन्तरि का अमृत लेकर आना, और विष्णु का मोहिनी रूप धारण करना।

९—मोहिनी-रूप से मोहित होकर दैत्यों का उसके हाथ में अमृत का घड़ा दे देना और दैत्यों को छल कर चाल से उसका देवताओं को ही अमृत पिलाना।

१०—अमृत न मिलने के कारण दैत्यों का देवों के साथ घोर संग्राम और देवों को दुखी देख कर भगवान् विष्णु का प्रकट होना।

११—मरे हुए दैत्यों का शुक्राचार्य द्वारा फिर जिलाया जाना।

१२—मोहिनी रूप भगवान् के द्वारा महादेव को मोह होना।

१३—वैवस्वत आदि मन्वन्तरों का वर्णन।

१४—मनु आदि के कर्तव्यों का वर्णन।

१५—बलि का यज्ञ करना और स्वर्ग को जीतना।

१६—देवमाता अदिति का शोक और कश्यप का उपदेश।

१७—कश्यप के बताये हुए पयोव्रत से अदिति की इच्छा-पूर्त्ति, उसके पुत्र होने की भगवान् की प्रतिज्ञा।

१८—वामनरूप धारण करके भगवान् का राजा बलि के यज्ञ में जाना, बलि का वामन को वरदान।

१९—वामन का बलि से तीन पैर पृथ्वी माँगना, बलि का देना स्वीकार करना, शुक्र का बलि को दान देने से रोकना।

२०—बलि का अपने धर्म से न हटना, वामन का विराट् रूप लेना।

२१—बलि का बन्धन।

२२—वामन भगवान् का बलि के द्वारपाल हो कर पाताल जा बसना।

२३—बलि के पाताल चले जाने पर देवताओं को आनन्द।

२४—मत्स्य भगवान् की लीलाओं का वर्णन।

नवाँ स्कन्ध।

१—वैवस्वत मनु के पुत्र के वंश-वर्णन में इलोपाख्यान।

२—मनु के करूषक आदि पाँच पुत्रों का वर्णन ।

३—सुकन्या की कथा और शर्याति का वंश-वर्णन ।

४—अम्बरीष की कथा ।

५—अम्बरीष-वंश की कथा में शशाद से लेकर मान्धात तक वर्णन ।

६—मान्धाता के जामाता सौभरि की कथा ।

७—मान्धाता के वंशज पुलकुत्स और हरिश्चन्द्र की कथा ।

८—रोहित का वंश-वर्णन और कपिल भगवान् के शाप से सगर के पुत्रों का नाश ।

९, १०—खट्वाङ्ग के वंश में महाराजा रामचन्द्रजी का जन्म और रावण के मारने आदि का कुल हाल ।

११—रावण आदि को मारकर रामचन्द्रजी का अयोध्या में राज्याभिषेक और अश्वमेध यज्ञ करना ।

१२—कुश और इक्ष्वाकु के पुत्र शशाद के कुल का वर्णन ।

१३—निमि का वंश-वर्णन ।

१४—बृहस्पति की स्त्री तारा में चन्द्रमा के द्वारा बुध का जन्म ।

१५—ऐल के वंश में गाधि का जन्म, परशुराम द्वारा कार्तवीर्य अर्जुन का वध ।

१६—परशुराम के पिता जमदग्नि ऋषि का मारा जाना और पिता के मरने के क्रोध से परशुराम का बार बार क्षत्रियों का संहार करना और विश्वामित्र के वंश की कथा ।

१७—आयु के पाँच पुत्रों की कथा, उनमें से चारों का वंश-वर्णन।

१८—नहुष के पुत्र ययाति की कथा।

१९—ययाति का वैराग्य।

२०—दुष्यन्त-तनय भरत की कीर्ति-कथा।

२१—भरत के वंश का वर्णन, रन्तिदेव और अजमीढ आदि का वर्णन।

२२—दिवोदास की कथा, ऋक्षवंशीय राजा, जरासन्ध, दुर्योधन, युधिष्ठिर आदि कौरव-पाण्डवों का वर्णन।

२३—अनुद्रुह्यु और तुर्वसु की वंश-कथा, ज्यामघ की उत्पत्ति, यदु-वंश की कथा।

२४—बलदेव और कृष्णचन्द्र की उत्पत्ति और विदर्भ के वंश की कथा।

दसवाँ स्कन्ध।

१—अपनी बहन देवकी के पुत्र से अपनी मृत्यु होने का वृत्तान्त सुनकर कंस का उसके छः बालकों का मारना।

२—कंस के मारने के लिए देवकी के गर्भ में श्रीकृष्ण का आना और देवताओं की स्तुति।

३—श्रीकृष्ण का जन्म और वसुदेव का उन को गोकुल में पहुँचाना।

४—कंस को डर और बालकों के मारने के लिए उद्योग।

५—नन्द के घर पुत्रोत्सव और नन्द का मथुरा में आना और वसुदेव से मिलाप।

६—पूतना-वध ।

७—शकटासुर-वध की कथा, तृणावर्त्त-वध आदि अद्भु लीलाओं का वर्णन ।

८—श्रीकृष्ण और बलदेवजी का नामकरण-संस्कार, छ से श्रीकृष्ण का मिट्टी खाना और मुँह बाकर उसमें सारे संसा का दर्शन ।

९—श्रीकृष्ण का दही-मक्खन खाना और ओखली बँधना ।

१०—श्रीकृष्ण द्वारा यमलार्जुन का वृक्ष-योनि से छुड़ान और श्रीकृष्ण की स्तुति ।

११—वृन्दावन में जाकर श्रीकृष्ण का गोपालन, वत्सासुर और बकासुर का वध ।

१२—सर्प का रूप बनाये हुए अघासुर का वध ।

१३—ब्रह्मा के द्वारा गोपों और गाय-बछड़ों का हरण और श्रीकृष्ण द्वारा वैसी ही सब चीज़ें रचकर साल भर तक इसी तरह रहना ।

१४—श्रीकृष्ण की अद्भुत लीला से मोहित होकर ब्रह्मा का भगवान् की स्तुति करना ।

१५—धेनुकासुर-वध, कालिय-नाग-दमन और उससे गोपों की रक्षा ।

१६—यमुना के दह में कालिय-दमनलीला ।

१७—यमुना-दह से कालिय का चला जाना ।

१८—श्रीकृष्ण और बलदेवजी के हाथ से प्रलम्बासुर का वध।

१९—मुंजवन में गोपों और गायों की अग्नि से रक्षा करना।

२०—वर्षा और शरद समय का वर्णन, गोपों के साथ रामकृष्ण की अनेक लीलायें।

२१—श्रीकृष्ण का वृन्दावन में जाना और उनकी वंशी की तान सुनकर गोपियों का मोहित होकर गीत गाना।

२२—वस्त्रहरण-लीला।

२३—गोपों का इन्द्रयज्ञ करना।

२४—इन्द्रयाग रोककर गोवर्धन की पूजा कराना।

२५—इन्द्र का कोप और मूसलाधार पानी बरसाना, श्रीकृष्ण-कृत गोवर्धनधारण-लीला।

२६—श्रीकृष्ण की अद्भुत लीला देखकर गोपों का अचम्भा करना।

२७—श्रीकृष्ण का अद्भुत प्रभाव देखकर इन्द्र के द्वारा कृष्णस्तुति।

२८—गोपों को वैकुण्ठ का दर्शन कराना।

२९—रासलीला का आरम्भ।

३०—उन्मत्त होकर गोपियों का श्रीकृष्ण को ढूँढ़ना।

३१—श्रीकृष्ण-लीलाओं का गान और उनके आने की बाट देखना।

३२—श्रीकृष्ण का प्रकट होना और गोपियों को उपदेश।

३३—गोपियों के मण्डल के बीच में खड़े होकर श्रीकृष्ण की क्रीड़ा ।

३४—गोकुल में श्रीकृष्ण-यशोगान ।

३५—अरिष्ट दैत्य का वध ।

३६—नारद के कहने से राम और कृष्ण को वसुदेव के पुत्र समझ कर उनके मारने के लिए कंस की सलाह, कृष्ण के बुलाने के लिए अक्रूर को भेजना ।

३७—केशी और व्योम नामक असुरों का नाश ।

३८—अक्रूर का गोकुल जाना और श्रीकृष्ण से मिलना ।

३९—अक्रूर के साथ श्रीकृष्ण का मथुरा को जाना ।

४०—श्रीकृष्ण को विष्णु समझ कर अक्रूर का स्तुति करना ।

४१—श्रीकृष्ण का मथुरा की सैर करना, धोबी को मारना ।

४२—कुब्जा का कुब्ज दूर करना ।

४३—कंस के द्वारपालों को मारना, मस्त हाथी को मारना, और मल्लयुद्ध में राम-कृष्ण के साथ चाणूर मल्ल की बातचीत ।

४४—कंस के मल्लों को मारकर फिर कंस को मारना, कंस की स्त्री को समझाना और राम-कृष्ण का अपने माता-पिता देवकी और वसुदेव से मिलना ।

४५—श्रीकृष्ण के द्वारा कंस के मारे जाने पर उसके पिता उग्रसेन को राजतिलक ।

४६—उद्धव को व्रज में भेजना, श्रीकृष्ण द्वारा नन्द और यशोदा को समझाना।

४७—श्रीकृष्ण की आज्ञा से व्रज में जाकर उद्धव का गोपियों को समझाना।

४८—कुब्जा का मनोरथ पूरा करना, अक्रूर की मनोरथ-सिद्धि और पाण्डवों को समझाना।

४९—अक्रूर का हस्तिनापुर में जाकर युधिष्ठिर के सब समाचार मालूम करना और आकर सब कथा श्रीकृष्ण को सुनाना।

५०—जरासन्ध के डर से श्रीकृष्ण का पलायन और समुद्र में क़िला बनाकर उसमें जा छिपना। जरासन्ध-वध।

५१—मुचुकुन्द के द्वारा कालयवन का वध।

५२—रुक्मिणी के भेजे हुए ब्राह्मण द्वारा रुक्मिणी के स्वयंवर-विवाह का समाचार सुन कर श्रीकृष्ण का विदर्भ नगर को जाने की तैयारी करना।

५३—रुक्मिणी-हरण।

५४—द्वारका में आकर रुक्मिणी के साथ विधि-पूर्वक विवाह करना।

५५—रुक्मिणी के प्रद्युम्न का जन्म। शम्बर दैत्य के द्वारा प्रद्युम्न का पकड़ा जाना और प्रद्युम्न के हाथ से शम्बर का वध।

५६—श्रीकृष्ण का मणि-हरण, स्यमन्तक मणि की कथा।

५७—शतधन्वा-वध, अक्रूर द्वारा मणि-हरण।

५८—श्रीकृष्ण के और विवाह ।

५६—भौमासुर का मारा जाना ।

६०—श्रीकृष्ण के हँसी करने से रुक्मिणी का रुष्ट होना और श्रीकृष्ण का उनको समझाना ।

६१—श्रीकृष्ण की और कितनी ही सन्तानों का होना। श्रीकृष्ण की सोलह हज़ार एक सौ आठ (१६१०८) स्त्रियों से पैदा हुए पुत्रों का वर्णन, और अनिरुद्ध के विवाह में बलदेवजी के हाथ से रुक्मिणी के भाई रुक्मी का वध ।

६२—ऊषा और अनिरुद्ध के विवाह की कथा के प्रसंग में यादवों और बाण का युद्ध। युद्ध में बाणासुर की भुजा का छेदन।

६३—श्रीकृष्ण की स्तुति ।

६४—नृग का शाप-मोचन ।

६५—बलदेवजी की लीलाओं का वर्णन ।

६६—काशी में आकर पौंड्रक और काशीराज का वध ।

६७—बलदेवजी के द्वारा द्विविद वानर का वध ।

६८—लड़ाई में साम्ब का कौरवों के हाथ पकड़ा जाना और उसे छुड़ाने के लिए बलदेवजी का हस्तिनापुर जाना ।

६६—नारद मुनि के द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति ।

७०—श्रीकृष्ण और नारद की बातचीत ।

७१—उद्धव की सलाह से श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) जाना ।

७२—श्रीकृष्ण और भीमसेन के द्वारा जरासन्ध-वध ।

७३—जरासन्ध के बन्धन से और राजाओं को छुड़ाना ।

७४—युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ। उसमें पहले पूजन होने के कारण श्रीकृष्ण पर शिशुपाल का कोप। श्रीकृष्ण के हाथ से शिशुपाल का वहीं मारा जाना।

७५—युधिष्ठिर की सभा का वर्णन और दुर्योधन का मानभंग।

७६—यादवों और शाल्व का घोर युद्ध। द्युमान् की गदा के लगने से अनिरुद्ध का युद्ध से भाग जाना।

७७—श्रीकृष्ण के हाथ से शाल्व का मारा जाना।

७८—दन्तवक्त्र और विदूरथ-वध। बलदेवजी के द्वारा सूतजी का मारा जाना।

७९—सूत की हत्या को दूर करने के लिए बलदेवजी की तीर्थयात्रा।

८०—श्रीदामा (सुदामा) की कथा।

८१—सुदामा के तन्दुल चाब कर श्रीकृष्ण का उनको महाधनाढ्य बनाना।

८२—सूर्यग्रहण के समय श्रीकृष्ण का कुरुक्षेत्र-गमन और वहाँ जाकर राजा लोगों से बातचीत।

८३—द्रौपदी से श्रीकृष्ण की स्त्रियों का अपने अपने व्याह की कथा कहना।

८४—मुनियों से भेट और वसुदेव आदि का अपने घर जाना।

८५—माता-पिता के कहने से श्रीकृष्ण और बलदेव का

अपने माता-पिता को ज्ञान-दान और मरे हुए बालकों को लाकर अपनी माता को सौंपना।

८६—सुभद्रा-हरण श्रीकृष्ण का जनकपुरी में जाना, वहाँ एक ईश्वरभक्त राजा और ब्राह्मण को सद्गति-प्रदान।

८७—नारद और भगवान् की बातचीत। वेद द्वारा नारायण-स्तुति।

८८—विष्णु-भक्त की मुक्ति।

८९—भृगु का और मुनियों से विष्णु की प्रशंसा करना।

९०—संक्षेप से फिर श्रीकृष्ण-लीला और यदुवंश का वृत्तान्त।

ग्यारहवाँ स्कन्ध।

१—यदुवंश का विध्वंस करने के लिए मूसल के पैदा होने की कथा।

२—नारद, निमि और जयन्त की कथा।

३, ४—मुनियों की माया, उससे छुटकारा, ब्रह्म और कर्म—इन चार बातों का उत्तर।

५—युग युग में भक्ति-हीन लोगों की कथा।

६—वैकुण्ठ में जाने के लिए कृष्ण से उद्धव की प्रार्थना।

७—उद्धव को ज्ञान पैदा करने के लिए परमहंस का इतिहास। आठ गुरुओं का वर्णन।

८—अवधूत-इतिहास के प्रसंग में श्रीकृष्ण द्वारा अवधूत-शिक्षा।

९—कुरर आदि गुरुओं से शिक्षा।

१०—चौबीस प्रकार के गुरुओं की कथा सुनकर उद्धव का ईश्वरतत्त्वज्ञान, देहसम्बन्ध-विचार और आत्मा संसार नहीं है, उससे भिन्न है—इसका वर्णन।

११—भक्त, मुक्त साधु और भक्त का लक्षण।

१२—सत्सङ्ग की महिमा, कर्मानुष्ठान, कर्मों के छोड़ने की व्यवस्था।

१३—सत्य गुण के उदय से ज्ञान का प्रकाश। हंस का इतिहास।

१४—भक्ति का साधन। साधना के साथ ध्यानयोग।

१५—विष्णुपद की प्राप्ति का बाहरी साधन। अणिमा आदि आठ सिद्धियों का वर्णन।

१६—हरि के अवतारों की विभूति का वर्णन।

१७—ब्रह्मचारी और गृहस्थों की भक्ति का लक्षण। परमहंसों के धर्मों का वर्णन।

१८—वानप्रस्थ और संन्यासी का धर्म।

१९—ज्ञान की कथा।

२०—अधिकारी के विशेष गुण और दोष की व्यवस्था। भक्तियोग।

२१—ज्ञान-योग और क्रिया-योग। क्रिया, ज्ञान और भक्ति में अधिकारी कामासक्त जीवों के लिए गुणदोष-व्यवस्था।

२२—तत्त्वसंख्या का विरोध-परिहार। प्रकृति और पुरुष का ज्ञान। जन्म-मरण का वर्णन।

२३—भिक्षु-गीता । अपमान सहने का उपाय । बुद्धि द्वारा मन का रोकना ।

२४—आत्मा और अन्य सब पदार्थों की उत्पत्ति और नाश । सांख्ययोग-निरूपण और मन का मोहनाश ।

२५—सत्त्वादि गुणों का वर्णन ।

२६—कुसंग से योगमार्ग में रुकावट । कुसंग से बचने के लिए ऐल-गीत का वर्णन ।

२७—क्रियायोग का वर्णन । परमार्थ का निर्णय । ज्ञानयोग का वर्णन ।

२८,२९—भक्तियोग का फिर वर्णन । योग का सरल उपाय ।

३०—मूसल की उत्पत्ति । श्रीकृष्ण की वैकुण्ठ जाने की इच्छा । उस मूसल से यदुवंश का संहार ।

३१—यदुवंश को मार कर फिर देवयोनि की प्राप्ति । श्रीकृष्ण का परमधाम सिधारना ।

बारहवाँ स्कन्ध ।

१—कलियुग का प्रभाव । वर्णसङ्करता का वर्णन । मागध-वंशीय भविष्य राजाओं की नामावली । मुक्ति के लिए कृष्णभक्ति का उपदेश ।

२—कलि के दोषों की वृद्धि । कल्कि अवतार की कथा । अधर्मियों का नाश । फिर सत्ययुग का आना ।

३—भूमि-गीता और राज्य के दोषों का वर्णन । पृथ्वी को

अपनी माननेवाले और उसके लिए प्राण देने वाले लोगों के लिए शिक्षा। कलि में हरिभजन की महिमा।

४—हरिभजन से ही संसार-सागर से पार पाने का वर्णन।

५—तक्षक के काटने से राजा परीक्षित को जो डर था उसे ब्रह्मज्ञान द्वारा दूर करने की कथा।

६—राजा परीक्षित की मोक्ष-प्राप्ति। जनमेजय का सर्प-यज्ञ। व्यास की कथा।

७—अथर्ववेद का विस्तार और पुराणों का विभाग। पुराणों के लक्षण। भागवत के सुनने का माहात्म्य।

८—मार्कण्डेय की घोर तपस्या। नारायण की स्तुति।

९—मार्कण्डेय मुनि को प्रलय-समुद्र में माया-शिशु का दर्शन। मुनि का शिशु की देह में चला जाना और बाहर निकलना।

१०—शिव का आना। मार्कण्डेय-सम्भाषण। मार्कण्डेय के लिए शिव का वरदान। मार्कण्डेय ने मनुष्य-योनि में ही जिस प्रकार अमृत प्राप्त किया उसका वर्णन।

११—महापुरुष का वर्णन। हर महीने में सूर्य के अलग अलग अवतारों और नामों की पूजा का वर्णन।

१२—भागवत के पहले स्कन्ध से लेकर अन्त तक की सब कथाओं का अनुक्रम से वर्णन।

१३—क्रमानुसार पुराणों की श्लोक-संख्या आदि का वर्णन। श्रीमद्भागवत के पुस्तक के दान का फल।

देवी-भागवत ।

श्रीमद्भागवत की तरह देवी-भागवत में भी बारह ही स्कन्ध हैं। इसकी भी श्लोक-संख्या १८ हज़ार ही है। इसमें कुल ३१७ अध्याय हैं। अब यथाक्रम उनकी कथाओं की सूची इस प्रकार दी जाती है :—

पहला स्कन्ध ।

१, २—शौनक आदि ऋषियों का सूतजी से पुराण-सम्बन्धी प्रश्न। पुराण सुनने की महिमा। भागवत की प्रशंसा। भगवती की प्रशंसा। पुराण का लक्षण। नैमिषारण्य क्षेत्र की प्रशंसा और माहात्म्य।

३, ४—अठारह महापुराणों के नाम और श्लोक-संख्या, उपपुराणों के नाम। युगानुसार व्यासों की उत्पत्ति की कथा। भागवत-माहात्म्य। शुकदेवजी के जन्म की कथा। नारद और व्यास का संवाद। विष्णु की शक्ति का महत्त्व और देवी-महिमा।

५, ६—हयग्रीव अवतार की कथा। सोते हुए विष्णु के पास देवताओं का जाना। एक कीड़े की उत्पत्ति। विष्णु का सिर कटकर कहीं छिप जाना। देवों द्वारा भगवती की स्तुति। आकाशवाणी। विष्णु के सिर कटने का कारण। हयग्रीव दैत्य का सिर काट कर विष्णु के धड़ में जोड़ना।

७, ८—मधु-कैटभ दैत्यों की कथा, उनकी उत्पत्ति। दोनों दैत्यों को ब्रह्मा का दर्शन। युद्ध के लिए ब्रह्मा के पास आना।

ब्रह्मा द्वारा विष्णु की स्तुति। जब विष्णु न जागे तब देवी की प्रार्थना। विष्णु के शरीर से योग-निद्रा का निकल जाना। देवी की महिमा और उसकी प्रधानता का वर्णन।

९, १०—विष्णु का जागना। विष्णु और मधु-कैटभ का युद्ध। देवी की स्तुति। मधु-कैटभ-वध। शुकदेवजी की उत्पत्ति का प्रश्न। देवी की आराधना के लिए व्यास का वन में जाना। व्यास को घृताची अप्सरा का दर्शन।

११, १२—बृहस्पति की स्त्री तारा के साथ चन्द्रमा का मेल-मिलाप। चन्द्रमा का अपमान। बृहस्पति का तिरस्कार। चन्द्रमा के द्वारा इन्द्र के दूत का तिरस्कार। इन्द्र का चन्द्र के साथ युद्ध का उद्योग। बुध की उत्पत्ति। सुद्युम्न राजा की कथा। उसका इला नाम स्त्री रूप होना। इला के साथ बुध का मेल। पुरूरवा का जन्म। इलाकृत देवी-स्तुति। सुद्युम्न का मोक्ष।

१३, १४–पुरूरवा और उर्वशी का नियम। उर्वशी के लेने के लिए गन्धर्वों का आना। उर्वशी का छिप जाना। कुरुक्षेत्र में पुरूरवा को उर्वशी का दर्शन। घृताची अप्सरा का शुकी (तोती) का रूप धारण करना। शुक की उत्पत्ति। शुक देवजी को गृहस्थ धर्म में लगाने के लिए व्यासजी की प्रेरणा। विवाह के लिए शुकदेवजी की नामंज़ूरी।

१५, १६—शुकदेव का संसार से विराग। व्यास-शुकदेव-संवाद। शुकदेव का भागवत पढ़ना। बरगद (बड़) के पत्ते पर सोनेवाले भगवान् विष्णु को आधा श्लोक सुनाई देना।

भगवती का प्रकट होना। उस आधे श्लोक की महिमा। भागवत धर्म का वर्णन। शुकदेव के विराग को देखकर, किसी जीवन्मुक्त जन के पास उपदेश ग्रहण करने जाने के लिए व्यासजी का आदेश। शुकदेवजी का मिथिला-नगरी में राजा जनक के पास जाने का मनोरथ।

१७, १८—शुकदेव का जनकपुरी जाना। जनक के द्वारपाल से बातचीत। जनक-भवन में जाना। राजा जनक के द्वारा शुक का आदर-सत्कार। शुक के वहाँ जाने का कारण। जनक का उपदेश। परस्पर बातचीत।

१९, २०–शुक का सन्देह दूर होना। शुकदेव का विवाह होना। शुक की तपस्या। भागते हुए शुक के पीछे व्यास का 'पुत्र पुत्र' कहकर भागना। पर्वत और वृक्ष आदि का उत्तर। व्यास और महादेव का समागम। शुक की छाया का दर्शन। पुत्र के शोक में व्यास का अपने जन्मस्थान—द्वीप—में आना। दाशराज का मिलना। शान्तनु की मृत्यु। चित्राङ्गद को राज्यसिंहासन मिलना। चित्राङ्गद और गन्धर्वों का युद्ध। चित्राङ्गद का मारा जाना। विचित्रवीर्य को राजा बनाना। काशिराज की पुत्रियों के स्वयंवर में भीष्मजी का जाना। विचित्रवीर्य की मृत्यु। धृतराष्ट्र, विदुर और पाण्डु की उत्पत्ति की कथा।

दूसरा स्कन्ध।

१, २—सत्यवती की कथा। उपचरि राजा की कथा। मत्स्यगन्धा की उत्पत्ति। पराशर मुनि का आना। कामातुर

मुनि से मत्स्यगन्धा की बातचीत। मत्स्यगन्धा का योजनगन्धा नाम होना। व्यासदेव के जन्म की कथा।

३, ४—महासिष राजा का वृत्तान्त। महामिष और गङ्गा को ब्रह्मा का शाप। आठों वसुदेवों का वसिष्ठ के आश्रम में आना। द्युनामक वसु का वसिष्ठ की गाय चुराना। वसुओं को वसिष्ठ का शाप। गङ्गा के साथ वसुओं का मेल। राजा शन्तनु की उत्पत्ति। गङ्गा के साथ शन्तनु का विवाह। गङ्गा के गर्भ से सात वसुओं की उत्पत्ति। सातों की मृत्यु। आठवें वसु के अवतार, भीष्म की उत्पत्ति। भीष्म को लेकर गङ्गा का कहीं जाकर छिप रहना, शन्तनु को भीष्म का मिलना।

५, ६—शन्तनु को सत्यवती का दर्शन। सत्यवती को प्राप्त करने के लिए उसके पिता धीवर से प्रार्थना। धीवर की प्रतिज्ञा को सुन कर राजा शन्तनु की चिन्ता। शन्तनु और भीष्म का संवाद। भीष्म का धीवर के घर आकर उससे अपने पिता के लिए सत्यवती को माँगना। भीष्म की भीष्म-प्रतिज्ञा। शन्तनु के साथ सत्यवती का विवाह। कर्ण की जन्म-कथा। दुर्वासा का कुन्तिभोज की सभा में आना। कुन्ती को दुर्वासा से मन्त्र-लाभ। कुन्ती के द्वारा सूर्य का बुलाया जाना, कर्ण की उत्पत्ति। कर्ण को गङ्गा में बहादेना। पाण्डु के साथ कुन्ती का विवाह। पाण्डु को मुनि का शाप। युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डवों की उत्पत्ति। पाण्डु का स्वर्गवास। पाँचों पुत्रों को लेकर कुन्ता का हस्तिनापुर आना।

७, ८—परीक्षित की उत्पत्ति। धृतराष्ट्र की वन-यात्रा।

विदुर की परलोक-यात्रा। धृतराष्ट्र की मृत्यु। यादवों और बलदेव तथा श्रीकृष्ण का वैकुण्ठ-गमन। अर्जुन का द्वारका जाना और मार्ग में चोरों के द्वारा लुटना। परीक्षित को राज्याभिषेक। परीक्षित का शमीक मुनि के गले में मरा हुआ साँप डालना। मुनि का शाप। रुरु-वृत्तान्त।

९, १०—रुरु का विवाह। साँप के काटने से रुरु की स्त्री की मृत्यु। रुरु की स्त्री का फिर जी जाना। तक्षक से बचने के लिए परीक्षित का उद्योग। तक्षक का परीक्षित को काटना और परीक्षित की मृत्यु।

११, १२—जनमेजय का राज्यभोग। जनमेजय का विवाह। उत्तङ्क मुनि का हस्तिनापुर में आना। साँपों के नाश के लिए रुरु की प्रतिज्ञा। सर्प-यज्ञ की कथा। आस्तिक द्वारा सर्प-यज्ञ का बन्द कराना। कद्रू और विनता की कथा। कद्रू का साँपों को शाप। गरुड़ का स्वर्ग से अमृत लाना। वासुकि आदि साँपों का ब्रह्मा के पास जाना। आस्तिक की उत्पत्ति की कथा। जनमेजय को भागवत सुनने के लिए व्यासजी का उपदेश।

तीसरा स्कन्ध।

१, २—व्यास से जनमेजय का प्रश्न। ब्रह्मा और नारद का संवाद। ब्रह्मा, विष्णु और शिव के साथ देवी की बातचीत।

३, ४—देवी के दिये हुए विमान में चढ़ कर तीनों देवों का अद्भुत माया का देखना। ब्रह्मा आदि का स्त्री बनना। विष्णु के द्वारा देवी-स्तुति।

५, ६—शिवकृत देवीस्तुति। ब्रह्मा को महासरस्वती का मिलना। शिव को महाकाली का मिलना।

७, ८—निर्गुण सगुण की कथा।

९, १०—सगुण का लक्षण। व्यास से जनमेजय का प्रश्न। सत्यव्रत ऋषि की कथा। देवदत्त ब्राह्मण का, पुत्र के लिए यज्ञ। पुत्रोत्पत्ति। उतथ्य को वैराग्य और वन-गमन।

११, १२—उतथ्य का सत्यव्रत नाम पड़ना। सत्यव्रत का सरस्वती के बीज 'ऐं' का जपना और महाज्ञान की प्राप्ति। देवी की महिमा। अन्वायज्ञ की विधि। जनमेजय को व्यास का उपदेश।

१३, १४—विष्णु के प्रति देववाणी। ध्रुवसन्धि की कथा। ध्रुवसन्धि की मृत्यु। सुदर्शन को राज्य देने की सलाह। युधाजित और वीरसेन का आना।

१५, १६—युधाजित और वीरसेन का युद्ध। वीरसेन का मारा जाना। सुदर्शन की लीलावती का कहीं चला जाना। सुदर्शन का भरद्वाज-आश्रम में रहना। सुदर्शन के मारने के लिए युधाजित का भरद्वाज के आश्रम पर आना। जयद्रथ का द्रौपदी-हरण।

१७, १८—विश्वामित्र की कथा। युधाजित का घर लौट आना। सुदर्शन को कामबीज की प्राप्ति। काशीराज की कन्या शशिकला का सुदर्शन पर प्रेम। शशिकला का स्वयंवर।

१९, २०—सुदर्शन पर शशिकला का गाढ़ प्रेम। शशिकला के स्वयंवर में सुदर्शन आदि अनेक राजाओं का जाना। शशिकला का स्वयंवर-सभा में जाने से मना करना।

२१,२२—शशिकला की सुदर्शन के ही वरने की इच्छा जान कर युधाजित का तिरस्कार। शशिकला के साथ बातचीत। सुदर्शन का विवाह।

२३,२४—काशी से घर लौटते हुए सुदर्शन से लड़ने के लिए राजाओं का आना। घोर युद्ध। देवी की कृपा से युधाजित की मृत्यु। देवी का काशी में रहना। सुदर्शन का अयोध्या लौट आना।

२५,२६—सुदर्शन का अयोध्या में देवी-मन्दिर बनवाना। नवरात्र-व्रत की विधि। सुशील वैश्य की कथा।

२७,२८—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की उत्पत्ति। राम का वन-गमन। मारीच-वध। रावण का आना और सीता-हरण।

२९,३०—सीता की खोज करना। जटायु से बातचीत। सुग्रीव के साथ रामचन्द्रजी की मित्रता।

३१—राम और लक्ष्मण के साथ नारद की बातचीत। नवरात्र-व्रत का उपदेश। रामचन्द्र का नवरात्र-व्रत करना। रामचन्द्रजी से देवी की बातचीत। रावण का वध।

चौथा स्कन्ध।

१,२—श्रीकृष्ण-अवतार की कथा का प्रश्न। कर्म-फल की प्रधानता।

३,४—वरुण का धेनु-हरण। कश्यप का वरुण का शाप।

५,६—पुत्र के लिए दिति का व्रत। अदिति को दिति का शाप। दिति की सेवा में इन्द्र का आना। इन्द्र द्वारा दिति का

गर्भ-च्छेदन। माया की प्रधानता। नर-नारायण की कथा। दो ऋषियों के घोर तप को देख कर इन्द्र की चिन्ता। तप-खंडन करने के लिए इन्द्र का अप्सराओं को भेजना। नर-नारायण के आश्रम में वसन्त ऋतु का होना। बे-समय वसन्त ऋतु को आया जान कर नारायण की चिन्ता। ऋषियों के सामने अप्सराओं का आना। उर्वशी की उत्पत्ति।

७,८—सारे ब्रह्माण्ड को अहङ्कार से भरा हुआ बताना। प्रह्लाद को राज्य-लाभ। प्रह्लाद का नैमिषारण्य में आना।

९,१०—प्रह्लाद को नर-नारायण का दर्शन। प्रह्लाद के साथ नर-नारायण ऋषि का युद्ध। प्रह्लाद के पास विष्णु का आना। प्रह्लाद के साथ विष्णु की बातचीत। प्रह्लाद और इन्द्र का युद्ध।

११,१२—शुक्राचार्य का पुत्र के लिए यत्न करना। शुक्र की तपस्या। देवों से हराये हुए दैत्यों का शुक्र की माता के पास आना और देवों का शुक्र-माता के साथ युद्ध। शुक्र-माता का वध। भृगु को विष्णु का शाप। शुक्र-माता का जी जाना। इन्द्र का अपनी पुत्री जयन्ती को शुक्र के पास भेजना। शुक्र का जयन्ती के साथ विवाह। बृहस्पति का शुक्र-रूप धारण कर दैत्यों में आ मिलना।

१३,१४—दैत्यों को ठगना। शुक्राचार्य का बृहस्पति को ही अपना सा रूप बनाये बैठा देखना। दैत्यों की और शुक्र की बातचीत। दैत्यों को शुक्राचार्य का शाप। प्रह्लाद आदि का शुक्राचार्य के पास आना। शुक्राचार्य का फिर दैत्यों में ही मिल जाना।

१५,१६—देवासुर-संग्राम । देवों की हार । इन्द्र द्वारा देवी-स्तुति । देवी का प्रकट होना । प्रह्लाद द्वारा देवी-स्तुति । दैत्यों का पाताल-गमन । विष्णु के अनेक अवतारों की कथा ।

१७,१८—अप्सराओं और विष्णु का संवाद । उर्वशी को साथ लेकर अप्सराओं का स्वर्ग जाना । कृष्णावतार के सम्बन्ध में जनमेजय का प्रश्न । दुःखित पृथ्वी का स्वर्ग में जाना । ब्रह्मा और विष्णु के पास जाना ।

१९,२०—देवों द्वारा देवी-स्तुति । देवों से देवी का कथन । देवी-महिमा । वसुदेव और देवकी का विवाह । कंस के लिए देव-वाणी । कंस का देवकी को मारने का उद्योग । वसुदेव के समझाने से कंस के हाथ से देवकी का बचना ।

२१,२२—देवकी के पुत्र होना । वसुदेव का कंस को पुत्र देना । कंस के द्वारा वसुदेव के सब पुत्रों का माश । देवकी के छः पुत्रों का नाश । मरीचि-पुत्रों को देवों का शाप । उनका पृथ्वी पर दैत्य-रूप में जन्म लेना । देवों का पृथ्वी पर अवतार लेना ।

२३,२४—देवकी के आठवें गर्भ का होना । देवकी को जेल में रखना । श्रीकृष्ण का जन्म । श्रीकृष्ण को गोकुल में जा बसाना । गोकुल से यशोदा की कन्या का आना । कंस द्वारा कन्या की मृत्यु । कंस के प्रति कन्या की उक्ति । पूतना आदि को गोकुल में भेजना । पूतना-वध । श्रीकृष्ण और बलदेवजी का मथुरा जाना । कंस-वध । श्रीकृष्ण का द्वारिका-गमन । रुक्मिणी-हरण । प्रद्युम्न-हरण ।

२५,२६—जनमेजय और व्यास का परस्पर प्रश्नोत्तर-संवाद ।

श्रीकृष्ण की शिव-पूजा। श्रीकृष्ण को महादेव का बरदान। श्रीकृष्ण से देवी का कथन।

पाँचवाँ स्कन्ध।

१,२—सब देवों में शिव की अधिक प्रधानता का वर्णन। देवी-माहात्म्य-वर्णन। महिषासुर को वर-लाभ। रम्भ और करम्भ की तपस्या। करम्भ-वध। रम्भासुर-वध। महिषासुर और रक्तबीज की उत्पत्ति।

३,४—महिषासुर का युद्ध के लिए तैयारी करना। देवों की सलाह।

५,६—देव-दैत्यों का युद्ध। बिडालाख्य-युद्ध और ताम्रासुर-युद्ध। महिषासुर का युद्ध।

७,८—देव-दैत्यों का घोर युद्ध। महिषासुर का नाना रूप धर कर युद्ध करना। महिषासुर का इन्द्र-पद ले लेना। देवों के द्वारा ब्रह्मा की स्तुति। देवों का ब्रह्मा और शिव के साथ वैकुण्ठ जाना। महिषासुर के मारने की सलाह। सब देवों के तेज से देवी की उत्पत्ति। किस देवता के अंश से किस अङ्ग की उत्पत्ति हुई, इसका वर्णन।

९,१०—देवी का महिषासुर के पास दूत भेजना और महिषासुर का देवी के पास दूत भेजना। देवों को राज्य सौंप कर महिषासुर के पाताल चले जाने के लिए देवी का दूत को उत्तर देना।

११,१२—महिषासुर का मन्त्रियों के साथ सलाह करना।

ताम्रासुर का युद्ध में जाना। ताम्र से देवी की बातचीत। मन्त्रियों के साथ महिषासुर की फिर सलाह।

१३—१६—बाष्कल और दुर्मुख दैत्यों का युद्ध में जाना। बाष्कल की मृत्यु। दुर्मुख का युद्ध और उसकी मृत्यु। चिकुराख्य और ताम्र का युद्ध में जाना। बिडालाख्य का युद्ध और मृत्यु। असिलोमा की मृत्यु। दैत्यों की सेना का रङ्ग-भङ्ग। मनुष्य-रूप धारण करके महिषासुर का युद्ध में जाना। देवी से महिषासुर की बातचीत।

१७,१८—मन्दोदरी-उपाख्यान। मन्दोदरी का विवाहोद्योग। वीरसेन राजा का मन्दोदरी को देखना। उसके साथ विवाह की इच्छा। मन्दोदरी की बहिन इन्दुमती का स्वयंवर। उसी स्वयंवर में मन्दोदरी का विवाह। महिषासुर और देवी का युद्ध। महिषासुर-वध।

१९,२०—देवों के द्वारा भगवती की स्तुति। देवों से भगवती का कथन। देवी की लीलाओं का वर्णन। अयोध्या के शत्रुघ्न नामक राजा का महिष-राज्य पर अधिकार।

२१,२२—शुम्भ-निशुम्भ की कथा। शुम्भ-निशुम्भ का स्वर्ग-विजय। देवों द्वारा भगवती की स्तुति।

२३,२४—कौशिकी और कालिका की उत्पत्ति। चण्ड और मुण्ड का शुम्भ के पास जाना। अम्बिका और सुग्रीव की बातचीत। शुम्भ-निशुम्भ की सलाह। धूम्रलोचन का युद्ध में जाना।

२५, २६—धूम्रलोचन-युद्ध। उस का मारा जाना सुन कर

शुम्भ-निशुम्भ की सलाह। चण्ड और मुण्ड का युद्ध में आना। देवी के साथ उनका युद्ध। काली की उत्पत्ति। चण्ड और मुण्ड का वध। देवी का चामुण्डा नाम रक्खा जाना।

२७, २८—देवी के साथ रक्तबीज का विप्रलाप। शुम्भ की सेना का भारी आयोजन देखकर देव-शक्तियों की उत्पत्ति। देवशक्तियों का युद्ध।

२९, ३०—रक्तबीज का युद्ध। बहुत से रक्तबीजों की उत्पत्ति। रक्तबीज-वध। युद्ध के लिए निशुम्भ की तैयारी। निशुम्भ और शुम्भ का युद्ध में आना। पहले निशुम्भ के साथ युद्ध। निशुम्भ की मृत्यु।

३१, ३२—शुम्भ-युद्ध। शुम्भ-वध। देवी का माहात्म्य। सुरथ और समाधि की कथा। सुरथ राजा और समाधि वैश्य का मेल। आपस में बातचीत।

३३, ३४—महामाया का माहात्म्य-वर्णन। ब्रह्मा और विष्णु का वाग्-युद्ध। शिवलिङ्ग की थाह लेने के लिए ब्रह्मा और विष्णु का उद्योग। विष्णु का पाताल में और ब्रह्मा का आकाश में जाना। केतकी की झूठी गवाही। केतकी को महादेव का शाप। देवी की पूजा-विधि।

३५—सुरथ और समाधि की देवी-उपासना। देवी का प्रत्यक्ष प्रकट होना। सुरथ और समाधि को वरदान।

छठा स्कन्ध।

१, २—वृत्रासुर की कथा का प्रश्न। विश्वरूप की उत्पत्ति

और तपस्या। विश्वरूप का इन्द्र के हाथ से मारा जाना। वृत्रासुर की उत्पत्ति।

३, ४—इन्द्र के मारने के लिए वृत्रासुर की घोर तपस्या। वृत्रासुर के साथ देवों का युद्ध। देवों की हार। वृत्रासुर का स्वर्ग-राज्य-लाभ। वृत्रासुर के मारने के उद्योग से सब देवों का वैकुण्ठ जाना।

५, ६—देवों के प्रति विष्णु का देवी-उपासना का उपदेश। देवी-उपासना। प्रसन्न होकर देवी का वरदान। इन्द्र और वृत्र में मेल कराने के लिए ऋषियों का उद्योग। इन्द्र द्वारा वृत्रासुर का वध।

७, ८—इन्द्र को त्वष्टा का शाप। इन्द्र की निन्दा। इन्द्र का स्वर्ग छोड़ कर मानसरोवर जाना। नहुष को इन्द्र-पदवी-लाभ। इन्द्राणी के लेने की नहुष की इच्छा। नहुष के साथ इन्द्राणी का नियम।

९, १०—इन्द्र और नहुष का मिलाप। नहुष को अगस्त्य मुनि का शाप। इन्द्र को फिर स्वर्ग-राज्य-लाभ। कर्मों के फलों का वर्णन।

११, १२—कलियुग-महिमा। तीर्थ-नामावली। हरिश्चन्द्र की कथा। वरुण का हरिश्चन्द्र को शाप।

१३, १४—शुनःशेप की कथा। वशिष्ठ और विश्वामित्र का आपस में शाप। आठीवक का युद्ध। शाप का नाश। निमि और वशिष्ठ का परस्पर शाप। अगस्त्य और वशिष्ठ की उत्पत्ति।

१५, १६—जनक की उत्पत्ति। काम और क्रोध आदि

दुर्गुणों का दुर्जयत्व-कथन। हैहय-गण की कथा। लोभ की निन्दा।

१७, १८—और्व ऋषि की उत्पत्ति। लक्ष्मी के प्रति नारायण का शाप। लक्ष्मी को शिव का वरदान। विष्णु का अश्वरूप धारण कर लक्ष्मी के पास जाना। हैहय की उत्पत्ति। उसे छोड़ कर लक्ष्मी का वैकुण्ठ-गमन।

१९, २०—चम्पाख्य विद्याधर की कथा। तुर्वसु को पुत्र-लाभ।

२१, २२—तुर्वसु की वनयात्रा। कालकेतु के द्वारा एकावली का हरण। कालकेतु के साथ हैहय का युद्ध। कालकेतु का वध। एकावली के साथ हैहय का विवाह। व्यास और सत्यवती का संवाद।

२३—२६—काशीराज की पुत्री के पुत्र की उत्पत्ति। मोह का वृत्तान्त। नारद के साथ मदयन्ती का विवाह।

२७, २८—नारद का श्वेतद्वीप में जाना। माया-दर्शन की इच्छा। नारद को स्त्रीरूप की प्राप्ति। तालध्वज राजा का दर्शन।

२९, ३०—स्त्रीरूप नारद का तालध्वज के साथ विवाह। नारद के पुत्र की उत्पत्ति। पुत्र की मृत्यु सुनकर नारद का घोर विलाप। नारद को फिर पुरुष-योनि की प्राप्ति। पत्नी के वियोग में तालध्वज का विलाप। तालध्वज को भगवान् का उपदेश। महामाया की महिमा का वर्णन।

३१—नारद को दुखी देख कर ब्रह्मा का प्रश्न। नारद का निज वृत्तान्त-कथन।

सातवाँ स्कन्ध ।

१, २—इन्द्र और सूर्य्यवंश की कथा। च्यवन ऋषि की कथा।

३, ४—शर्याति की कन्या की पति-सेवा। अश्विनीकुमार के साथ बातचीत।

५, ६—वृद्ध च्यवन को फिर जवानी का मिलना। सुकन्या का च्यवन को लाभ। शर्याति की कथा।

७, ८—शर्याति का यज्ञ। च्यवन के नाश के लिए इन्द्र का वज्र छोड़ना। च्यवन के प्रति इन्द्र की क्षमाप्रार्थना। रेवत राजा की उत्पत्ति। बलदेव के साथ रेवती का विवाह। इक्ष्वाकु राजा के जन्म की कथा। इक्ष्वाकु के पुत्र विकुक्षि को शशाद नाम की प्राप्ति। ककुत्स्थ को राज्य-लाभ। ककुत्स्थ का वंश।

९, १०—यौवनाश्व के पुत्र मान्धाता की उत्पत्ति। मान्धाता के वंश का वर्णन। सत्यव्रत की उत्पत्ति। विश्वामित्र के पुत्र गालव का वृत्तान्त। सत्यव्रत के द्वारा वशिष्ठ की धेनु-हत्या। वशिष्ठ के शाप से सत्यव्रत का त्रिशङ्कु नाम पड़ना।

११, १२–सत्यव्रत की पूरी कथा। त्रिशङ्कु को राज्यलाभ। त्रिशङ्कु का राज-पाट छोड़ना। हरिश्चन्द्र को राज्य-प्राप्ति।

१३, १४–विश्वामित्र और त्रिशङ्कु की कथा। त्रिशङ्कु का स्वर्ग-गमन। त्रिशङ्कु का स्वर्ग से पतन। हरिश्चन्द्र के पुत्र की कथा।

१५, १६–हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित का नामकरण। वरुण के शाप से हरिश्चन्द्र को जलोदर रोग। रोहित के साथ इन्द्र की बातचीत। अजीगर्त का पुत्र बेचना। शुनःशेप का रोना।

१७, १८–शुनःशेफ और हरिश्चन्द्र की विस्तारपूर्वक कथा। हरिश्चन्द्र का वन में रोती हुई स्त्री को देखना। विश्वामित्र की घोर तपस्या। विश्वामित्र की चालाकी से हरिश्चन्द्र का राजत्याग।

१९–२७–हरिश्चन्द्र की पूरी कथा और अन्त में रोहित को राज्यलाभ।

२८, २९–शताक्षी देवी का माहात्म्य। सौ वर्ष तक अनावृष्टि। भगवती की पूजा। शाकम्भरी की कथा। भुवनेश्वरी की महिमा।

३०–दक्ष के घर सती की उत्पत्ति और उसकी कथा।

३१, ३२–तारकासुर का वर्णन। हिमालय के घर में देवी का जन्म। देवों के प्रति देवी का कथन।

३३, ३४–देवी की विराट्-मूर्त्ति। ज्ञान की श्रेष्ठता। वेदान्तदर्शन का सार।

३५, ३६–योग का वर्णन। ब्रह्मज्ञान का उपदेश।

३७, ३८–भक्ति और ज्ञान का वर्णन और ज्ञान से मुक्ति का होना। देवी के नामपाठ का माहात्म्य।

३९, ४०–देवी की पूजा और ध्यान। देवीपूजा का विधान।

आठवाँ स्कन्ध।

१, २–स्वायम्भुव मनु की देवी-पूजा। ब्रह्मा की नाक से वराह की उत्पत्ति। हिरण्याक्ष-वध।

३, ४–स्वायम्भुव मनु की कथा। प्रियव्रत के वंश का वर्णन और सातों द्वीपों का विवरण।

५, ६–जम्बूद्वीप और इलावृत वर्ष का वर्णन। नद, नदी और देवी का वर्णन।

७, ८–सुमेरु पर्वत, ध्रुव नक्षत्र और गङ्गा की धारा का वृत्तान्त। भद्राश्व वर्ष का वर्णन।

९, १०–हरिवर्ष, केतुमालवर्ष, और रम्यकवर्ष का वृत्तान्त। हिरण्मयवर्ष, उत्तरकुरु और किम्पुरुषवर्ष का वर्णन।

११, १२–भारतवर्ष का विस्तारपूर्वक वर्णन। भारतवर्ष की प्रधानता। प्लक्ष, शाल्मलि और कुशद्वीप का वर्णन।

१३, १४–क्रौञ्च, शाक और पुष्कर-द्वीप का वृत्तान्त। लोकालोक का वर्णन।

१५, १६–सूर्य की गति का वर्णन। चन्द्रादि ग्रहों की गति का वर्णन।

१७, १८–ध्रुवचक्र और ज्योतिश्चक्र का वर्णन। राहु की स्थिति और पृथ्वी की नाप।

१९, २०–पातालों का वर्णन।

२१, २२–नरकों के नाम। भिन्न भिन्न पापों से भिन्न भिन्न नरकों की प्राप्ति।

२३, २४–अवीचि नरक का वर्णन। तिथि, वार और नक्षत्र में देवी की विशेष-पूजा की विधि।

नवाँ स्कन्ध।

१, २–देवी की अनेक मूर्तियों का वर्णन और पूजा-विधि।

३,४–विष्णु और महादेव की उत्पत्ति। सरस्वती-कवच और स्तोत्र।

५, ६—याज्ञवल्क्य का कहा हुआ सरस्वती-स्तोत्र। गङ्गा के शाप से सरस्वती देवी का पृथ्वी पर नदी रूप होकर बहना। सरस्वती-माहात्म्य। विष्णु के सामने देवियों का झगड़ा शान्त होना।

७, ८—भक्तों का लक्षण। कलि का वर्णन। कल्कि अवतार की कथा।

९, १०—परमात्मा से सारे संसार की उत्पत्ति। पृथ्वी की उत्पत्ति। पृथ्वी-पूजा।

११, १२—गङ्गा की उत्पत्ति और पूजा। भगीरथ-कृत गङ्गा-पूजन। गङ्गा का ध्यान, पूजन और स्तोत्र।

१३, १४—गङ्गा के आने की विस्तारपूर्वक कथा। राधा और कृष्ण की कथा।

१५, १६—तुलसी की कथा। वृषध्वज का उपाख्यान। कुशध्वज की स्त्री वेदवती के गर्भ में देवी का आना। वेदवती की तपस्या। वेदवती का रावण को शाप। वेदवती का सीतारूप से जन्म। राम का वनगमन। रावण का सीता-हरण। सीता का द्रौपदी-रूप से जन्म-ग्रहण। द्रौपदी के पाँच पति होने का कारण।

१७, १८—धर्मध्वज की स्त्री माधवी के गर्भ से तुलसी की उत्पत्ति। तुलसी की तपस्या और उसके वृक्ष होने का वर्णन। तुलसी की और विशेष कथा।

१९, २०—शंखचूड़ के साथ तुलसी का विवाह। शंखचूड़ की कथा। तुलसी और शंखचूड़ का परस्पर संवाद।

२१, २२–शंखचूड़ और महादेव का परस्पर उत्तर-प्रत्युत्तर। देवासुर-संग्राम। काली और शंखचूड़ का घोर युद्ध।

२३, २४—शिव के साथ शंखचूड़ दैत्य की लड़ाई। शंखचूड़-वध। तुलसी के साथ नारायण का सहवास। नारायण को तुलसी का शाप। तुलसी और शालग्राम का माहात्म्य।

२५, २६—तुलसी की पूजा। गायत्री के जप की विधि और फल।

२७, २८—यम और सावित्री का संवाद और धर्मसम्बन्धी प्रश्नोत्तर।

२९, ३०—सती सावित्री और सत्यवान् की अद्भुत कथा। दान-धर्म का फल। किस किस काम से क्या क्या फल मिलता है, इसका वर्णन। जन्माष्टमी और शिवरात्रि-व्रत का विधान।

३१, ३२—यम का सावित्री-मन्त्रदान। पापियों के कर्म-भोग के लिए नरकों का वर्णन।

३३, ३४—पापियों की भिन्न भिन्न गति। अनेक नरक कुण्डों का वर्णन।

३५, ३६—नरकों के भय दूर करने के लिए यम से सावित्री का प्रश्न। किस उपाय से मनुष्य नरकों के दुःखों से बच सकता है, इसका वर्णन।

३७, ३८—छियासी कुण्डों का वर्णन। यम का सावित्री को देवी-पूजा का उपदेश देना। देवी-माहात्म्य।

३९, ४०–महालक्ष्मी की कथा। इन्द्र को दुर्वासा का शाप।

इन्द्र का स्वर्ग के राज्य से अधःपतन। बृहस्पति के उपदेश से इन्द्र का ब्रह्मा के पास जाना।

४१, ४२–सब देवों का विष्णु के पास जाना। समुद्र में जन्म लेने के लिए लक्ष्मी को विष्णु की आज्ञा। समुद्र-मथन और उसमें से लक्ष्मी का निकलना। महालक्ष्मी का पूजन, ध्यान और स्तोत्र।

४३, ४४–स्वाहा की कथा। राधा के डर से श्रीकृष्ण का भाग जाना। दक्षिणा को राधा का शाप। कृष्ण के विरह में राधा का खेद। दक्षिणा की उत्पत्ति और पूजा। नारायण से नारद का षष्ठी, मङ्गलचण्डी और मनसादेवी का वृत्तान्त पूछना।

४५, ४६–प्रियव्रत के साथ षष्ठी का साक्षात्कार। देवी की कृपा से प्रियव्रत के मरे हुए पुत्र का फिर जी जाना। षष्ठी-पूजा।

४७, ४८–मङ्गलचण्डी की पूजा और कथा। मनसा-देवी की कथा। मनसा का ध्यान-पूजन। मनसा-माहात्म्य।

४९, ५०–सुरभि की कथा। सुरभि का पूजन-फल और माहात्म्य। राधा और दुर्गा का माहात्म्य। राधा-स्तोत्र। दुर्गा देवी की महिमा और पूजा।

दसवाँ स्कन्ध।

१, २—देवीमाहात्म्य। स्वायम्भुव मनु की उत्पत्ति। स्वायम्भुव मनु के प्रति देवी का वरदान। देवी का विन्ध्याचल में जाना। विन्ध्याचल का वृत्तान्त।

३, ४—देवों का शिव के पास जाकर विन्ध्याचल का सूर्य-गति के रोकने की कथा पूछना।

५, ६—विष्णु का देवों को अभयदान। देवों का अगस्त्य मुनि के पास जाना।

७, ८—विन्ध्याचल की गति की रोक। स्वारोचिष मनु की कथा।

९, १०—चाक्षुष मनु की कथा। चाक्षुष को राज्य-लाभ। वैवस्वत और सावर्णि मनुओं की कथा। सुरथ का उपाख्यान।

११, १२—महाकाली-चरित। मधुकैटभ-वध। महिषासुर, शुम्भ और निशुम्भ का वध।

१३—शेष मनुओं की कथा। भ्रामरी देवी का वृत्तान्त। भ्रामरी की कथा सुनने का फल।

ग्यारहवाँ स्कन्ध।

१, २—सदाचार और नित्यक्रिया का वर्णन। शौचविधि।

३, ४—स्नान-प्रकार। रुद्राक्ष-माहात्म्य और उसके धारण की विधि।

५, ६—रुद्राक्ष की माला से जप का माहात्म्य। रुद्राक्ष-माहात्म्य।

७, ८—एक मुँह वाले रुद्राक्ष के धारण करने का माहात्म्य। भूत-शुद्धि।

९, १०—शिरोव्रत-विधान।

११, १२—भस्मधारण। भस्मधारण-माहात्म्य।

१३, १४–भस्म की महिमा। विभूतिधारण-महिमा।

१५, १६–त्रिपुण्ड्र–(पड़ी हुई तीन रेखाओं वाला तिलक) धारण-माहात्म्य। दुर्वासा के माथे की भस्म के गिरने से नरक-निवासी जीवों के सुख की कथा। सन्ध्या और गायत्री की विधि। सन्ध्या का फल। गायत्री की चौबीस मुद्रा।

१७, १८–तीन तरह की गायत्री का वर्णन। देवी की पूजा।

१९, २०–मध्याह्न-काल की सन्ध्या। ब्रह्मयज्ञ और सायङ्काल की सन्ध्या-विधि।

२१, २२–गायत्री का पुरश्चरण। पाँचों यज्ञों का वर्णन।

२३, २४–चान्द्रायण आदि व्रतों का विवरण। गायत्री की शान्ति और उसके जप की सिद्धियों का वर्णन। गायत्री-जप के द्वारा महापातक का नाश।

बारहवाँ स्कन्ध।

१, २–गायत्री के विषय में नारद का नारायण के प्रति प्रश्न। गायत्री की अद्भुत महिमा का वर्णन। गायत्री के हर एक अक्षर की शक्ति और तत्त्वकथन।

३, ४—गायत्री-कवच। अथर्ववेद में कहा हुआ गायत्री-हृदय।

५, ६—गायत्री-स्तोत्र। गायत्री-सहस्रनाम।

७, ८—दीक्षा-विधि। होम-प्रकार। देवी का यक्षरूप-धारण। यक्ष की कथा।

९, १०—गायत्री की कृपा से गौतम की सिद्धि की कथा। मणिद्वीप का वृत्तान्त।

११,१२—पद्मरागादि-प्रकार। चिन्तामणि गृह आदि का वर्णन। देवी का ध्यान।

१३, १४—देवी के मुख का वर्णन। देवीभागवत के पाठ का फल। व्यास की पूजा।

६—नारदपुराण।

पाँच पुराणों का संक्षिप्त वर्णन हो चुका। अब छठे नारद-पुराण का सुनिए। नारदपुराण ही में लिखा है कि इसकी श्लोक-संख्या २५ हज़ार है। पर जो इस समय मिलता है, जिसकी सूची हम यहाँ दे रहे हैं यह, कुल बीस बाइस ही हज़ार श्लोक वाला है। इसके दो भाग हैं। पूर्व और उत्तर। पूर्व में १२५ और उत्तर में ८२ अध्याय हैं। अर्थात् नारद-पुराण में कुल २०७ अध्याय हैं। अध्यायों के अनुसार कथा-सूची इस प्रकार है—

पूर्व-भाग।

१-१०-नारद और सनत्कुमार का संवाद। गंगा की उत्पत्ति और माहात्म्य। ब्राह्मण को दानपात्र होने का कथन।

११-२०-देवमन्दिर निर्माण करने का फल-धर्म-शास्त्र। नरकों का वर्णन। भगीरथ के गङ्गा लाने की कथा। विष्णु-व्रत-कथन। वर्णाश्रमाचार-कथन। स्मृतिधर्म-कथन। श्राद्ध-विधि। तिथि आदि का निर्णय। प्रायश्चित्त-निर्णय।

२१-४०—यमलोक के मार्ग का वृत्तान्त । भवाटवी-निरूपण । ईश्वर-भक्ति का लक्षण । ज्ञान-वर्णन । विष्णु-सेवा का प्रभाव । विष्णु का माहात्म्य ।

४१-५०-युगों के धर्म । सृष्टितत्त्व । जीवात्मा का वर्णन । परलोक की व्याख्या । मोक्ष-धर्म का वर्णन । तीन तापों का वर्णन । योग का वर्णन । परमार्थ-तत्त्व-निरूपण । वेदान्त-शिक्षा का वर्णन ।

५१-६०-कल्प, व्याकरण, निरुक्त, और ज्योतिष और छन्दःशास्त्रों का वर्णन । शुकदेवजी की उत्पत्ति की कथा । ब्राह्मणों के धर्म-कर्मों का वर्णन ।

६१-७०-मोक्षशास्त्र-कथन । भागवत-तत्त्व-निरूपण । दीक्षा-विधि । देव-पूजा । गणेश का मन्त्र । त्रिदेवमूर्त्ति ।

७१-८०-विष्णु का मन्त्र । राममन्त्र-कथन । हनुमान्जी का मन्त्र । हनुमान्जी को दीपक-विधान । कार्तवीर्य-कवच । हनुमत्कवच । हनुमच्चरित ।

८१—९०—श्रीकृष्णजी का मन्त्र । नारद के पहले जन्म का वृत्तान्त । राधांशावतार । मधु-कैटभ की उत्पत्ति । काली का मन्त्र । सरस्वती का अवतार । शक्तिसहस्रनाम । शक्तिपटल ।

९१—११०—शिवमन्त्र । पुराण-कथा-निरूपण । ब्रह्मपुराण और पद्मपुराण की अनुक्रमणिका । विष्णु, वायु और भागवत पुराण की अनुक्रमणिका । नारद, मार्कण्डेय, आग्नेय, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड-पुराण की अनुक्रमणिका ।

१११—१२५—प्रतिपद्व्रत-निरूपण । इसी तरह द्वितीया आदि सब तिथियों के व्रतों का वर्णन । पुराण का माहात्म्य ।

उत्तर भाग ।

१—१०—द्वादशी-माहात्म्य । तिथि-विचार । यम-विलाप । लोकों के मोहने के लिए एक मोहनी स्त्री की उत्पत्ति । मोहिनी-चरित । रुक्माङ्गद राजा की कथा ।

११—२०—शिकार खेलते हुए रुक्माङ्गद को वन में मोहिनी का दर्शन । दोनों की आपस में विवाह की प्रतिज्ञा । रुक्माङ्गद के साथ मोहिनी का विवाह । पतिव्रता की कथा । रुक्माङ्गद के पुत्र धर्माङ्गद की कथा । धर्माङ्गद को राजतिलक । दिग्विजय ।

२१—४०—मोहिनी और राजा रुक्माङ्गद के प्रेम की कथा । रुक्माङ्गद को मोहिनी द्वारा अनेक क्लेश देने की कथा । मोहिनी को शाप ।

४१—८२—गङ्गा, गया, काशी, पुरुषोत्तम, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, बदरिकाश्रम, कामोदा, कामाख्यान, प्रभासतीर्थ, पुष्कर, गौतम, त्र्यम्बक, गोकर्ण, लक्ष्मण, सेतु, नर्मदा, अवन्ती, मथुरा, वृन्दावन आदि स्थानों और तीर्थों का माहात्म्य । मोहिनी के तीर्थ-सेवन की कथा ।

७—मार्कण्डेयपुराण ।

पुराणों में मार्कण्डेयपुराण सातवाँ पुराण है। इसमें कुल १३८ अध्याय हैं । इसके श्लोकों की संख्या ९००० कही जाती है।

कथा ।

१—१३८—इस पुराण में मार्कण्डेय ने पक्षियों पर घटा कर सब धर्मों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है । पक्षियों की धर्मसंज्ञा । पूर्वजन्म की कथा । बलदेवजी की तीर्थ-यात्रा, द्रौपदेय-कथा, हरिश्चन्द्र-चरित, दत्तात्रेय-कथा, हैहय-कथा, मदालसा रानी की कथा । अलर्क-चरित । नौ तरह की सृष्टि-रचना । कल्प-कल्पान्तरों की कथा । द्वीप-द्वीपान्तरों की कथा । मनुओं का चरित । दुर्गा की कथा । वत्सप्रीति-चरित । खनित्र-कथा । नरिष्यन्त-चरित । इक्ष्वाकु, तुलसी, रामचन्द्र, कुरुवंश, सोमवंश, पुरूरवा, नहुष, ययाति, यदुवंश, श्रीकृष्ण, आदि की अनेक कथाओं का उल्लेख है। संसार की असारता का वर्णन करके अन्त में मार्कण्डेय भगवान् का चरित वर्णन किया है । बस, मार्कण्डेयपुराण में यही सब कथायें हैं।

८—वह्नि-पुराण ।

वह्निपुराण वा अग्निपुराण दो प्रकार का प्रचलित है। वह्निपुराण में कुल १८१ अध्याय हैं और अग्निपुराण में ३८३ । इस पुराण में १५,००० श्लोक माने गये हैं ।

कथा-सूची ।

(क) वह्निपुराण ।

१—१०—अग्नि और ब्रह्मा की स्तुति । स्नान और भोजन की विधि । पृथु की कथा और गायत्री-कल्प ।

११—२० ब्राह्मण-प्रशंसा । योग-निर्णय । सती-देह-त्याग की कथा । सृष्टि-रचना का वर्णन ।

२१—३०—वराह और नरसिंह अवतारों की कथा । वैष्णव-धर्म ।

३१—४०—धेनु-माहात्म्य । वृषदान का वर्णन ।

४१—५०—विद्या, गृह और दासी के दान की कथा । अन्न-दान का माहात्म्य । दिवाली की कथा । च्यवन और नहुष की कथा । तुला-पुरुष-दान ।

५१—६०—तालाब, बग़ीचा आदि बनाने का माहात्म्य । यज्ञ-वर्णन । वामन अवतार की कथा ।

६१—७०—क्रियायोग का वर्णन । सङ्ग्राम की प्रशंसा । सगर की कथा ।

७१—८०—गङ्गावतार की कथा । गङ्गा की महिमा । सूर्यवंश की महिमा । सीता के शाप की कथा । राक्षस-युद्ध । विश्वामित्र के यज्ञ की कथा । अहल्या के शाप दूर करने की कथा ।

८१—९०—सीता का स्वयंवर । राम का वनगमन । चित्र-कूट पर बसना । त्रिशिरा और खर आदि राक्षसों का मारा जाना ।

९१—१००—सीता-हरण जटायु-मरण । कबन्ध-वध । सुग्रीव से मित्रता।

१०१—११०—राम और हनुमान की बातचीत । वालि-वध । बन्दरों का सीता की खोज में जाना ।

१११—१२०—हनुमान का लङ्का में जाना ।

१२१—१३०—सीता-विलाप । सीता से बातचीत । वन-भङ्ग ।

१३१—१४०—हनुमान् का राक्षसों को मारना । लङ्का-दाह ।

१४१—१५०—सीता की ख़बर पाकर रामचन्द्रजी का सेना समेत लङ्का पर चढ़ाई करने के लिए तैयारी करना। विभीषण से मेल । समुद्र पर पुल बाँधना ।

१५१—१६०—कुम्भकर्ण आदि राक्षसों का वध ।

१६१—१७०—इन्द्रजीत तथा और कितने ही राक्षसों का वध ।

१७१-१८१—रावण और रामचन्द्रजी का घोर युद्ध । रावण-वध । विभीषण को लङ्का का राजतिलक । विमान पर चढ़ कर राम का अयोध्या को लौटना ।

(ख) अग्निपुराण

समस्त अवतारों की कथा । देवालय-विधि । शालग्राम आदि की पूजा । सर्वदेव-प्रतिष्ठा । गङ्गा आदि तीर्थ-माहात्म्य । द्वीपों का वर्णन । ऊपर और नीचे के लोकों की कथा । आश्रमों के

धर्म । प्रायश्चित्तों की व्यवस्था । व्रत आदि का विधान । नरकों का वर्णन । सन्ध्या की विधि । गायत्री का अर्थ-वर्णन । लिङ्ग-स्तोत्र । राजाओं के अभिषेक का मन्त्र । राजधर्म-वर्णन । स्वप्न और शकुनों का फल । रण-दीक्षा । रामोक्त नीति-कथा । रत्नों के लक्षण । धनुर्विद्या और व्यवहार-ज्ञान । देवासुर-सङ्ग्राम की कथा । आयुर्वेद का वर्णन । पशु-चिकित्सा । छन्दःशास्त्र, साहित्य आदि का वर्णन । नरक वर्णन । योगशास्त्र और ब्रह्मज्ञान का निरूपण । पुराण के सुनने का फल इत्यादि अनेक विषयों का वर्णन अग्निपुराण में किया गया है ।

६—भविष्य-पुराण

इस पुराण में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति आदि विषयों का वर्णन वैसा ही है जैसा कि अन्य पुराणों में है । इसके 'प्रतिसर्ग' नामक पर्व में भविष्यकाल की कथायें हैं, जिनमें धर्मराज के राज्यकाल से लेकर आगे होनेवाले नाना देशों और नाना वंशों में उत्पन्न आर्य्य, म्लेच्छ, यूरोपियन, रूसी, चीनी और सिंहली आदि राजाओं के चरित्र तथा बादशाहियों का वर्णन है । इसमें ४ पर्व और ५८५ अध्याय हैं । इतने बड़े पुराण के प्रत्येक अध्याय की संक्षिप्त कथा लिखी जाय तो पुस्तक बहुत बढ़ जाय । अतएव प्रत्येक पर्व का ही संक्षिप्त वर्णन किया जाता है ।

ब्राह्म-पर्व ।

राजा शतानीक ने धर्मशास्त्र सुनना चाहा तब व्यासजी की

आज्ञा से 'सुमन्तु' ने सुनाया । इसमें ब्रह्माण्ड का सृष्टि-वर्णन, चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था, संस्कार और गृहस्थ-धर्मादि का वर्णन है । फिर व्रतों के माहात्म्य का वर्णन, सामुद्रिक शुभाशुभ लक्षण, नक्षत्र पूजा-विधि, साम्बोपाख्यान, और भोजक जाति वर्णन, आदि है । तदनन्तर आचार-प्रशंसा, व्यास-भीष्म-संवाद, ब्रह्मदेव-विष्णु-संवाद और व्योम-पूजा का विधान है ।

मध्यम-पर्व

पहला भाग ।

इसमें लोक-वर्णन, ब्राह्मण-माहात्म्य, बाग़ लगाने की विधि, और होम-निर्णय आदि हैं ।

दूसरा भाग ।

इसमें भी यज्ञ की विधियों का सूक्ष्म वर्णन है । प्रतिष्ठा के योग्य समय का निर्णय और गृहवास्तु की विधि वर्णित है ।

तीसरा भाग ।

इसमें पीपल का पेड़ रोपने और जलाशय की प्रतिष्ठा करने का वर्णन भली भाँति किया गया है और यह भी दिखाया गया है कि वृक्षों की उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणियाँ कौन कौनसी हैं ।

प्रतिसर्ग-पर्व

पहला खण्ड ।

कृतयुग के राजाओं के वर्णन में वैवस्वत मनु से लेकर

सुदर्शन नरपति के राज्यकाल तक का हाल है, फिर द्वापरयुग के नरपतियों का विवरण है। इसमें म्लेच्छ-यज्ञ का भी वृत्तान्त है। और आदम, श्वेत, न्यूह, केकाऊस, महल्लल, विरद, हनूक, मताघिल, होमक, शाम आदि का वृत्तान्त वर्णित है। म्लेच्छ-भाषा और उनके देशों का भी हाल प्रदर्शित किया गया है। फिर आर्य्यावर्त में म्लेच्छागमन का कारण, मागध-राज-वर्णन, गौतम बुद्ध की उत्पत्ति, पटने में बौद्ध धर्म का संस्कार और चार प्रकार के क्षत्रियों की उत्पत्ति का विवरण दिया गया है।

दूसरा खण्ड।

इसमें मधुमती के वर के निर्णय की कथा, कामाङ्गी कन्या की कथा, गुणशेखर-राजपत्नी की कथा, विक्रम का यज्ञ और चन्द्र-लोक-गमन, भर्तृहरि का वृत्तान्त, सत्यनारायण की पूरी कथा, पाणिनि का वृत्तान्त, तोतादरी के बोपदेव का हाल, महानन्दि नृप की कथा और व्याकरण-महाभाष्यकार पतञ्जलि का वृत्तान्त है।

तीसरा खण्ड।

इसमें, भारती-युद्ध में मारे गये कौरवों, यादवों और पाण्डवों के पुनर्जन्म की कथा का हाल दिया हुआ है। फिर शालिवाहन के द्वारा शकों के पराजय होने तथा शालिवाहन-वंशियों का राज्य वर्णित है। तदनन्तर राजा भोज की दिग्विजय-यात्रा है जिसमें मसीही और मुहम्मदी धर्म के स्थलों की स्थिति का वर्णन है। जयचन्द्र और पृथ्वीराज की कथा, संयोगिनी

का स्वयंवर, पृथ्वीराज का क्षत्रियों से घोर युद्ध, कृष्णांश-चरित्र-वर्णन, ईदल-पद्मिनी का विवाह, कुतुबमीनार का हाल है।

चौथा खण्ड।

इसमें बुन्देलखण्ड का वृत्तान्त और कल्पसिंह पर्य्यन्त समरवंश की समाप्ति, जाटों का हाल, कच्छ, भुज्ज, उदयपुर और कन्नौज का वृत्तान्त, दिल्ली के मुसलमान राजाओं का हाल, मध्वाचार्य की उत्पत्ति, विष्णुस्वामी, भट्टोजी दीक्षित और वराहमिहिर, जयदेव, कृष्ण-चैतन्य, शङ्कराचार्य्य तथा गोरखनाथ आदि की उत्पत्ति का हाल दिया हुआ है। कबीर, नरसी, पीपा और नानक आदि का साधु-चरित्र, दिल्ली में तिमिरलिङ्ग के बेटे का वर्णन, अकबर और औरंगज़ेब आदि मुग़लों, दक्षिण के शिवाजी, नादिर और रामचन्द्र के वरदान से वानर-वंश में उत्पन्न गुरुंडवंशियों का वाणिज्य के लिए आर्यदेश में आगमन, कलकत्ता और अष्ट-कौशल (पार्लामेंट) आदि का उल्लेख है।

उत्तर-पर्व।

इसमें राज्याभिषिक्त युधिष्ठिर का व्यासजी से स्वज्ञाति-वध के पाप से बचने के लिए प्रायश्चित्त पूछना, श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-संवाद, अनेक व्रतों का माहात्म्य, दशावतार-चरित्र, दान और पूजा-माहात्म्य, कृष्ण-युधिष्ठिर संवाद की समाप्ति और कृष्ण के द्वारकापुरी में जाने का वर्णन है।

१०—ब्रह्मवैवर्त्त-पुराण

ब्रह्मवैवर्त्त-पुराण में चार खण्ड हैं। उन चारों खण्डों के नाम क्रमशः ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, गणेशखण्ड और श्रीकृष्णजन्म-खण्ड हैं। पहले में ३०, दूसरे में ६७, तीसरे में ४६ और चौथे में १३३ अध्याय हैं। अब यथाक्रम अध्यायानुसार कथा-सूची लिखते हैं।

ब्रह्म-खण्ड।

१, १०—सृष्टिरचना। रासमण्डल में राधा की उत्पत्ति। श्रीकृष्ण का शिव को वरदान। वेदादिशास्त्रों की उत्पत्ति। कश्यप आदि की उत्पत्ति और पृथ्वीगर्भ से मङ्गल की उत्पत्ति। कश्यप-वंश-वर्णन और चन्द्रमा को दक्ष का शाप।

११—२०—विष्णु, विष्णुभक्त और ब्राह्मण की प्रशंसा। नारद का गन्धर्व रूप में जन्म। ब्राह्मण के शाप से गन्धर्व की मृत्यु। मालावती का विलाप। ब्राह्मण-बालक के रूप में विष्णु का मालावती के पास आना। मालावती को कर्मफल का उपदेश। चिकित्साशास्त्र का निर्माण। विष्णु की प्रशंसा। मरे हुए नारद का पुनर्जीवन-लाभ। बाणासुर-कृत शिवस्तोत्र। उपबर्हण गन्धर्व का शूद्रायोनि में जन्म धारण करना।

२१—३०—नारद आदि की उत्पत्ति-कथा। नारद का शाप दूर होना। ब्रह्मा और नारद का संवाद। मन्त्रोपदेश लेने के लिए नारद का शिव के समीप जाना। नारद को ब्रह्मा का उपदेश। शिव का नारद को कृष्णमन्त्रदान। नित्यकर्म-वर्णन।

खाने न खाने की वस्तुओं का वर्णन। ब्रह्म-निरूपण। नारायण और ऋषियों के प्रति नारद का प्रश्न। ईश्वर के स्वरूप का वर्णन।

प्रकृतिखण्ड।

१—१०—प्रकृति-वर्णन। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति। देव और देवी-गणों की उत्पत्ति। सरस्वती-पूजा-विधान। सरस्वती, लक्ष्मी और गङ्गा का आपस में शाप-प्रतिशाप। तीनों का नदी रूप होकर बहना। पृथ्वी की उत्पत्ति, पूजा और स्तोत्र। भगीरथ का गङ्गा को लाना। श्रीकृष्ण को राधा की डाँट। राधा का क्रोध।

११—२०—भगवान् के चरण से गङ्गा के निकलने की कथा। गङ्गा और नारायण का विवाह। वेदवती की कथा। तुलसी का जन्म। तुलसी पर मोहित होकर शंखचूड़ का उसके पास आना। दैव-दैत्यों का घोर युद्ध। शिव-शंखचूड़-संवाद। महादेव के द्वारा शंखचूड़-वध। शंखचूड़ की हड्डी से शंख की उत्पत्ति।

२१—३०—तुलसीपत्र का माहात्म्य और उसके गुण। तुलसी के आठ नाम और उसकी पूजा। सावित्री और सत्यवान् की कथा। सत्यवान् की मृत्यु और यम के साथ सावित्री की बातचीत। यम का सावित्री के प्रति वर-दान। नरककुण्डों का वर्णन।

३१—४०—पापानुसार नरकों में पड़ने की कथा। सत्यवान् का जीवित होना। इन्द्र के प्रति दुर्वासा का शाप। देवों

को साथ लेकर इन्द्र का विष्णु के समीप वैकुण्ठ में जाना। इन्द्र को विष्णु का समझाना। समुद्र-मन्थन और लक्ष्मी-प्राप्ति। लक्ष्मी-पूजा-विधि। स्वाहा की कथा।

४१—५०—स्वधा की कथा। दक्षिणा, यज्ञ-दक्षिणा की कथा। षष्ठी देवी की पूजा। मङ्गलचण्डी का ध्यान। जरत्कारु का मनसा देवी के साथ विवाह। आस्तिक का जन्म। परीक्षित के मर जाने बाद जनमेजय का सर्पयज्ञ। सुरभि की कथा। राधा शब्द की निरुक्ति। विरजा के साथ श्रीकृष्ण का विहार। विरजा का नदी हो जाना। राधा और सुदामा का विवाद। आपस में शाप-प्रतिशाप।

५१—६०—सुयज्ञ राजा के लिए ऋषियों का उपदेश। ब्राह्मण-चरणोदक की महिमा। राजा की पूजा-विधि। राधिका-कवच। दुर्गा के सोलह नामों की व्याख्या।

६१—६७—बुध के जन्म और बृहस्पति को तारा-प्राप्ति की कथा। सुरथ और वैश्य-वंश का परिचय। सुरथकृत प्रकृति-पूजा। प्रकृति-पूजा का फल-निरूपण। दुर्गा-स्तुति और कवच।

गणेश-खण्ड।

१—१०—पार्वती-महादेव का विहार-भङ्ग। पार्वती के प्रति शङ्कर का उपदेश। पुण्यक व्रत की कथा। पति-प्राप्ति के लिए पार्वती का फिर श्रीकृष्ण की आराधना करना। वर-प्राप्ति। गणेश-जन्म की कथा। गणेश का मङ्गलाचार।

११—२०—पार्वती और शनि का संवाद। गणेश का

नामकरण। गणेश की पूजा, स्तोत्र और कवच आदि का वर्णन। कार्त्तिकेय और नन्दिकेश्वर की बातचीत। कार्त्तिकेय का कैलास में जाना कार्त्तिकेय का अभिषेक। सूर्य-स्तुति और कवच। गणेश के हाथी का मुँह होने की कथा।

२१—३०—इन्द्र को लक्ष्मी-प्राप्ति। लक्ष्मी-चरित। गणेश के एक दाँत होने का कारण। जमदग्नि और कार्त्तवीर्य की कथा। कार्त्तवीय और जमदग्नि का युद्ध। कार्त्तवीर्य की हार। जमदग्नि की मृत्यु और उनके पुत्र परशुराम की घोर प्रतिज्ञा। भृगु और वेणु का संवाद। ब्रह्मा और परशुराम का संवाद। शङ्कर और परशुराम का संवाद।

३१—४०—शङ्कर का प्रसन्न होकर परशुराम को कवच-दान। परशुराम की युद्ध-यात्रा। स्वप्न-दर्शन। कार्त्तवीर्य की स्त्री मनोरमा का परलोक-गमन। मत्स्यराज और परशुराम का घोर युद्ध। राजा सुचन्द्र के साथ परशुराम का युद्ध। पुष्कराक्ष के साथ युद्ध। महालक्ष्मी और दुर्गा के कवच। कार्त्तवीर्य और परशुराम का युद्ध। कार्त्तवीर्य का परलोकवास।

४१—४६—परशुराम का कैलास में जाना। गणेश और परशुराम का संवाद। युद्ध में गणेश का दाँत टूटना। तुलसी और गणेश का परस्पर शाप-प्रदान।

श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड।

१—१०—नारद और नारायण का संवाद। विष्णु-सम्बन्धी प्रश्न। विष्णु और वैष्णव-गुणकथन। श्रीकृष्ण का

विरजा के साथ विहार। राधिका के डर से श्रीकृष्ण का छिप जाना और विरजा का नदी रूप होकर बह निकलना। श्रीकृष्ण को राधा का शाप। राधा और श्रीसुदामा का परस्पर शाप। पापियों के भार से दुःखी होकर पृथ्वी का ब्रह्मलोक जाना। देवों का हरि के समीप जाना। गोलोक का वर्णन। श्रीकृष्ण का जन्म। कंस के द्वारा देवकी के छः पुत्रों की मृत्यु। जन्माष्टमी व्रत का वर्णन। पूतना-मोक्ष।

११—२०—तृणावर्त दैत्य का वध। शकट-भञ्जन। गर्ग मुनि और नन्द की बातचीत। श्रीकृष्ण का नामकरण। यमलार्जुन-भञ्जन। राधाकृष्ण का संवाद और विवाह। बक, केशी और प्रलम्बासुर का वध। वृन्दावन-यात्रा। कलावती के साथ वृषभानु की प्रीति। राधा के सोलह नाम। कालियदमन। वन की अग्नि से गोपों की रक्षा। ब्रह्मा द्वारा गाय-बछड़ों का हर लेजाना। ब्रह्मा-कृत श्रीकृष्ण-स्तुति।

२१—३०—इन्द्र-यज्ञ का रोकना। श्रीकृष्ण का गोवर्धन-धारण। धेनुक दैत्य का वध। तिलोत्तमा अप्सरा और बलिपुत्र का शाप-कथन। दुर्वासा का विवाह और पत्नी-वियोग। उर्वशी के शाप से दुर्वासा का तिरस्कार। एकादशी-व्रत-निरूपण। गौरी-व्रत-विधान। रासलीला की कथा। अष्टावक्र की कथा। रम्भा के शाप से देवल का आठ जगह से टेढ़ा होना।

३१—४०—गङ्गा के जन्म की कथा। रति और काम की उत्पत्ति। पार्वती का जन्म-वर्णन। मदन-भस्म-वर्णन।

४१—५०—पार्वती की घोर तपस्या। महादेव की विवाह

यात्रा। शिव-विवाह का वर्णन। इन्द्र, सूर्य, अग्नि, दुर्वासा और धन्वन्तरि का दर्प-खण्डन। राधा-कृष्ण का विहार।

५१—६०—श्रीकृष्ण का संक्षिप्त चरित। राधा-विरह-कथा। इन्द्राणी और नहुष का संवाद। नहुष का शाप के कारण सर्प बनना।

६१—७०—इन्द्र और अहल्या की पाप-कथा। इन्द्र को गौतम का शाप। संक्षेप से रामायण की कथा। कंस-यज्ञ-वर्णन।

७१—८०—श्रीकृष्ण की मथुरा-यात्रा। धोबी को दण्ड देना। कुब्जा का प्रसाद। कंस की मृत्यु। देवकी-वसुदेव का छुटाना। दान-फल। सुस्वप्न-फल-कथन। सूर्यग्रहण का कारण-वर्णन। चन्द्रग्रहण में कारण।

८१—९०—दुःस्वप्नों का वर्णन। चारों वर्णों का धर्म-वर्णन। गृहस्थ धर्मों का वर्णन। स्त्री-चरित्रकीर्तन। भक्तों के लक्षण। ब्रह्माण्ड का वर्णन। भक्ष्याभक्ष्य-निरूपण। कर्मों के फलों का वर्णन। उद्धव का वृन्दावन-गमन।

९१—१००—भगवान् के साथ देवकी और वसुदेव का संवाद। उद्धव का वृन्दावन-गमन। राधा और उद्धव की बातचीत। राधा का खेद। उद्धव के प्रति राधा का खेद। मथुरा में उद्धव का लौटकर जाना और वहाँ का सब हाल श्रीकृष्ण से कहना।

१०१—११०—कृष्ण-बलदेव का यज्ञोपवीत-संस्कार। सान्दीपनि मुनि के पास विद्या पढ़ने जाना। द्वारका-गमन।

रुक्मिणी-हरण । बलदेव-द्वारा रुक्मी का पराजय । राधा और यशोदा का संवाद ।

१११—१२०—यशोदा के प्रति राधिका का उपदेश। सोलह हज़ार रानियों के साथ श्रीकृष्ण का विवाह । उनकी सन्तानों का वर्णन । दुर्वासा का द्वारिका में जाना। जरासन्ध-वध । शाल्व-वध । शिशुपाल और दन्तवक्त्र वध । कौरव-पाण्डवों का युद्ध । ऊषा और अनिरुद्ध का स्वप्न-समागम । ऊषा के साथ अनिरुद्ध का गान्धर्व-विवाह। बाणासुर का युद्ध । अनिरुद्ध के हाथ से बाण का पराजय। यादवों और असुरों का युद्ध ।

१२१—१३३—शृगालराज-मोक्षण । स्यमन्तक की कथा। राधा की गणेश-पूजा । राधा-कृष्ण का दूसरी बार मिलना। राधा-कृष्ण का विहार और यशोदा का आनन्द । नन्द के प्रति श्रीकृष्ण का कलि-धर्म-कथन । यदुकुल-विध्वंस । पाण्डवों का स्वर्गारोहण। नारद का सञ्जय की कन्या के साथ विहार। सनत्कुमार के उपदेश से तपस्या में लगना । नारद की मुक्ति। अग्नि और सोने की उत्पत्ति । महापुराण और उपपुराण का लक्षण । महापुराणों के श्लोकों की संख्या । उपपुराणों के नाम। ब्रह्मवैवर्त पुराण की नाम-निरुक्ति । उसका माहात्म्य और सुनने का फल ।

११—लिङ्गपुराण।

लिङ्गपुराण ग्यारहवाँ पुराण है। इसमें दो भाग हैं—पूर्व और उत्तर। दोनों में सब मिला कर १६३ अध्याय हैं। पूर्व भाग में १०८ और उत्तर में ५५। इस की कथाओं का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है:—

पूर्व-भाग।

१—१०—संसार की रचना का वर्णन। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति। चारों युगों का परिमाण। योगमार्ग से शिवपूजा। योगियों के लिए विघ्न। लिङ्गपूजा-विधि।

११—२०—श्वेत, लोहित आदि कल्पों की कथा। ब्रह्मा और विष्णु के झगड़े मिटाने के लिए लिङ्ग की उत्पत्ति। विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति।

२१—३०—ब्रह्मा और विष्णु की शिवस्तुति। दोनों को वर-लाभ। गायत्री-महिमा। भिन्न भिन्न द्वापर में भिन्न भिन्न व्यासों की उत्पत्ति का वर्णन। भविष्य व्यास का कथन। स्नान-विधि। सन्ध्या और पञ्चयज्ञ-विधि। मानस-शिव-पूजा। सुदर्शन की कथा। शिव-पूजा के प्रताप से श्वेत की मृत्यु से रक्षा।

३१—४०—शिव द्वारा शैव-महिमा-वर्णन। देवों के साथ विष्णु का दधीचि-पराभव। युगधर्म। कलि-धर्म।

४१—५०—ब्रह्मा को देवीपुत्र-कथन। पृथिवी, द्वीप-

सागर आदि का वर्णन । जम्बू द्वीप के नव वर्षों का वर्णन। सुमेरु का परिमाण । जम्बूद्वीप का मान ।

५१—६०—शिव के मुख्य चार स्थानों का वर्णन । गङ्गा की उत्पत्ति । ऊपर के लोकों और नरकों का वर्णन । सूर्य की गति और ध्रुव का वर्णन । ग्रहों का वर्णन ।

६१—७०—ध्रुव-चरित । वसिष्ठ का पुत्र-शोक । पराशर की उत्पत्ति । शिवसहस्रनाम । ययाति का चरित । यदुवंश का वर्णन । कृष्णावतार-कथा ।

७१—८०—त्रिपुर की कथा । शिवालय बनवाने का फल । वस्त्र से छने हुए जल के बर्तने का उपदेश । अहिंसा-भक्ति का फल ।

८१–९०–अनेक शिवव्रत-कथन । पञ्चाक्षर मन्त्र । योगि-सदाचार । स्त्री-धर्मों का वर्णन ।

९१–१००–मृत्यु-चिह्न । प्रणव की महिमा । काशी-माहात्म्य । वराह-द्वारा हिरण्याक्ष का वध । नृसिंह-द्वारा हिरण्यकशिपु का वध । वीरभद्र के द्वारा नृसिंह-पराजय । शिवसहस्रनाम के प्रताप से विष्णु को सुदर्शन-चक्र का लाभ । दक्ष-यज्ञ का विध्वंस ।

१०१–१०८–पार्वती की तपस्या । मदन-भस्म करना । शिवविवाह । पुत्र-उत्पादन । गणेश की उत्पत्ति । काली की उत्पत्ति । उपमन्यु को शिव का प्रसाद ।

उत्तर-भाग ।

१–१०–कौशिक-कथा । विष्णु-माहात्म्य । विष्णु-भक्त का

लक्षण। अम्बरीष-चरित। लक्ष्मी-प्राप्ति के उपाय। धौन्धुमूक-चरित। शिव के पशुपति नाम का अर्थ।

११–२०–शिवविभूति-वर्णन। शिव को ब्रह्म-कथन। शिव के अनेक प्रकार के नाम। शिव-पूजा। शिव-स्तुति।

२१—३०—शिव-पूजा-नियम। मानस-शिव-पूजा। अघोर-पूजा। तुलादान का वर्णन। तिल-पर्वत-दान का वर्णन।

३१–४०–सुवर्ण-पृथ्वी-दान-विधि। गणेश-दान-विधि। सुवर्ण-धेनु, लक्ष्मी, तिल-धेनु, गो-सहस्र, सुवर्णाश्व, कन्या आदि दानों की विधि।

४१–५०–अनेक प्रकार के दानों की विधि। अघोरेश की प्रतिष्ठा-कथन। शत्रुओं के निग्रह करने का उपाय।

५१–५५–वज्रवाहनिका विद्या का वर्णन। उसका विनियोग। मृत्युञ्जय-विधि। शिव-पूजा। योग-कथन। लिङ्गपुराण के पढ़ने, सुनने और सुनाने का फल।

१२–वाराहपुराण।

वाराहपुराण में कुल २१८ अध्याय हैं। इसमें मुख्यता से वराह भगवान् की महिमा है। संक्षिप्त कथा की सूची इस प्रकार है;—

कथा-सूची।

१–१०—पृथ्वी-कृत ईश्वर-स्तुति। सृष्टि-कथा। वराह-कृत सृष्टि-वर्णन। वराह ही के द्वारा रुद्र, सनत्कुमार और मरीचि

आदि की उत्पत्ति। प्रियव्रत की कथा। अश्वशिरा की कथा। रैभ्य का उपाख्यान। धर्मव्याध की कथा। सुप्रतीक की कथा।

११–२०—गौरमुख-उपाख्यान। दुर्जयकृत नारायण-स्तोत्र। श्राद्धकाल और पितृ-गीता का वर्णन। श्राद्ध में भोजन के योग्यों की पहचान। प्रजागण का चरित्र। अग्नि की उत्पत्ति। तिथि-महिमा। अश्विनीकुमार के जन्म की कथा।

२१–३०–गौरी की उत्पत्ति। दक्ष-यज्ञ-विध्वंस। पार्वती के साथ महादेव का विवाह। गणेश-जन्म-कथा। गणेश के प्रति महादेव का शाप। नागोत्पत्ति की कथा। कात्यायनी देवी की उत्पत्ति। वृत्रासुर-वृत्तान्त। कुबेर की उत्पत्ति।

३१–४०–रुद्र की उत्पत्ति। अमावस्या के दिन करने योग्य काम। आरुणिक की कथा। पूस सुदी दशमी के व्रत की कथा।

४१–५०–अनेक एकादशियों के व्रत की कथा।

५१–६०—शुभव्रत, धन्यव्रत, कान्तिव्रत आदि अनेक व्रतों की कथा।

६१–७०–व्रतों की कथा। युग में धर्मभेदों का वर्णन। ग्रहण-योग्य और त्याग-योग्य स्त्री का वर्णन। अगस्त्य के शरीर की कथा।

७१–८०–भूमि और द्वीपों का वर्णन। ब्रह्मा, विष्णु और शिव की अभिन्नता। अमरावती-वर्णन।

८१–९०–भारतवर्ष, शाकद्वीप आदि का वर्णन। अन्धकासुर-व्रत-कथा।

९१-१००-वैष्णवी-चरित। महिषासुर की कथा। रौद्री-चरित। रुद्र-दैत्य का वध।

१०१-११०-रसधेनु, गुरुधेनु आदि अनेक धेनुओं के दान का फल।

१११-१२०-पृथ्वी और सनत्कुमार का संवाद। नारायण और पृथ्वी का संवाद। अपराध-भञ्जन-प्रायश्चित्त।

१२१-१३०-सनातन-धर्मस्वरूप-कथन। माया का रूप। संसार से छूटने के कर्मों का वर्णन। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की दीक्षा-विधि।

१३१-१४०-अनेक प्रकार के प्रायश्चित्तों का वर्णन। चाण्डाल और ब्रह्मराक्षस का संवाद।

१४१-१५०-बदरिकाश्रम-माहात्म्य। रजस्वला-धर्म। मथुरा-माहात्म्य। द्वारावती आदि का माहात्म्य-वर्णन।

१५१-१६०-मथुरा आदि का माहात्म्य। देववन का प्रभाव।

१६१-१७०-चक्रतीर्थ आदि तीर्थों के माहात्म्य। कपिल-चरित। गोकर्ण-माहात्म्य।

१७१-१८०-सरस्वती और यमुना के सङ्गम पर विष्णु की पूजा का फल। कृष्ण-गङ्गा का माहात्म्य। पाञ्चाल ब्राह्मणों का इतिहास। प्रायश्चित्त-निरूपण-विधि। ध्रुव-तीर्थ की महिमा।

१८०-१९१-लकड़ी, पत्थर और मिट्टी की बनी प्रतिमाओं के स्थापन की विधि। श्राद्ध की उत्पत्ति।

१९१-२००-यमालय आदि का वर्णन। यम की सभा और पापियों का वर्णन। नरकों का वर्णन।

२०१–२१०–यमदूतों का स्वरूप। चित्रगुप्त का प्रभाव। यम और चित्रगुप्त का संवाद। पतिव्रता की कथा। धर्मोपदेश।

२११–२१८–प्रबोधिनी-माहात्म्य। गोकर्णेश्वर-माहात्म्य। जलेश्वर का माहात्म्य। शृङ्गेश्वर का माहात्म्य। पुराण-पाठ और सुनने का फल। विषयानुक्रमणिका।

१३–स्कन्दपुराण।

स्कन्दपुराण सब से बड़ा है। इसमें ८० हज़ार से भी ज़्यादा श्लोक हैं। यह कई खण्डों में बँटा हुआ है। इसमें बड़ी गड़बड़ी है। किसी पुराण के मत से कितने खण्ड हैं और किसी के मत से कितने। समझ में नहीं आता कि ठीक ठीक कितना स्कन्दपुराण है। नारदपुराण के मत से इसमें ७ खण्ड पाये जाते हैं। १–माहेश्वर, २–वैष्णव, ३–ब्रह्म, ४–काशी, ५–रेवा, ६–तापी और ७–प्रभास। इन्हीं सातों का वर्णन हम यहाँ पर संक्षेप रूप से करते हैं।

१—माहेश्वरखण्ड। (९३ अध्याय)

दक्ष की कथा। सती की कथा। शिवविवाह। शिवमाहात्म्य। शैव धर्म का ब्राह्मण। रावण की शिव-पूजा। समुद्रमथन का वर्णन। इन्द्र और बृहस्पति का विरोध। नहुष और ययाति की कथा। वृत्रासुर की कथा। दधीचि की कथा। बलि और वामन-अवतार की कथा। शिवरात्रि-व्रत-माहात्म्य। शिव और पार्वती का जुआ खेलना। शिवजी की हार। हारे हुए

शिव का कौपीन धारण करके कैलास छोड़ कर वन में चला जाना। शबरी-रूप धारण कर पार्वती का शिव के पास जाना। तीर्थों का वर्णन। दान का माहात्म्य। ब्राह्मण-प्रशंसा। ओङ्कार-वर्णन। शिव-भक्ति। हर-पार्वती का विहार। शिव-महिमा। कुमारी-चरित। वासुदेव-माहात्म्य। सोमनाथ की उत्पत्ति। कर्मों के फल। घटोत्कच का विवाह। काली-चरित। गायत्री-माहात्म्य।

२—वैष्णवखण्ड।

अयोध्या आदि नगरों का माहात्म्य। चैत्र आदि मासों का माहात्म्य। मार्कण्डेय की कथा। अम्बरीष की कथा। इन्द्रद्युम्न की कथा। विश्वकर्माकृत नरसिंह-प्रसाद। नृसिंह-स्तोत्र। दुर्वासा की कथा। इन्द्रादि अवतार-कथा।

३—ब्रह्मखण्ड।

धर्मारण्य की कथा। अप्सरा और यम की बातचीत। हयग्रीव की कथा। देवासुर-युद्ध। राम-चरित। कलि-धर्म-कथन। शैव-मन्त्र का माहात्म्य। कल्माषपाद की कथा। गोकर्ण-माहात्म्य। सत्यरथ राजा की कथा। रुद्राक्ष-माहात्म्य। काश्मीर-राजा की कथा। पुराण की निन्दा-दोष-निरूपण। पुराण के सुनने का फल।

४—काशीखण्ड।

विन्ध्याचल का वर्णन। पतिव्रता की कथा। यमलोक का वर्णन। चन्द्र और सूर्यलोक आदि लोकों का वर्णन।

काशी को प्रशंसा । गङ्गा की महिमा । गङ्गासहस्रनाम । ज्ञानवापी (काशी) का वृत्तान्त । सदाचार-कथन । स्त्रियों के लक्षण । गृहस्थ धर्म का वर्णन । मृत्यु के लक्षण । दिवोदास राजा का प्रताप-वर्णन । काशी का और विशेष वर्णन । विश्वेश्वर की कथा । काशी के और शिवलिङ्गों की कथा । दुर्ग-दैत्य का पराजय । दक्षयज्ञ की कथा । सती-देह-त्याग ।

५–रेवाखण्ड ।

अवतार-कथा । अनेक तीर्थों का वर्णन । मान्धाता की कथा । कावेरी-माहात्म्य । दुर्वासा-चरित । ओङ्कार की महिमा । धुन्धुमार की कथा । नरक-वर्णन । गोदान-माहात्म्य । शिवलोक का वर्णन । रन्तिदेव राजा की कथा । अनेक तीर्थों की महिमा । रेवाचरित्र की कथा ।

६–तापीखण्ड ।

तापी के दोनों ओर के देवालयों का वर्णन । शरभङ्ग तीर्थ का वर्णन । हरिहरक्षेत्र और पचासों क्षेत्रों और तीर्थों का माहात्म्य-वर्णन । तापी के सागर-मिलन की कथा ।

७–प्रभासखण्ड ।*

पुराणों और उपपुराणों के नाम आदि । प्रभास-क्षेत्र की प्रशंसा । सरस्वती नदी की महिमा । पाण्डवेश्वर आदि सैकड़ों तीर्थों और देवालयों का वर्णन । ब्राह्मणों की प्रशंसा । सावित्री-

* इस खण्ड में प्रायः तीर्थों और क्षेत्रों का वर्णन है ।

माहात्म्य । च्यवन ऋषि की कथा । शिवरात्रि की महिमा । प्रभास-क्षेत्र की यात्रा की महिमा ।

१४—वामनपुराण ।

वामनपुराण चौदहवाँ पुराण है। इसमें कुल ५५ अध्याय ❋ हैं। इसमें वामनावतार की कथा विस्तार से लिखी गई है। संक्षेप-कथा-सूची इस प्रकार है ;—

कथा-सूची

१—१०—पुलस्त्य और नारद का संवाद । हर-पार्वती-संवाद । शंकर की तीर्थयात्रा । सती का देह-त्याग । शिव का कोप । नर-नारायण का उपाख्यान । च्यवन मुनि का पाताल-गमन । नर-नारायण के साथ प्रह्लाद का युद्ध ।

११—२०—सुकेशी राक्षस की कथा । नरक-वर्णन । पुष्कर-द्वीप की कथा । जम्बूद्वीप का वर्णन । सुकेशी को धर्म का उपदेश । रक्तबीज की कथा । विन्ध्याचल में देवी की स्थिति ।

२६—३० शुम्भ-निशुम्भ दैत्यों का वध । शम्बर के साथ तपती का प्रेम । कुरु-राजा की कथा । पार्वती की तपस्या । शिव-पार्वती-विवाह । गणेश का जन्म । धूमलोचन, चण्ड, मुण्ड, रक्तबीज, शुम्भ और निशुम्भ दैत्यों का विनाश । महिषासुर का नाश ।

३१—४०—मुर दैत्य की कथा । पुन्नाम नरक का वर्णन ।

❋ श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस के छपे वामनपुराण में ९५ अध्याय हैं ।

नरक और पापों का निर्णय । पुत्र की कथा । सुर दैत्य की मृत्यु । अन्धकासुर और शङ्कर का विवाद । दण्डक राजा की कथा ।

४१—५५—अन्धकासुर के साथ शिव का युद्ध । अन्धक-वध । बलि का राज्यग्रहण । देवों के साथ युद्ध । अदिति की तपस्या । वामन-अवतार । बलि का पराजय । बलि का पाताल में गमन । सुदर्शन चक्र की स्तुति । बलि के प्रति प्रह्लाद का धर्मोपदेश । ब्राह्मण-भक्ति । बारह महीनों में विष्णु की पूजा का नियम । वृद्ध पुरुष की प्रशंसा ।

१५—कूर्मपुराण ।

पुराणों में कूर्मपुराण पन्द्रहवाँ पुराण है । इसके दो भाग हैं—पूर्व और उत्तर । पहले भाग में ५२ और दूसरे में ४४ अध्याय हैं । दोनों में कुल मिलाकर ९६ अध्याय हैं । लिङ्गपुराण में जो पुराणों में श्लोकों की सूची दी है उसके अनुसार कूर्मपुराण की श्लोक-संख्या १७ हज़ार होनी चाहिए । ऐसा ही और और पुराणों में भी लिखा है । परन्तु जो कूर्मपुराण आज कल मिलता है उसमें १७००० क्या ७००० भी श्लोक नहीं मिलते । इससे मालूम होता है कि असली कूर्मपुराण बड़ा है, या इसी में का कुछ हिस्सा कभी जाता रहा होगा । अस्तु, अब प्रचलित कूर्मपुराण की कथाओं की संक्षिप्त सूची सुनिए ।

पूर्व भाग

कथा-सूची

१—१०—इन्द्रद्युम्न की कथा । वर्णाश्रमधर्म-निरूपण । संसार की उत्पत्ति ।

११—२०—देवी का अवतार । भृगु और मनु आदि की सृष्टि-रचना । दक्षयज्ञ-विध्वंस की कथा । हिरण्यकशिपु और अन्धक का पराजय । वामनावतार-लीला । सूर्यवंश का वर्णन ।

२१-३०—इक्ष्वाकु-वंश का वर्णन । पुरूरवा और जयद्रथ के वंश की कथा । राम और कृष्ण की कथा । सत्य, त्रेता और और द्वापर तथा कलि के स्वरूप का वर्णन । काशी-माहात्म्य ।

३१-४०—व्यास की तीर्थ-यात्रा का वर्णन । प्रयाग-माहात्म्य । प्रयाग में मरने की महिमा । माघ मास में प्रयाग-स्नान का माहात्म्य । यमुना-माहात्म्य । सातों द्वीपों का वर्णन ।

४१-५२—सूर्य का वर्णन । भूलोक आदि लोकों का वर्णन । सागर और द्वीपों का वर्णन । मेरु पर ब्रह्मपुरी का वर्णन । मन्वन्तरों की कथा । व्यास-कीर्तन और महादेव-अवतार की कथा ।

उत्तर भाग ।

१—१०—ज्ञान की प्रशंसा । ज्ञान-योग । ईश्वर की महिमा ।

११—२०—अष्टाङ्ग योग का वर्णन । ब्रह्मचारी के धर्म । भक्ष्याभक्ष्य का निर्णय । नित्यक्रिया । भोजन-विधि । श्राद्धकल्प ।

२१—३०—श्राद्ध के योग्य ब्राह्मण का विचार । अशौच-प्रकरण । दान-धर्म का वर्णन । वानप्रस्थ, संन्यास के धर्म्मों का वर्णन । प्रायश्चित्त-कथन ।

३१—४४—अनेक प्रायश्चित्तों और अनेक तीर्थों के माहात्म्यों का वर्णन । प्रलय का वर्णन । कूर्मपुराण की समाप्ति ।

१६—मत्स्यपुराण ।

सोलहवाँ मत्स्यपुराण है । इसमें सब २९१ अध्याय हैं । इसकी मुख्य मुख्य कथाओं का वर्णन इस प्रकार है ।

१—१०—मनु और विष्णु का संवाद । जगत् की सृष्टि । वैश्यचरित ।

११—२०—चन्द्र और सूर्यवंश का वर्णन । पितृवंश का वर्णन । श्राद्ध-विधि ।

२१—३०—ययाति का चरित । कच को संजीवनी विद्या का लाभ । शर्मिष्ठा और देवयानी की कथा । ययाति का आश्रम-धर्म-कथन ।

३१—४०—ययाति और शर्मिष्ठा का मिलाप । ययाति को शुक्र का शाप । पुरु को राजतिलक । ययाति का स्वर्ग-गमन । ययाति के स्वर्ग से गिरने का कारण ।

४१—५०—यदुवंश की कथा । पुरुवंश का वर्णन ।

५१—६०—अग्निवंश की कथा । कृष्णाष्टमीव्रत ।

६१—७०—अगस्त्य की उत्पत्ति । चन्द्र-सूर्य-ग्रहण में स्नान की विधि । अनङ्गदान व्रत ।

७१—८०—गुरु और शुक्र की पूजा । कल्याणसप्तमी आदि व्रतों का वर्णन ।

८१—९०—गुड़, सुवर्ण, तिल आदि वस्तुओं के पर्वतों के दान की विधि ।

९१—१००—नवग्रह का होम और शान्ति। शिवचतुर्दशो-व्रत । विष्णुव्रत ।

१०१—११०—प्रयाग का माहात्म्य । प्रयाग को तीर्थ-राजत्व कथन । प्रयाग में सब तीर्थों के रहने का वर्णन ।

१११—१२०—प्रयाग-माहात्म्य । भारतवर्ष की प्रशंसा । पुरूरवा के पहले जन्म की कथा । हिमालय का वर्णन । पुरूरवा की तपस्या ।

१२१—१३०—जम्बूद्वीप आदि का वर्णन । खगोल-वर्णन । त्रिपुर की कथा ।

१३१—१४०—त्रिपुर-दाह की विस्तारपूर्वक कथा ।

१४१—१५०—द्वापर और कलि का वर्णन । युगभेद से आयु आदि का वर्णन । धर्मकीर्तन । तारक-वध । कालनेमि दैत्य का पराजय ।

१५१—१६०—पार्वती की तपस्या । मदन-दाह । शिव-विवाह ।

१६१—१७०—हिरण्यकशिपु के वध-प्रसंग में नरसिंह

भगवान् की उत्पत्ति । हिरण्यकशिपु-वध । मधु-कैटभ-वध की कथा ।

१७१—१८०—ब्राह्मणों की सृष्टि । देव-दानव-युद्ध ।

१८१ —१९०—अविमुक्त क्षेत्र की कथा । नर्मदा-माहात्म्य । त्रिपुर-मर्दन । कावेरी-माहात्म्य ।

१९१—२१०—भृगु और अङ्गिरा के वंश का वर्णन । अत्रि, विश्वामित्र, कश्यप वशिष्ठ, पराशर, अगस्त्य, और धर्म के वंशों का वर्णन । सावित्री की कथा । यम और सावित्री का संवाद ।

२११—२२०—यम से सावित्री को वर-लाभ । राज-नीति का वर्णन । राजरक्षा का कथन । राजोपयोगी कथा ।

२२१—२२३—दान-प्रशंसा । दण्ड-प्रशंसा ।

२३१—२४०—अग्नि, वृक्ष और वायु के उत्पातों का वर्णन । अङ्गस्फुरण का फल । स्वप्नों के फल ।

२४१—२५०—वामनावतार-कथा । समुद्र-मथन ।

२५१—२६०—पूजन करने योग्य प्रतिमा का परिमाण ।

२६१—२७०—देवालय की प्रतिष्ठा की विधि ।

२७१—२८०—मगध देश में भविष्य राजाओं की कथा । पुलकवंशी राजाओं का वर्णन । अन्ध्र, यवन और म्लेच्छगण के राज्य का वर्णन । दानों के फल ।

२८१—२९१—विविध दानों का फल और विधि । मत्स्यपुराण में वर्णित तीर्थ और फल ।

१७—गरुड़पुराण ।

गरुड़पुराण बड़ा प्रसिद्ध पुराण है । इस में दो खण्ड हैं । पूर्व और उत्तर । दोनों में कुल २८८ अध्याय हैं । पहले में २४३ और दूसरे में ४५ । इसमें कुल १८ हज़ार श्लोक हैं । यह श्लोक-संख्या मत्स्यपुराण के मत से है ।

कथा-सूची ।

पूर्व खण्ड

१—१०—सृष्टि-रचना । विष्णु और लक्ष्मी की पूजा-विधि ।

११—३०—विष्णुसहस्र-नाम । सूर्य-पूजा । सर्प-मन्त्र । शिव-पूजा । विष-हरण । श्रीधर-पूजाविधि ।

३१—५०—गायत्री के न्यास आदि का वर्णन । गायत्री-माहात्म्य । दुर्गापूजा । देवप्रतिष्ठा का वर्णन ।

५१—७०—दानधर्म । प्रियव्रत-वंशवर्णन । भारतवर्ष का वर्णन । पाताल और नरकों का वर्णन । ज्योतिःसम्बन्धी बातें । स्त्रियों के शुभ और अशुभ लक्षण । रत्नों और मोतियों की पहचान ।

७१—९०—विविध रत्न-मणियों की पहचान । गया-तीर्थ का विस्तारपूर्वक माहात्म्य । १४ मनुपुत्रों का वर्णन ।

९१—१००—हरिध्यान । यज्ञोपवीत का वर्णन । गृह-धर्म-वर्णन । सन्ध्या और पञ्चमहायज्ञों का वर्णन । दानधर्म, श्राद्ध-विधि ।

१०१—१२०—ग्रह-शान्ति । वानप्रस्थ और संन्यासी के

धर्मों का वर्णन। प्रायश्चित्त-विधान । नीतिसार । अनेक व्रतों का वर्णन ।

१२१—१४०—शिवरात्रि और एकादशी आदि व्रतों का वर्णन ।

१४१—१८०—सूर्य, चन्द्र और पुरुवंश का वर्णन । जनमेजय के वंश का वर्णन । पतिव्रता-माहात्म्य । रामायण की कथा। हरिवंश-वर्णन । भारत की कथा । आयुर्वेद कथन में सर्वरोग-निदान और औषध ।

१८१—१९९—भिन्न भिन्न रोगों की औषध । पशुओं की चिकित्सा ।

२००—२३०—विष्णु-कवच । अश्व-चिकित्सा । छन्दः-शास्त्र । धर्मोपदेश, स्नान, तर्पण, वैश्वदेव, सन्ध्या, श्राद्ध, नित्यश्राद्ध, आदि नित्य कर्मों का वर्णन । युगों के अलग अलग धर्म । प्रलय का वर्णन। पापों का फल । आठ प्रकार के योग का वर्णन ।

२३१—२४३—विष्णुभक्ति । हरि-ध्यान । विष्णु का माहात्म्य । नृसिंह-स्तुति । ज्ञानामृत का वर्णन । ब्रह्मज्ञान का वर्णन । आत्मज्ञान का कथन । गीतासार । योग का प्रयोजन ।

उत्तरखण्ड ।

१—२०—गरुड़ और विष्णु का प्रश्नोत्तर । मरणोत्तर गति का वर्णन । नरकों का वर्णन । शव-दाह-विधि । बभ्रु-वाहन और प्रेत का संवाद । मनुष्य-जन्म-लाभ की महिमा । प्रेत-योनि छुड़ाने का उपाय । यमलोक का मार्ग । चित्रगुप्त-नगर में जाने का वर्णन । प्रेतों के रहने की जगह ।

३१—४०—मनुष्यों की आयु का निर्णय। बालमृत्यु का कर्मनिर्णय। दान-माहात्म्य। जीव की उत्पत्ति। साँड़ के छोड़ने का फल और विधि।

४१—४५—पहले जन्मों के कर्मों का सम्बन्ध-वर्णन। आत्महत्यारे के श्राद्ध करने का निषेध। वार्षिक श्राद्ध। पापानुसार जन्म आदि का वर्णन। गरुड़पुराण के पढ़ने और सुनने का फल।

१८—ब्रह्माण्डपुराण।

सत्रह पुराणों का संक्षिप्त वर्णन हो चुका। अब अठारहवें ब्रह्माण्डपुराण का भी वर्णन सुनिए। इस पुराण में कुल १४२ अध्याय हैं। इसके भी दो भाग हैं। पहले भाग का नाम प्रक्रियापाद है और दूसरे का उपोद्घातपाद। पहले पाद में ८० और दूसरे में ६२ अध्याय हैं। ब्रह्मवैवर्त-पुराण के मत से ब्रह्माण्डपुराण के श्लोकों की संख्या १२ हज़ार है। इसमें किसी ख़ास देवता का मुख्यतया वर्णन नहीं किया गया है। अनेक देवों की अनेक कथायें इसमें लिखी हैं। सारे ब्रह्माण्ड का पूरा पूरा वर्णन इसमें किया गया है। इसीलिए इसे 'ब्रह्माण्डपुराण' कहते हैं। इसकी संक्षिप्त कथासूची इस प्रकार है :—

कथा-सूची।

प्रक्रियापाद

१—३०—सृष्टि-वर्णन। देवों और असुरों की उत्पत्ति। योगधर्म। ओङ्कार की महिमा। कल्प-संख्या। ब्रह्म की उत्पत्ति। लोकपाल आदि की उत्पत्ति। ज्वर का वर्णन। देव-वंश-कीर्तन।

३१—६०—भरत-वंश-वर्णन । जम्बूद्वीप का वर्णन । पर्वतों और नदियों का वर्णन । भारतवर्ष का वर्णन । द्वीप-द्वीपान्तरों का वर्णन । नीचे और ऊपर के लोकों का वर्णन । चन्द्र, सूर्य और ग्रह-नक्षत्र आदि का वर्णन ।

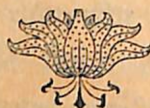
६१—८०—पितरों का वर्णन । पर्वों का निर्णय । युगों का कथन । कलियुग का विशेष वर्णन । धर्म-अधर्म-निरूपण । वेदों के विभाग करने का वर्णन । संहिताकार ऋषिवंश का वर्णन । मन्वन्तरों का वर्णन । पृथु के वंश की कथा ।

उपोद्घात-पाद ।

१—३०—श्राद्ध का वर्णन । वरुण, इक्ष्वाकु और मिथिला के वंशों का वर्णन । राजयुद्ध । परशुराम-चरित ।

३१—६२—भविष्य-कथा । वैवस्वत मनु का वंश । चन्द्रवंश का वर्णन । विष्णुवंश-कथन । भविष्य राजवंश का वर्णन । भविष्य मनुओं का वर्णन । चौदह लोकों और नरकों का वर्णन । गुणानुसार प्राणियों की गति । प्रलय और फिर संसार की रचना का वर्णन ।

समाप्त



भारतवर्ष के धुरन्धर कवि



कन्नोमल, एम० ए०



भारतवर्ष के धुरन्धर कवि

—— :*: ——

सम्पादक

लाला कन्नोमल, एम० ए०

———

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

द्वितीय वार] १९२२ मूल्य ।=)

Published by
Apurva Krishna Bose,
at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

Printed by
Bishweshwar Prasad,
at The Indian Press, Ltd.
Benares-Branch.

सूची

प्रथम भाग

संस्कृत-कवि

पृष्ठ

द्वितीय भाग

भारतवर्ष के धुरंधर कवि

प्रथम भाग

संस्कृत-काव्य

भारतवर्ष काव्य का भाण्डार है। भारतभूमि में काव्य-शक्ति अपनी अन्तिम सीमा पर पहुँच चुकी है। देवताओं के अद्‌भुत कार्य, गन्धर्वों की रसिक क्रीड़ायें, ऋषियों के वैज्ञानिक और धार्मिक उपदेश और मनुष्यों के विविध प्रकार के आश्चर्य-जनक कर्तव्य ये सब विषय कवि-लेखनी के महत्व को प्रकट कर रहे हैं। बड़े से बड़े, ऊँचे से ऊँचे, निरन्तर हिम से आच्छादित पर्वत, जिन पर देवताओं के क्रीड़ा-स्थान हैं; पवित्र से पवित्र नदियाँ, जिनके पवित्र जल-स्पर्श से पाप दूर हो जाते हैं; गहरे और गह्वर वन, जिनमें सूर्यनारायण की किरणें प्रवेश करने को व्यर्थ-प्रयास हो जाती हैं; रमणीक से रमणीक और सुन्दर से सुन्दर उपवन, जो आत्मा को आनन्द-सन्दोह से परिपूर्ण कर देते हैं और मन के उत्साह को बढ़ा देते हैं; अनेक प्रकार के चटकीले भड़कीले सुन्दर पक्षी जो अपनी चित्ताकर्षक बोलियों से चहुँ दिशि पवन को संगीत-पूर्ण कर देते हैं; अनेक प्रकार के सुन्दर सुगन्धित पुष्प नाना

प्रकार की फूली फली वनस्पति जैसी कि उष्ण देशों में हुआ करती है; ये सब विषय भारतीय काव्य-शक्ति उद्दीपन करने में सहायकारी हुए हैं। यहाँ कविता अपरिमित मनो-विचार के पङ्ख लगाकर देवताओं के स्वर्ग आदि लोकों के उच्चतम स्थानों तक जा पहुँची है। इनका वर्णन अनोखे और असामान्य प्रकार से किया गया है। कविता की सुन्दरता को अधिक-तर कर देने को, उसके गुणों को गौरवता देने को साहित्य-शास्त्र को भी इसकी सेवा में नियोजित किया है। संस्कृत-कविता के तीन विभाग हैं। अर्थात् ऐतिहासिक काव्य, औप-देशिक काव्य और नाटक। ऐतिहासिक काव्य जिनको महा-काव्य कहते हैं; विशाल कविता के शिखर हैं। केवल पहुँचे हुए कवियों ने, जिनकी देवताओं तक पहुँच थी और जो सांसारिक विद्याओं के पूर्ण वेत्ता थे, इन महा-काव्यों को रचा है। सांसारिक कवियों की इन महा-काव्यों में कदापि गति नहीं हो सकती; इस कारण यह कार्य कविता के धुरन्धर आत्मज्ञानी कवियों के लिए ही छोड़ दिया गया है। छोटे काव्य और और कवियों ने लिखे हैं वे औपदेशिक हैं, परन्तु इनके विषय में लिखने से पहले यह बतलाना आवश्यक है कि काव्य किसे कहते हैं। एक नामी ग्रन्थ-कर्त्ता काव्य का इस प्रकार वर्णन करते हैं।

काव्य मनुष्य के मन की गुप्त से गुप्त डोरियों को हिला देता है और हृदय के रन्ध्रों में प्रवेश कर आनन्द का एक स्थिर-

तर चमत्कार उत्पन्न कर देता है और श्रेष्ठ और पवित्र आत्माओं में जो संसार-क्रीड़ावलोकन से अति उत्तम भाव और श्रेष्ठ विचार उत्पन्न होता है उनको मीठी भाषा और सुन्दर रीति से प्रकट करना काव्य कहलाता है।

काव्यधर्म, शृंगार और न्याय-सम्बन्धी वैषयिक पदों से प्रतिबद्ध है। छोटे छोटे काव्य कविता के अनमोल रत्न हैं। कवि-कला सुन्दरता और अकृत्रिम लालित्य के दृश्य हैं। इनकी बराबरी संसार भर के साहित्य में नहीं हो सकती। तीसरा भाग नाटक-शास्त्र है। इस पर यूनान और चीन वालों की छाया कुछ भी नहीं पड़ी है जैसा कि कुछ मनुष्य कहते हैं। इसकी रचना की श्रेष्ठता ऐसी बढ़ी हुई है कि द्वीपान्तर के नाट्य-साहित्य इसकी तुलना नहीं कर सकते। हिन्दुओं के धर्म और सभ्यता के उत्तम से उत्तम और श्रेष्ठ से श्रेष्ठ भावों का दर्पण है। हिन्दुओं के नाटक की प्रशंसा में एक प्रसिद्ध ग्रंथकर्ता का यह कथन है कि भारत के नाटक का आभूषण एक ऐसी अलङ्कृत और सुन्दर पद-रचना है कि जिसका ताना-बाना गद्य-पद्य-मय है और जिसमें शब्द-संकेत बन जाते हैं। संकेत, उपमा, उपमेय, रूपक, इसकी पद-रचनाओं के गुण और अनुकूल विषयों की पवित्रता प्रायः इसके आधार हैं जिनके द्वारा वह अपना अद्‌भुत प्रभाव दिखलाता है। मन की तरङ्गों की कुसुम-मालाओं को गाढ़ प्रेम-शृङ्खला में गूँथ कर अपने अनुकूल और परिचित पुष्पलताओं को असीम पुष्पवाटिका की नवीन

और विकसित कलियों से सदैव अलङ्कृत करता है। इस छोटे लेख में इस विषय का पूरा वर्णन करना असम्भव है। अधिक से अधिक यह हो सकता है कि कुछ प्रसिद्ध संस्कृत-कवियों के ग्रंथों के नाम और किंचित् उनका जीवन-चरित्र लिखा जावे। इस लेख में जिन कवियों का वर्णन किया गया है उनमें से प्रत्येक कवि ऐसे हैं कि जिनके ग्रंथों के वर्णन के विषय में एक स्वतंत्र ग्रन्थ बन जाय। कुछ प्रसिद्ध और धुरन्धर कवियों के ग्रन्थों की किंचिन्मात्र समालोचना इस आशा से की जाती है कि उन ग्रन्थों के गुणों की गौरवता की ओर चित्त आकर्षित होवे और हमारे देश के शिक्षित युवक, जिनके चित्त शेक्सपियर, मिल्टन, वर्ड्सवर्थ, टेनीसन, शैली और कीट्स अँग्रेज़ी कवीश्वरों की कविता में निमग्न हैं, भारत-वर्ष की कविता-भाण्डार की ओर ध्यान देवें।

भारतवर्ष के कवियों की श्रेणी के शिखर पर वाल्मीकिजी का पवित्र नाम है। ये भारतीय काव्य के आदि कवि हैं। इनका संसार-प्रसिद्ध काव्य रामायण है, जो कविता-प्रदेश का कोहनूर मणि* है। जो सहस्रों वर्ष और अपरिमित काल से यह मणि अपनी अनुपम और अटल प्रभा को उस स्थान पर कि जिस पर केवल दिव्य दृष्टि और बुद्धि का अधि-कार है डालती रही है।

वाल्मीकिजी का आश्रम गंगा-तट पर था। सीता के

* एक अमूल्य हीरक रत्न है।

युगल पुत्र इसी आश्रम में उत्पन्न हुए थे। वाल्मीकिजी इनके गुरु थे। इनका समय रामचन्द्रजी के जीवन का समय है और यह समय ऐतिहासिक काल से परे है। इनके काल के विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि इनका काव्य रामायण पाँचवीं शताब्दी बी० सी० के पहले बन चुका होगा। प्राय: भारतवर्ष के निवासियों को रामायण की कथा अच्छी तरह ज्ञात है, इस कारण उसका वर्णन इस छोटे लेख में करने से वृथा समय-क्षेप होगा। यदि सच्ची कला-कुशलता की परीक्षा मनुष्यों के जीवन पर प्रभाव डालती है, तो यह काव्य इस प्रभाव से परिपूर्ण है। सृष्टि-रचना, धार्मिक विषय, दृष्टान्त, कथायें, देवताओं के चरित्र और मनुष्यों के इतिहास सब ही इस अद्‌भुत वाल्मीकिकृत इन्द्रजालरूपी काव्य-रचना में भरे हुए हैं। रचना-शक्ति की प्रबलता, कविता का लालित्य, वीर-रस-सम्बन्धी इतिहास के वर्णन की मनोहरता, प्रकृति की शोभा का वर्णन और पद्य-रचना की अद्‌भुतता इस पुस्तक में ऐसी है कि जिसके कारण संसार भर के कवियों की श्रेणी में वाल्मीकिजी का प्रथम स्थान है। इतिहास का जो यथार्थ अर्थ है उस अर्थ को देखने से यद्यपि रामायण इतिहास नहीं है, परन्तु यह हिन्दू जाति के प्राचीन समय की सभ्यता का निस्सन्देह दर्पण है। रामचन्द्रजी के समय से लगा कर सिकंदर बादशाह के आक्रमण करने के समय तक का दृश्य है। हिन्दुओं के सत्य-

वक्तृत्व की प्रशंसा सदैव से चली आती है। ऐसा प्रमाण रहते हुए यह समझ में नहीं आता कि प्राचीन कवियों ने रामचन्द्रजी का जीवनचरित्र मनःकल्पित कैसे बना लिया होगा और इस पुस्तक का धर्म-पुस्तक के तुल्य कैसे प्रचार कर दिया होगा? वाल्मीकिजी बहुत प्राचीन काल में हुए हैं। इनके विषय में ऐसा नहीं कहा जासकता कि इन्होंने रामचन्द्रजी का चरित्र मनःकल्पित रचा है। आधुनिक पश्चिम-देशीय विद्वानों की शंकायें इस विषय में निर्मूल हैं। उनकी हिन्दू जाति के कर्तव्यता के परिचय की अज्ञानता गहरी है।

दूसरे कवि वेदव्यासजी हैं। इनकी लेखन-शक्ति और दिव्य दृष्टि वाल्मीकिजी से कदापि न्यून नहीं है। यह महाभारत और अठारह पुराणों के रचयिता हैं। इनके नाम का गौरव और महत्व हिन्दू जाति के धार्मिक साहित्य पर अपरिमित है। इन्होंने अनेक ग्रन्थ बनाये हैं और इनकी काव्य-शक्ति अतुलनीय है। प्राचीन या आधुनिक समय में ऐसा कोई कवि नहीं हुआ कि जिसने इतने ग्रन्थों की रचना ऐसे महत्त्व से की हो। इनकी समानता नहीं हो सकती। इस लेख में इनके सब ग्रंथों की समालोचना करना असम्भव है, अतः इनके महाभारत ग्रन्थ का इस स्थान पर थोड़ा सा परिचय दिया जाता है।

यह ग्रन्थ हिन्दू-जाति की सभ्यता, इतिहास, धर्म, न्याय, विज्ञान आदि का वृहत् भांडार है। सब पुराण और दूसरे

हिन्दू-ग्रंथों का निकास इसी सोते से है। प्राचीन समय की पुस्तकों में धार्मिक और नैयायिक ज्ञान के लिए यह अद्वितीय है। इस महाकाव्य के अठारह भाग हैं। इसका मुख्य विषय पाण्डव और कुरु-वंशियों के चरित्रों का वर्णन है। तथापि संसार की उत्पत्ति से हिन्दू जाति ने जो कुछ किया है, सभी कुछ इसमें लिखा है। ईलियड और औडिसी की समानता महाभारत से देना ऐसा ही है जैसा कि राजपूताने के अरावली पहाड़ियों की समानता अद्भुत शोभा-युक्त हिमालय पर्वत से देना। महाभारत की रचना का समय अनुमान से पाँचवीं शताब्दी बी० सी० है। परन्तु इस समय के बहुत पीछे तक इस ग्रन्थ में रचना होती रही है। काव्य-गौरवता, नाना प्रकार के विषयों का वर्णन, शुद्ध और सरल पद-रचना इस ग्रंथ में ऐसी है कि संसार भर के साहित्य में कोई ग्रन्थ इसके समान नहीं है। भविष्यत् काल में जब इस देश के विद्वान् स्वतंत्रता से प्राचीन ग्रन्थों की सत्य-परीक्षा में निपुण हो जायँगे उस समय केवल महाभारत ही तो एक ग्रन्थ होगा, जिसकी सहायता से हिन्दू-जाति का इतिहास लिखा जायगा। इसके अमूल्य वृहत्-भांडार में ऐसी विशाल शक्तियाँ भरी हुई हैं कि जिनका उसी समय प्रादुर्भाव होगा जब इस देश के विद्वान् प्राचीन ग्रन्थों की भले प्रकार परीक्षा कर लेंगे। रामायण और महाभारत जिनमें हिन्दू-जाति की सभ्यता के अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं, ऐसे

समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हिन्दुस्तान में इस महान् कार्य को करने के लिए किसी देशीय निब्यूहर* के जन्म होने की आवश्यकता है।

छोटे छोटे कवियों को छोड़ कर छठी शताब्दी ए० डी० तक कोई धुरन्धर कवि नहीं हुआ। चौथी शताब्दी बी० सी० से लेकर पाँचवीं शताब्दी ए० डी० तक बौद्ध धर्म की गौरवता रही और इस समय का बौद्ध-सम्बन्धी साहित्य है। उसके ग्रन्थों ही में कवि-शक्ति का चमत्कार होता रहा। हिन्दू-कवि-साहित्य के लिए यह समय अंधकार का था। इस समय की कविता का कोई अद्भुत ग्रन्थ नहीं पाया जाता, परन्तु जैसे प्रति रात्रि का अन्धकार प्रातःकाल के सूर्योदय से दूर हो जाता है और दिन प्रकाशमान् होता है, इसी प्रकार भारत-कविता के आकाश में अतुल्य तेजस्वी सूर्य के प्रकाश होने से यह अन्धकार लोप हो गया।

यह सूर्य्य जगत्-प्रसिद्ध कवि कालिदास है जिनको सरस्वती का अवतार ही कहना चाहिए। कालिदास की समानता शेक्सपियर से की गई है, परन्तु कालिदास की कविता की सुन्दरता कुछ निराली ही है; और इस काव्य की सुन्दरता और गौरवता के लिए दूसरी जातियों के काव्य-ग्रंथों में अन्वेषणायास करना वृथा है। भारतवर्ष के कवियों ने

---

* यह एक प्रसिद्ध पुरुष इतिहास-रचयिता है। ऐसे महानुभाव की आवश्यकता है।

अपने जीवन-चरित्र के विषय में कभी कुछ संकेत नहीं किया इस कारण इनका किस समय में जन्म हुआ और ये किस समय तक संसार में रहे, इस विषय में कुछ लिखना केवल अनुमान ही है। कालिदास के जीवन-समय के विषय में विद्वानों में बहुत कुछ मत-भेद है और इस विषय में बहुत सम्मतियाँ प्रकट की गई हैं; प्रमाणों के अभाव से कोई सम्मति यथार्थ नहीं मानी गई परन्तु बहुत से विद्वानों की यह सम्मति है कि कालिदास के जीवन का समय उज्जैन के राजा विक्रमादित्य का राज्य-काल था जो विक्रमादित्य छठी शताब्दी के पूर्व-भाग में हुए हैं। इस समय संस्कृत-कविता की बड़ी उन्नति थी। कालिदास के जीवन का समय बम्बई के डाक्टर भावदाजी ने निश्चित किया है और यही इसके लिए सराहे जाते हैं। कालिदासजी ने काव्य, नाटक और स्तोत्र बहुत से रचे हैं। इन विषयों पर जो जो इनके ग्रन्थ अभी तक पाये जाते हैं वे ये हैं:—

काव्य

१ रघुवंश १९ सर्गों में
२ कुमारसम्भव

नाटक

१ विक्रमोर्वशी
२ मालविकाग्निमित्र
३ शकुन्तला

छोटे काव्य

१ मेघदूत
२ श्यामलादण्डक
३ शृङ्गारतिलक
४ राक्षस-काव्य
५ पुष्पभवविलास
६ ऋतु-संहार
७ नलोदय

रघुवंश महाकाव्य है। उसमें रामचन्द्रजी, उनके पूर्वज और उत्तराधिकारियों का वर्णन है। यह काव्य १९ सर्गों में है। परन्तु यह सुना जाता है कि इसके और भी सर्ग थे। क्योंकि उन्नीसवें सर्ग में कथा पूर्ण रीति से समाप्त नहीं हुई है। अकस्मात् त्रुटि हो जाने से संभावना होती है कि या तो कालिदास इस काव्य को आप ही पूर्ण नहीं कर पाये या यह कि सम्पूर्ण काव्य अब मिलता ही नहीं है। कुमारसंभव में कुमार देवता की उत्पत्ति का वर्णन है। इस काव्य में सत्रह सर्ग हैं। आदि में शिव और उमा के परस्पर प्रेम और विवाह का वर्णन है। और अन्त में तारक राक्षस का कुमार से वध होना दिखाया गया है। यह दोनों काव्य काव्यकला की अन्तिम सीमा को प्रकट करते हैं। पद-रचना सुन्दर, मीठी और अद्भुत है, जिसमें चमत्कारी उपमायें और रूपक चतुरता से अलङ्कृत किये हुए हैं।

रघुवंश में ऐतिहासिक कथा बहुत होने से कविता-चमत्कार के दिखाने का अवकाश कम मिला है, परन्तु वह कुमार-संभव में बहुत है। हिन्दुस्तान में काव्य-शास्त्र की अन्तिम सीमा को प्रकट करने वाले कवियों में से कालिदास ही मुख्य हैं। कालिदास के तीनों नाटकों में शकुन्तला-नाटक प्रसिद्ध है। इस नाटक का विषय शकुन्तला और दुष्यन्त में प्रेम होना और इन दोनों का अन्त में मिल जाना सभी जानते हैं। इस नाटक के अनुवाद ने जगत्-प्रसिद्ध जर्मन कवि गैथी को आनन्द के समुद्र में मग्न कर दिया था और उसके मुख से स्वतः प्रशंसा इन वाक्यों में निकल उठी थी—"नये वर्ष की कलियाँ और ढलते हुए वर्ष के फल और जो कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं जिनसे आत्मा सन्तुष्ट, मोहित और आनन्द-परिपूर्ण हो सकती है, और सब पृथ्वी और आकाश की सुन्दर वस्तुओं का समूह इकट्ठा हो जावे तो वह और केवल शकुन्तला का एक बार नाम कह दिया जाय तो इन सब वस्तुओं का एक साथ वर्णन हो जाता है।"

कालिदास के सब ग्रन्थों में शकुन्तला नाटक श्रेष्ठ है और इस नाटक का चौथा अङ्क सब में उत्तम है। इस चौथे अङ्क में शकुन्तला का अपने पिता से विदा का वर्णन अति अद्भुत है।

पद-रचना की शोभा और कोमलता, प्रकृति की चतुरता के वर्णन की सुन्दरता और अद्भुतता, मन के गुप्त से गुप्त भावों का वर्णन, विशेष करके करुणा रस का वर्णन,

वह भी उस समय का कि जब शकुन्तला वन से बिदा होकर गई है, यह सब ऐसे अलङ्कार हैं कि जिनसे दुनिया भर के नाटकों में इस नाटक को अद्भुत और निराला बना देते हैं। यूरुप में जब इस नाटक का अनुवाद पहुँचा तो बहुत से यूरुप के विद्वानों ने इसे पढ़ कर संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया।

दूसरा नाटक विक्रमोर्वशी पाँच अङ्कों में है। इसमें पृथ्वी और आकाश की घटनाओं का वर्णन है। पुरूरवा राजा का उर्वशी अप्सरा से प्रेम होना इस नाटक का मुख्य विषय है। यह कथा मत्स्य-पुराण से उठा कर नाटक के रूप में रक्खी गई है। यह नाटक ऐसी चतुराई से रचा गया है कि घटनायें स्वाभाविक रीति से होती जाती हैं। प्रारब्ध नाटक में मुख्य रक्खा गया है। राजा अप्सरा और देवताओं का अधिष्ठाता इन्द्र भी प्रारब्ध की दृढ़ शृंखलाओं से बँधे हुए दिखाये गये हैं।

तीसरा नाटक मालविकाग्निमित्र है। इसमें प्रतिदिन जो हिन्दुस्तान के राजाओं के महलों में घटनायें हुआ करती हैं उनके दृश्य हैं। इससे उस समय की सामाजिक दशाओं का पूरा हाल मालूम होता है। राजा अग्निमित्र का अपनी रानी की दासी मालविका पर मोहित होना मुख्य विषय है। रानी अपनी दासी को अति रूपवती समझ कर राजा की दृष्टि से बचाने का प्रयास करती है और राजा मालविका से गुप्त रीति से मिलता रहता है और रानी से छिपा कर रखने का प्रयास करता है। मालविका अन्त में एक राजकुमारी

निकलती है और राजा की पत्नी होने के सर्वथा योग्य पाई जाती है। कुछ विद्वानों को यह शङ्का है कि यह नाटक कालिदास का बनाया हुआ नहीं है क्योंकि इसमें वह काव्य-चमत्कार नहीं दिखाई देता जो उनके दूसरे ग्रन्थों में है। यह शङ्का वृथा है क्योंकि वही सुन्दर वाक्य और वही सुन्दर उपमायें और रूपक जो कालिदास के दूसरे ग्रन्थों में पायें जाते हैं इसमें भी हैं। यह नाटक अच्छी तरह पढ़ा जाय तो इस शङ्का का स्वयं ही निवारण हो जाता है। छोटी छोटी काव्य-रचना में कालिदास का वही उच्च स्थान है। इनका बनाया मेघदूत जगत्-प्रसिद्ध है और सब विद्वान् मुक्त-कण्ठ होकर एक स्वर से इसकी प्रशंसा करते हैं। इस काव्य में सौ से अधिक श्लोक हैं। एक यक्ष जिसका अपनी स्त्री से वियोग हो गया था और जो बँधुवा बना कर दूर स्थान में रक्खा गया था अपनी स्त्री के वियोग में अति दुःखित था, उसने एक मेघ के टुकड़े को देख कर अपनी स्त्री के पास संदेशा भेजा है; यह दृश्य इस काव्य में दिखाया गया है। उस यक्ष का घर अलकापुरी में था जिसका मार्ग अच्छी तरह से बताया गया है और पति-वियोग में स्त्री की दशा भी दिखाई गई है। यक्ष ने मेघ को प्रिय मित्र बना कर अपना संदेशा देकर भेजा है। सहस्रों वर्षों से यह काव्य कविता की कला का दृश्य समझा गया है और इसकी देखादेखी पीछे से बहुत से काव्य बनाये गये हैं।

दूसरा काव्य श्यामलादण्डक है। यह सरस्वती अर्थात्

विद्या की देवी का स्तोत्र बहुत ही मधुर और सरस पदों में है। शृङ्गारतिलक में २३ श्लोक हैं, जो बड़े अद्‌भुत और लालित्य-पूर्ण हैं। राक्षस-काव्य में किसी पुरुष ने अपनी स्त्री को संदेशा भेजा है। इसकी कविता बड़ी मनोहर है। इसमें चित्रकाव्य के अलंकार बहुत से हैं, जो कालिदास से पीछे के कवियों में पाये जाते हैं।

पुष्पभवविलास एक छोटा सा शृङ्गार-रस का काव्य है। इसमें कवि की मन-तरगों और भावों का पूरा दृश्य है। इन छोटे काव्यों से बढ़ कर छः भागों में ऋतुसंहार काव्य है। इसमें छहों ऋतुओं का वर्णन है। प्रकृति की शोभा का मनमोहक और सुन्दर वर्णन है और इसी के साथ शृङ्गार-रस के भाव और दृश्य भी मिले हुए हैं। इससे कवि की प्रकृति के साथ बड़ी सम्मति पाई जाती है। स्वाभाविक दृश्यों के और वन-शोभाओं के वर्णन करने में कवि की दृष्टि-सूक्ष्मता और उनकी अतुल चतुरता पाई जाती है। नलोदय काव्य चार सर्गों में है। राजा नल का गया हुआ राज्य फिर मिलना इस काव्य का विषय है। छन्दों की विचित्रता, पद-रचनाओं के दृश्य, चित्ता-नन्दक शोभा का वर्णन और सुन्दर कविता के भावों का निरू-पण इसमें कूट कूट कर भर दिया है। कालिदास के ग्रन्थों की पूरी रीति से प्रशंसा करना असम्भव मालूम होती है। भाषा की अधृष्टता, कवि-रचना की बहुलता, मधुरता और लालित्य, शोभा-वर्णन की विचित्रता, वाग्धारा-प्रवाह की सरलता, सार्व-

गुणदेशीय सत्य के वर्णन की चतुरता; ये सब गुण कालिदास को यश के उच्चतम शिखर पर स्थान देते हैं।

दूसरे कवि, जिनका समय छठी शताब्दी ए० डी० का उत्तरार्द्ध है, भारवि हैं। इनका बनाया हुआ काव्य अठारह सर्ग में किरातार्जुनीय है। इसमें अर्जुन और किरात-वेषधारी शिवजी के साथ युद्ध का वर्णन है। इनकी लेखन-प्रणाली बड़ी गंभीर और प्रभावशालिनी उच्चतम श्रेणी की है। उपमायें प्रकृति की शोभा से ली गई हैं और वे बड़ी अद्भुत, स्वाभाविक और मनोहर हैं। पन्द्रहवें सर्ग में सब प्रकार की वाक्य-चतुरता और विविध प्रकार की कविता का चमत्कार है। इसको समझने में बड़े बड़े विद्वान् चक्कर खाते हैं। केवल किरातार्जुनीय ने ही भारतवर्ष के कवियों की श्रेणी में भारवि का नाम सदा के लिए अमर बना दिया है।

रत्नावलि, नागानन्द और प्रियदर्शिका प्रसिद्ध नाटकों के प्रसिद्ध कवि हर्षवर्द्धन भी भारवि के समय के ही लगभग हुए थे। ये कन्नौज के राजा थे। ये ६०६ ईसवी में राजगद्दी पर बैठे थे। ये स्वयं कवि थे। इनका दरबार उस समय के नामी नामी कवि और विद्वानों से भरा रहता था। कादम्बरी के प्रसिद्ध कवि बाणभट्ट जिन्होंने इन राजा का जीवनचरित्र श्री-हर्षचरित्र के नाम से लिखा है, इनके दरबार में प्रधान कवि थे। ऊपर लिखे तीन नाटकों के कर्त्ता कोई कोई बाणभट्ट को कहते हैं परन्तु यह ठीक नहीं मालूम होता। इस विषय में

अभी तक विचार भी हो रहा है। इन तीनों नाटकों में पद्य-रचना की सरलता, छन्दों की मधुरता, उपमाओं की अद्‌भुतता, रसलालित्य और चरित्ररचना की गंभीरता कूट कूट कर भरी है। रत्नावली चार अंकों में है। इसमें राजा उदयन और उसकी रानी वासवदत्ता की दासी सागरिका के बीच में गुप्त प्रेम की कथा है। राजा और दासी में गुप्त मेल होता रहा परन्तु रानी को भी इस मामले का कुछ भेद मिल गया है। इसमें बहुत से विघ्न पड़े हैं परन्तु अन्त में राजा की मनोकामना पूर्ण हो गई है। यह ज्ञात हुआ है कि यह दासी रत्नावलि लंका देश की एक राजकुमारी है। वह जहाज़ के डूब जाने से राजा के दरबार में लाई गई थी। कालिदास के नाटक मालविकाग्निमित्र से यह नाटक बहुत मिलता जुलता है। दूसरा नाटक नागानन्द चार अंकों में है। राजा जीमूत-वाहन संसार के दुःखों से दुःखित होकर अपनी राजगद्दी त्याग करते हैं और वन में जाकर अपने माता-पिता की सेवा में आरूढ़ होते हैं। इस स्थान में गन्धर्वों के राजा की पुत्री के साथ इनका प्रेम हो जाता है। यह सुन कर कि सर्पों के राजा और गरुड़ में ऐसी संधि हुई है कि सर्पों के राजा को एक सर्प प्रति दिन गरुड़ की भेंट करना होगा, जीमूत-वाहन को इस पर बड़ी दया आई है और सर्पों का जीव बचाने के लिए अपने जीव को आपत्ति में डालना स्वीकार किया है। गरुड़ ने राजा को पहचान लिया है और

यह प्रतिज्ञा करदी है कि अब मैं जीवहिंसा कभी नहीं करूँगा। नाटक के अन्त में गौरी देवी आती हैं और राजा को पुनर्जीवित कर देती हैं। यह नाटक दयाभाव से भरा हुआ है और इस कारण कुछ विद्वानों की यह सम्मति है कि इस नाटक में बौद्ध मत का प्रभाव पड़ा है; परन्तु आत्म-बलिदान करना वैदिक मत में उतना ही पाया जाता है जितना बौद्ध धर्म में; इस हेतु यह शङ्का करना वृथा है। प्रियदर्शिका नाटक भी चार अंकों में है और यह रत्नावलि नाटक का उत्तर है। अंग राजा की पुत्री का नाम प्रियदर्शिका है। राजा अपनी पुत्री को उसके निश्चित पति के पास ले जाता है, परन्तु मार्ग में कलिंग राजा ने उसको पकड़ कर कारागृह में रख दिया है। अनेक आपत्तियाँ सहन करती हुई प्रियदर्शिका उनके पास पहुँचती है, जिनसे उसका विवाह निश्चित हुआ था और वे उस पर मोहित हो जाते हैं। अंत में ज्ञात होता है कि यह वही स्त्री है जिसके साथ उनका विवाह होना निश्चित हुआ था। प्रियदर्शिका को एक सर्प ने डसा; परन्तु राजा ने उसे पुनर्जीवित कर दिया; फिर राजा की रानी ने यह जान कर कि प्रियदर्शिका कौन है, उसको अपने पति की भेंट कर दिया है।

आधी शताब्दी के अन्तर से भट्ट कवि का नाम प्रकट होता है। इनका समय ६५० ईसवी के लगभग है। भट्ट कवि का प्रधान ग्रन्थ रावण-वध बाईस सर्ग का है।

इसमें रामचन्द्रजी के चरित्रों का वर्णन है। इस ग्रन्थ से कवि का भाषा पर अधिकार, शब्दकोष की बहुलता, व्याकरणशास्त्र की धुरन्धरता, साहित्यशास्त्र का चमत्कार पूर्ण रीति से प्रकट होते हैं। यद्यपि इस काव्य में बड़े बड़े लम्बे शब्द और लेखन-प्रणाली अकृत्रिम ज्ञात होती है तथापि काव्य में सुन्दरता और मनोहरता की झलकें दिखाई देती हैं।

भट्ट ही के समय में भर्तृहरि हुए। इनका समय एक ही था। ये भर्तृहरि-शतक के नीति, शृंगार और वैराग्य तीनों शतकों के कर्त्ता हैं जिनको प्राय: सभी जानते और पढ़ते हैं और उनके श्लोकों को समय समय पर कहते हैं। इतना प्रचार और किसी संस्कृत-ग्रन्थ का नहीं है। वास्तव में संस्कृत-काव्य के ये शतक अमूल्य रत्न हैं। कोई कोई ऐसा कहते हैं कि भर्तृहरि और भट्ट एक ही थे। कोई कोई भर्तृहरि के पुत्र कहते हैं। परन्तु परम्परा से यह सुनते आते हैं कि उज्जैन के राजा विक्रमादित्य के बड़े भाई भर्तृहरि थे। ये बहुत बड़े वैयाकरण थे। इनके दो प्रसिद्ध ग्रन्थ व्याकरण में वाक्यपद और वाक्यसार हैं। अपनी रानी की दुष्टता से दु:खित होकर इन्होंने संसार को त्याग दिया था।

कादम्बरी और हर्षचरित्र के बनाने से बाण का नाम जैसा प्रसिद्ध हुआ वैसा उनके गद्य रचित पार्वतीपरिणय ग्रन्थ से नहीं। यह नाटक पाँच अंकों में है। इस में पार्वती और शिव

के विवाह का वर्णन है। कालिदास और भवभूति के दूसरे नाटकों की तरह यह नाटक नहीं है, तथापि इसके छन्दों में मधुरता और लेखन-प्रणाली में सरलता दिखाई देती है।

आठवीं शताब्दी में नाट्य-शास्त्र की अन्तिम सीमा पर जानेवाले भवभूति का चमत्कार दिखाई देता है। विदर्भ अर्थात् बरार देश के पद्मपुर गाँव के रहने वाले भवभूति थे। उनके माता-पिता और गुरु के नाम नीलकंठ, जातूकर्णी और ज्ञानाभिधा थे। पिछले दिनों में कन्नौज के राजा के दरबार में भवभूति चले गये थे। यह भी कहा जाता है कि राजा यशोवर्मा के साथ ये काश्मीर को गये थे। ये बड़े विद्वान् ब्राह्मण थे; वेद और शास्त्रों में इनकी बड़ी गति थी जैसा कि इनके ग्रन्थों से पाया जाता है। इनके ग्रन्थ निम्न-लिखित हैं।

१—महावीरचरित्र

२—मालतीमाधव

३—उत्तररामचरित्र

महावीरचरित्र सात अङ्कों में वीर-रस-प्रधान अद्भुत नाटक है। इसमें रामचन्द्रजी के पराक्रमों का वर्णन वीर-रस में बड़ी चतुराई के साथ लिखा है।

मालतीमाधव दश अङ्क का नाटक है, इसमें उज्जैन के राज-मंत्री की पुत्री मालती का और एक दूसरे राज्य के राज-मंत्री के लड़के माधव का "जो उज्जैन में विद्याध्ययन करता

था," परस्पर प्रेम होने का वर्णन है । इसके साथ माधव के मित्र मकरन्द और राजा के सखा की बहिन मदयन्ती का भी हाल लिखा गया है । मालती और माधव एक दूसरे पर मोहित हो गये हैं परन्तु राजा ने यह निश्चय कर लिया है कि मालती का विवाह मेरे सखा के साथ होगा। किन्तु मालती का प्रेम उस सखा के प्रति कुछ नहीं है। राजा का यह यत्न पूरा नहीं हो सका क्योंकि मकरन्द ने मालती का वेष धारण करके सखा के संग विवाह कर लिया और मालती, माधव का मेल दो बौद्ध मत की साधु स्त्रियों की सहायता से हो गया।

उत्तररामचरित्र सात अङ्कों में संस्कृत के नामी नाटकों में से एक है। सच्ची काव्य-चतुरता से रामचन्द्रजी के उत्तर-जीवन की घटनाओं का वर्णन इस नाटक में किया गया है। यह नाटक करुणा-रस-प्रधान है। सीता का वनवास, उनका वाल्मीकिजी के आश्रम में जहाँ लव-कुश जन्मे हैं रहना, इन लड़कों और रामचन्द्रजी की सेना का युद्ध और अन्त में बारह वर्ष पश्चात् सीता का रामचन्द्रजी से सम्मेलन—यह सब इस नाटक का विषय है। कालिदास और भवभूति बराबर के कवि माने जाते हैं; परन्तु उत्तररामचरित्र में भवभूति कालिदास से बढ़ गये हैं। ऐसी सभी विद्वानों की सम्मति है। करुणा और वीर-रस का वर्णन करने में भवभूति निस्सन्देह अद्वितीय हैं।

निम्न-लिखित वाक्यों से कालिदास और भवभूति की तुलना की गई है। कालिदास की रचना में वाक्य-सूक्ष्मता है। वह पाठकों के मन में पूरा प्रभाव करके चमत्कार उत्पन्न कर देती है। भवभूति की रचना में प्रायः वाक्य-बाहुल्य है और रचना-शक्ति की इतनी अधिकता है कि वह पाठकों के चित्त को दृढ़ और बद्ध कर देती है। भवभूति के काव्य में वाच्यार्थ की शोभा है और कालिदास के काव्य में व्यंग्यार्थ की। करुणा-रस और वीर-रस के भावें के वर्णन करने में भवभूति कालिदास से बढ़े हुए हैं। कालिदास की पद-रचना सरल, मनोहर और स्वाभाविक है। पर भवभूति की किंचित् अस्वाभाविक। इनमें प्रभाव-पांडित्य और महत्व अधिक है। प्राकृत शोभा और वीर-रस-सम्बन्धी विषय-रचना भवभूति का स्वाभाविक धर्म है। प्रकृति के चमत्कारी दृश्यों को चित्रबद्ध कर के खड़ा कर देना भवभूति का काम है। शान्त और रमणीक शोभाओं को सरल और मनोहर रीति से दिखा देना कालिदास का काम है। सामान्य वस्तु और कार्यों में भी सुन्दरता को निकाल कर दिखा देना और सूक्ष्म भावें को पृथक् पृथक् कर बता देना भवभूति की चतुरता है। पद-रचना और वाक्य-विवरण में भवभूति एक ही हैं। भावानुकूल शब्दों के प्रयोग करने में इनकी कुशलता अतुल है। कालिदास के समान इनकी भाषा में भी माधुर्य और कवित्व-चमत्कार है। मत-सम्बन्धी विषयें में कालिदास

संशयात्मा दिखाई देते हैं । इनका जीवन प्रेम-सम्बन्धी घटनाओं से भरा हुआ है । इसके विरुद्ध भवभूति धर्म और शास्त्र-मर्यादा पर दृढ़ परिकर-बद्ध हैं। छोटी से छोटी धर्म-विषय की रीति इनके लेख में नहीं बचती । कालिदास में चित्त-वैचित्र्य बहुत है । ये भवभूति से कला-कुशलता में बढ़कर हैं । कालिदास की मन-वैचित्र्य की तरंगें एक परिमित सीमा तक जाती हैं; परन्तु भवभूति की गति इससे भी अधिक है । अंगरेज़ी कवि, जिनकी तुलना कालिदास और भवभूति से की जाती है, शेक्सपियर और मिल्टन हैं । जैसे कि अंगरेज़ी साहित्य का विद्वान् शेक्स-पियर और मिल्टन के ग्रन्थ पढ़े बिना नहीं कहा जा सकता वैसे ही संस्कृत का सरस विद्वान् कालिदास और भवभूति के ग्रन्थ पढ़े बिना नहीं हो सकता । यदि शेक्सपियर और मिल्टन के नाम अँगरेज़ी-काव्य से कभी लोप हो जायँ तो विचार कर सकते हैं कि क्या आपत्ति होगी । इसी प्रकार यदि संस्कृत-साहित्य से कालिदास और भवभूति के ग्रन्थ अन्त-र्धान हो जायँ तो आपत्ति की सीमा विचारणीय है । संस्कृत के इन दो धुरन्धर कवियों के ग्रन्थ पढ़े बिना किसी भारतवासी का विद्याध्ययन संपूर्ण नहीं समझना चाहिए ।

आठवीं शताब्दी के लगभग विशाखदत्त कवि हुए हैं। इनका केवल एक ग्रन्थ मुद्राराक्षस पाया जाता है । यह संस्कृत साहित्य में अद्भुत ग्रन्थ है । यह राजनीति-संबंधी नाटक है । इसमें न किसी स्त्री का वर्णन और न कोई शृंगार-रस का

भाव है। इसका विषय चाणक्य की चतुरता और राजनीति। सम्बन्धी प्रपञ्च है। नन्द राजा को गद्दी से उतार कर उसके सहायकारी राक्षस को चन्द्रगुप्त की ओर जिसको उसने राजा बनाया है, आकर्षण करना है। यद्यपि इस नाटक में काव्य-चमत्कार और मधुरता विशेष नहीं है, तथापि इसकी भाषा प्रभावशालिनी और व्यावहारिक है।

संस्कृत की कवि-मण्डली में माघ कवि अद्भुत चमत्कारी रचनाकारक हैं। इनका समय ८६० ईसवी के लगभग बताया जाता है। यह दत्तक के पुत्र और सुप्रभा के प्रपौत्र थे। इनका महाकाव्य शिशुपाल वध है। इसमें २० सर्ग हैं। वह संस्कृत के धुरन्धर काव्यों में उच्चस्थानीय है। इसने इन कवि का नाम अमर कर दिया है। हिन्दुस्तान में संस्कृत का कोई विद्वान् ऐसा नहीं है, जिसने कुछ न कुछ इस चमत्कारी काव्य शिशुपाल-वध को न पढ़ा हो। श्रीकृष्ण का शिशुपाल को वध करना, इस काव्य में दिखाया गया है। राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में शिशुपाल ने अति निन्दा की और उसका परिणाम यह था कि अन्त में श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का वध किया। ग्रन्थकर्त्ता की काव्य-शक्ति के चमत्कार का महत्व और संस्कृत-वाणी की रचना में कुशलता इस काव्य में अच्छे प्रकार प्रकट होती हैं। उच्च पद की पद-रचना इस काव्य में पाई जाती है। ग्रन्थ के प्रति श्लोक में ग्रन्थ-कर्ता की विद्या का गौरव और महत्व स्पष्ट दिखाई देते हैं।

अद्वितीय वेदान्तदर्शनाचार्य शंकराचार्य ८२० शताब्दी के लगभग हुए। ये कवि भी थे। इन्होंने बड़े सुन्दर और मनोहर स्तोत्र बनाये हैं। शिवजी का शिवानन्दलहरी नामक शत श्लोक-बद्ध एक अद्‌भुत स्तोत्र है। ऐसा ही स्तोत्र पार्वतीजी का सौन्दर्य-लहरी है। महादेवजी का एक दूसरा स्तोत्र ३७ श्लोक-बद्ध शिवभुजंग स्तोत्र है। ये सब स्तोत्र भक्तिभाव-परिपूरित हैं। पद-रचना मधुर, सुन्दर, मनोहर और रोचक है।

भट्टनारायण आठवीं और नवीं शताब्दी के मध्य में हुए हैं। ये कन्नौज के एक ब्राह्मण थे, जो बङ्गाल देश में जा बसे थे और मृग राजा की उपाधि से प्रसिद्ध हो गये थे। इनका वेणीसंहार नाटक ६ अङ्कों में है। इसकी बड़ी प्रशंसा है। इस नाटक में महाभारत-युद्ध का विषय है। विशेष कर उस घटना का दृश्य जिसमें द्रौपदी का जूड़ा राज-सभा में खींचा गया और जिस जूड़े को अन्त में द्रौपदी ने अपने पतियों की जय होने पर बाँधा है। पद-रचना प्रभाव-शालिनी और चमत्कारिणी है। यह वीर-रस का अद्वितीय नाटक है। इसकी जो प्रशंसा दीर्घ काल से होती रही है वह यथार्थ है।

राजशेखर कवि नवीं शताब्दी के लगभग हुए हैं। इनके चार ग्रन्थ पाये जाते हैं; परन्तु कई कारणों से विश्वास होता है कि उन्होंने और भी कई ग्रन्थ रचे हैं, जो मिलते नहीं हैं। इन ग्रन्थों में से किसी किसी ग्रन्थ के थोड़े से टुकड़े मिलते हैं। चार ग्रन्थ जो इनके मिलते हैं वे ये नाटक हैं:—

१—बालरामायण
२—विद्धशालभंजिका
३—कर्पूरमंजरी
४—बालभारत

बालरामायण दश अङ्कों में है। संस्कृत के सब से बृहत् नाटकों में है। रामचन्द्रजी के जीवन की घटनाओं का इसमें विषय है। कविता की सुन्दरता और कई भाषाओं पर कवि का अधिकार इस ग्रन्थ के बहुत स्थलों में पाया जाता है। विद्ध-शालभंजिका रत्नावलि नाटक से मिलता है और पहले नाटक की अपेक्षा छोटा है। लाट के राजा ने कोई पुत्र न होने के कारण अपनी कन्या मृगांकवती को लड़के के वेष में छिपा कर विद्याधरों के राजा की रानी के पास भेजा है। रानी इस पर मोहित हो जाती है, परन्तु अन्त में यह भेद खुल जाता है। नाटक के अन्त में विद्याधरों के राजा के साथ मृगांक-वती का विवाह हो जाता है। कर्पूरमंजरी चार अङ्क का नाटक है। राजा चन्द्रपाल और राजकुमारी कुन्तला का परस्पर प्रेम और अनेक आपत्तियों के पश्चात् विवाह होना इस नाटक में दिखाया गया है। चौथा नाटक बालभारत असंपूर्ण है। उसके केवल दो अङ्क उपलब्ध होते हैं। द्रौपदी का स्वयंवर और महाभारत की कुछ कुछ और घटनाओं का इसमें विवरण है। काव्य-मधुरता और लेखन-प्रणाली की सुन्दरता के कारणों से राजशेखर की सच्चे कवियों में गणना है। छन्द-रचना में

इनका अधिकार प्रशंसनीय है। इनके अनुप्रास और कविता के अलङ्कार अद्भुत हैं।

मुरारि कवि का समय ८५५ और ८८४ ईसवी के मध्य में है। इनके पिता का नाम वर्द्धमान और माता का तन्तुमती देवी था। ये मुद्गल गोत्र के थे। इनके ग्रन्थ का नाम अनर्घराघव है, जिसमें रामचरित्र है। चरित्र-वर्णन ऐसा सरल और प्रभावशाली है कि इसका नाम बाल-वाल्मीकि पड़ गया था। इनके ग्रन्थों के प्रत्येक श्लोक से कोष और संस्कृत-साहित्य पर इनका पूरा अधिकार सूचित होता है। संस्कृत-कवियों की श्रेणी में इनका मध्यम स्थान है।

धार के राजा भोज की सभा के कवि दामोदर मिश्र थे। दशवीं शताब्दी के उत्तर भाग में ये हुए हैं। इनका हनूमान-नाटक है जिसको महानाटक भी कहते हैं। यह चौदह अङ्कों में है। हनूमानजी को लक्ष्य करके इसमें रामचन्द्रजी के चरित्रों का वर्णन किया गया है। इस नाटक के विषय में यह कहा जाता है कि हनूमानजी ने यह नाटक स्वयं लिखा था; परन्तु यह ज्ञात होने पर कि वाल्मीकिजी ने रामचरित्र को इनसे अच्छा लिखा है हनुमानजी ने समुद्र में उन शिलाओं को, जिन पर यह नाटक लिखा था, डाल दिया। किसी धीवर को कुछ शिला के टुकड़े मिल गये थे, जिनको उसने राजा भोज की भेंट कर दिये। यह जो परम्परा चली आती है यथार्थ हो या निर्मूल इस विचार की कोई आवश्यकता नहीं है। ग्रन्थ

की वर्तमान दशा से विदित होता है कि वह असम्पूर्ण है। भारवि, कालिदास, माघ और दण्डी इन चार कवियों में काव्य-वाक्यों की मनोहरता और सुन्दरता के लिये दण्डी प्रसिद्ध है।

दशवीं शताब्दी में धार-निवासी भोज देव और दण्डी एक समय में रहते हुए पाये जाते हैं। गद्य-ग्रंथ-रचयिताओं में से दण्डी का नाम अद्वितीय है। ऐसा पण्डित कौन सा है जो दशकुमारचरित्र इनका ग्रन्थ न पढ़ता हो। काव्यादर्श और छन्दोविच्छित्ति कविता में इनके दो ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों के पढ़ने से इनकी वाक्य-कुशलता पूर्ण रीति से ज्ञात होती है।

ग्यारहवीं शताब्दी के तीसरे या चौथे भाग में बिल्हण कवि हुए हैं। इनका जन्म काश्मीर में हुआ था परन्तु ये मथुरा के निकट आ बसे थे। इन्होंने देशाटन बहुत किया था। अन्त में वे कल्यान के राजा विक्रम की सभा में विद्यापति के स्थान पर नियत किये गये थे। करुणासुन्दरी चार अङ्क के नाटक में एक चालुक्य वंश के राजा और एक विद्याधर राजकुमारी की परस्पर प्रेम-घटना दिखाई गई है। नाटक के अन्त में इन दोनों का विवाह हो जाता है। भाषा बड़ी मनोहर है और कथा-वर्णन अति रसिक है। विक्रमाङ्क-देवचरित्र अठारह सर्ग का महाकाव्य है। राजा विक्रम के जीवनचरित्र का इसमें हाल है। चूड़ापंचशिखा एक छोटा काव्य है, जिसमें इस कवि का और एक राजकुमारी का

जिनके यह अध्यापक थे, विषय-वर्णन है। बिल्हण कवि का कविता में उच्च स्थान है और इनके ग्रन्थों में काव्य-कुशलता, मधुरता और पद-सरलता पाई जाती है। चूड़ापंचशिखा शृङ्गार-रस-कविता का एक दृश्य ग्रन्थ है और युवक रसिकों के पढ़ने योग्य है।

ग्यारहवीं शताब्दी में कृष्ण मिश्र नाटकों के रचयिता हुए। इनका प्रसिद्ध नाटक प्रबोधचन्द्रोदय है। इस नाटक में राग, द्वेष, लोभ, विवेक, माया मोह, इत्यादि नाटक के (पात्र) करने वाले हैं। पहले तीन अङ्कों में जो जो दुराचार और दुश्चरित्र उस समय वर्तमान थे, उनको दिखाया गया है। बौद्ध और जैन मत का भी कुछ कुछ वर्णन किया गया है। संसार के महामोह का विवेक की सेना से, जिसके सेनापति क्षमा, बुद्धि और सन्तोष हैं पराजित होना और विवेक का जय होना दिखाया गया है। नाटकों में इसकी गणना ऊँची नहीं है; परन्तु नीति और धार्मिक उपदेश जो इस चरित्र द्वारा दिखाये गये हैं बहुत कुछ हैं। इस कारण यह नाटक अधिक माननीय है। इसमें वर्णन बड़े मनोहर हैं। भाषा स्वाभाविक और सरल है और सच्ची कविता की सुन्दरता स्थल स्थल में चमकती है।

१११६ ईसवी में गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव कवि हुए। इनका नाम बड़ा प्रसिद्ध है। ये उच्च जाति के ब्राह्मण बंगाल देश के ग्राम-निवासी थे। ये भगवान् श्रीकृष्णजी के परम भक्त थे। ये अपनी कविता को बना कर कृष्ण की मूर्ति के सामने गाया करते

थे और इनकी स्त्री इनके गाने के साथ नाचती थी। बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन की सभा में जयदेव कवि थे। गीतगोविन्द के बारह भाग हैं, और प्रत्येक भाग में चौबीस चौबीस गीत अष्टपदी के नाम से दिये हुए हैं। प्राचीन भारत के संगीत का चमत्कार इसमें पाया जाता है और इस ग्रन्थ की अब भी बड़ी प्रतिष्ठा है।

आर्यावर्त के कवियों में श्रीहर्ष का उच्च स्थान है। ऐसी कहावत चली आती है कि कन्नौज के राजा विजयचन्द के दरबार में इनके पिता किसी दूसरे कवि से कविता के वाद-विवाद में हार गये थे, इस कारण उन्हें घर पर बैठना पड़ा और मरते समय उन्होंने अपने लड़के से इस अपमान का बदला लेने को कहा। अपने पिता की अन्तिम इच्छा पूर्ण करने के लिए श्रीहर्ष ने विद्याध्ययन किया और गङ्गा-तट पर एक महात्मा ने इनको चिन्तामणि मन्त्र सिखा दिया। इस मन्त्र के प्रभाव से शास्त्रार्थ में ये बड़े से बड़े पण्डितों का सामना कर सकते थे और संस्कृत-कविता को बड़े प्रभाव से और बिना अवरोध कर सकते थे। ये राज-सभा में फिर आगये और इन्होंने प्रसिद्ध काव्य नैषधचरित्र को रचा, जिसका सम्मान कश्मीर के सभी पण्डितों और विद्वानों ने किया। यहाँ तक कि सरस्वतीजी ने अर्थात् एक काशीस्थ संन्यस्त महात्मा ने जो कि पूर्ण योगी थे, इस ग्रन्थ को स्वयं स्वीकार कर कवि का सम्मान किया। असाधारण काव्य-कुशलता और अगाध पाण्डित्य के कारण इनको

'नरभारती' की उपाधि दी गई । इनकी उपस्थिति का समय बारहवीं शताब्दी के लगभग है । नैषधचरित्र महाकाव्य बाईस सर्गों का है । ऐसी कहावत चली आती है कि इस ग्रन्थ के १२० सर्ग थे, परन्तु, अति शोक है कि इस ग्रंथ के और कोई सर्ग अभी तक नहीं मिले हैं ।

निषध देश के राजा का चरित्र, विदर्भ-राजकुमारी दमयन्ती के साथ उनका प्रेम, इन राजकुमारी के पास एक हंस द्वारा उनका संदेशा भेजना, दमयन्ती का स्वयंवर विवाह और उसके जीवन का परिवर्तन और अन्त में राजमहल में दोनों का मिल जाना—ये सब विषय इस काव्य में दिखाये गये हैं । संस्कृत-साहित्य में यह अद्वितीय ग्रन्थ है और जब से यह रचा गया है आज तक संसार भर के पण्डितों ने इस का सम्मान किया है । लेखन-प्रणाली पाण्डित्य-गर्भित है और प्रत्येक पंक्ति से ग्रन्थकार की अगाध विद्या की सूचना होती है । विद्वान् से विद्वान् मनुष्य को इस ग्रंथ का अर्थ समझना कठिन हो जाता है । साहित्य, अलंकार, काव्य-कुशलता, व्यंग्य-संकेत इत्यादि इस ग्रंथ में कूट कूट कर भरे हैं । कविता और विद्वत्ता की अन्तिम सीमा का यह ग्रंथ है । इस की तुलना और किसी ग्रंथ से नहीं हो सकती । दूसरे ग्रंथ जो इन्होंने रचे हैं ये हैं:—

१—खंडनखाद्य, यह ग्रंथ उसी समय के रहने वाले कवि उदयन के ग्रंथों का खंडन है ।

२—गन्धर्व-कुल-प्रशस्ति (१) ।

३—छन्द-प्रशस्ति (२) । ये दोनों ग्रंथ उन राजाओं की प्रशंसा में हैं जिन्होंने उनका सत्कार किया था ।

४—शिवभक्ति, जो शिव की स्तुति है ।

५—अर्णव-वर्णन, जिसमें समुद्र का वर्णन है ।

६—सशांकचरित्र, यह चम्पु काव्य है जिसमें इस नाम के गौड़ राजा का चरित्र वर्णन किया गया है ।

इन ग्रंथों का सम्मान और प्रशंसा तब ही हो सकती है जब यह लोक-दृष्टि के सामने लायें जायँ ।

सोलहवीं शताब्दी में उद्दंड और जयदेव कवि हुए । उद्दंड का जन्मस्थान आधुनिक कांची के समीप था । परन्तु राजा शक्तिमान विक्रांच के सम्मान करने से यह मालावार में आ बसे थे । जमोरन नाम के राजा की राजधानी में इनका रहना पाया जाता है । इनका एक ही ग्रन्थ पाया गया है । यह मालिकामारुत के नाम से दस अङ्क का एक नाटक है । मालतीमाधव नाटक से इसका बहुत मिलान पाया जाता है । इसकी रचना ऐसी मनोहर है कि छठी और सातवीं शताब्दी के काव्य-ग्रन्थों से इसकी तुलना हो सकती है । श्लोक बड़े मनोहर और रोचक हैं और छन्द देश, काल और पात्र के अनुसार हैं । वक्तृतायें दृष्टान्त, कहावतें और दूसरे अलंकारों से भरी हुई हैं ।

जयदेव, जिनका समय सोलहवीं शताब्दी में है, विदर्भ

देश के रहने वाले थे। ये बड़े नैयायिक थे। प्रसन्नराघव नाम का इनका बनाया हुआ एक नाटक सात अङ्कों में है जिसमें रामचरित्र है। रामचन्द्रजी के प्रसिद्ध जीवनचरित्र से इनके वर्णन में प्राय: भिन्नता पाई जाती है, परन्तु इसको कवि ने बड़ी कुशलता से दरसाया है। इनकी कविता में बड़ी सरलता और मनोहरता पाई जाती है। छोटे काव्य-रचयिताओं में इनका उच्च स्थान है।

सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में नीलकण्ठ कवि हुए हैं। ये बड़े कट्टर शैव थे। इनका चम्पु काव्य (जिसमें गद्य पद्य दोनों हैं) नीलकण्ठविजय है। दूसरा ग्रन्थ शिव-लीलावर्णन है। यह बाईस सर्गों का है। इसमें शिवलीला का वर्णन है।

भगीरथ के परिश्रम से देवलोक से गंगाजी का पृथ्वी पर आना, यह इनके गंगावैतरणी नामक १८ सर्ग के ग्रन्थ में दिखाया गया है। छोटी छोटी कविता के रचे हुए इनके ग्रन्थ ये हैं:—

१—कालिविडम्बन

२—सभारञ्जन

३—अन्योपदेशशतक

४—नलचरित्रनाटक

यह नाटक ७ सर्ग का है और श्रीहर्ष के नैषधचरित्र के ढंग पर है। कवियों में नीलकण्ठ की उच्च श्रेणी में गणना

है। इनकी वर्णन-प्रणाली बड़ी मनोहर है। भाव-चमत्कारी और भाषा स्वाभाविक है।

जगन्नाथराज पण्डित सत्रहवीं शताब्दी में हुए। इनके काव्य-ग्रन्थ ये हैं--

१--अमृतलहरी—इसमें यमुनाजी की स्तुति है।

२—करुणालहरी—इसमें विष्णु की स्तुति है।

३—प्राणाभरण —इसमें कामरूप के राजा प्राणनारायण के प्रभाव और चमत्कार का वर्णन है।

४—भामिनी विलास—यह शृङ्गार-रस का बड़ा प्रसिद्ध काव्य है। इसकी श्लोक-रचना स्वाभाविक, सरल और मनोहर है। कविता संगीत-गर्भित और चमत्कारी है।

सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में माधव कवि हुए। इनका उद्धवदत्त नामक कविता का ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ का विषय उद्धवजी के द्वारा वृन्दावन की गोपियों का श्रीकृष्णजी के समीप संदेश भेजना है। संसार-प्रसिद्ध मेघदूत काव्य के ढंग पर यह काव्य बनाया गया है।

——

नीचे के चित्र से संस्कृत के उन प्रसिद्ध कवियों के नाम, समय और ग्रन्थ विदित होते हैं जिनका इस पुस्तक में वर्णन किया गया है।

नम्बर	कवि	समय	महाकाव्य	नाटक	काव्य
१	वाल्मीकि	छठी शताब्दी बी० सी०	महाकाव्य	...	...
२	व्यास	पाँचवीं शताब्दी बी० सी०	महाकाव्य	...	...
३	कालिदास	५५० ए० डी०	काव्य	नाटक	छोटा काव्य
४	भारवि	६०० ए० डी०	काव्य	...	...
५	श्रीहर्षवर्धन	६०६ ए० डी०	...	नाटक	...
६	भट्टि भट्ट	६४१-५१ ए० डी०	काव्य	...	...
७	भर्तृहरि	६५१ ए० डी०	...	...	छोटा काव्य
८	बाण	७०० ए० डी०	...	नाटक	...
९	भवभूति	८०० ए० डी० के लग भग	...	नाटक	...
१०	विशाखदत्त	... ...	...	नाटक	...
११	माघ	८६० ए० डी०	काव्य	...	...

१२	शङ्कराचार्य	८२०	ए० डी०	...	...	छोटा काव्य
१३	भट्टनारायण	८		...	नाटक	...
१४	राजशेखर	९००	ए० डी०	...	नाटक	...
१५	मुरारि	८५५-८८४	ए० डी०	...	नाटक	...
१६	दामोदर मिश्र	९५०	ए० डी०	...	नाटक	...
१७	दण्डी	दसवीं शताब्दी		काव्य	...	...
१८	बिल्हण	ग्यारहवीं शताब्दी का तीसरा या चौथा भाग		काव्य	नाटक	छोटा काव्य
१९	कृष्णमित्र	११००	ए० डी०	...	नाटक	...
२०	जयदेव	१११६	ए० डी०	...	...	छोटा काव्य
२१	श्रीहर्ष	१२००	ए० डी०	काव्य	...	...
२२	उद्दण्ड	१६००	ए० डी०	...	नाटक	...
२३	जयदेव	१६००	ए० डी०	...	नाटक	...
२४	नीलकण्ठ	१६३७	ए० डी०	काव्य	नाटक	...
२५	पं० जगन्नाथराज	१७००	ए० डी०	...	...	छोटा काव्य
२६	माधव	१७००	ए० डी०	...	...	छोटा काव्य

सूचीपत्र उन दूसरे संस्कृत-कवियों का जिनका वर्णन इस पुस्तक में नहीं है।

१ अश्वघोष	...	प्रथम शताब्दी ए० डी०
२ हर्षेण	...	चतुर्थ शताब्दी के मध्य में
३ वत्स भट्टि	...	पाँचवीं शताब्दी
४ घटखर्पर	...	छठी शताब्दी
५ कुमारदास	...	,, ,,
६ धनेसर	...	सातवीं शताब्दी के पूर्व भाग में
७ हरिश्चन्द्र	...	आठवीं शताब्दी
८ मूक	...	,, ,,
९ रत्नाकर	...	,, ,,
१० अभिनन्दन	...	नवीं शताब्दी
११ अमरू	...	नवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध
१२ भट्ट शिवस्वामी	...	,, ,,
१३ कविराज	...	नवीं या दसवीं शताब्दी
१४ लोलिम्बराज	...	दसवीं शताब्दी
१५ क्षमेश्वर	...	ग्यारहवीं शताब्दी
१६ सुभट	...	,, ,,
१७ गोवर्धन	...	,, ,,
१८ लीलासुख	...	,, ,,
१९ हेमचन्द्र	...	,, ,,
२० शङ्खधर	...	बारहवीं शताब्दी के पूर्वभाग

२१ मङ्ख	...	बारहवीं शताब्दी के पूर्व भाग
२२ उमापतिधर	...	,, ,, ,,
२३ अभयदेव	...	,, ,, ,,
२४ जलहन	...	,, ,, ,,
२५ काञ्चनाचार्य	...	बारहवीं शताब्दी
२६ वासुदेव	...	,, ,,
२७ सोमेश्वर	...	,, ,,
२८ श्रीधरदास	...	,, ,,
२९ अमरचन्द्र	...	तेरहवीं शताब्दी के मध्य में
३० रुद्रदेव	...	तेरहवीं शताब्दी के अन्त में
३१ विश्वनाथ	...	,, ,, ,,
३२ वीरानन्द	...	तेरहवीं शताब्दी
३३ कृष्णानन्द	...	,, ,,
३४ मेरुतुङ्ग	...	चौदहवीं शताब्दी के आरंभ में
३५ जगधर	...	चौदहवीं शताब्दी के मध्य में
३६ विश्वनाथ कविराज	...	,, ,, ,,
३७ शार्ङ्गधर	...	चौदहवीं शताब्दी
३८ वेदान्तरत्तक	...	,, ,,
३९ धनदराज	...	पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्व भाग में
४० सायना	...	,, ,, ,,
४१ बामन भट्ट बाण	...	पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्व भाग में
४२ माथुरदास	...	पन्द्रहवीं शताब्दी

४३ कृष्णदत्त	...	पंद्रहवीं शताब्दी
४४ चन्द्रछन्द	...	,, ,,
४५ विद्यावधि	...	,, ,,
४६ रामचन्द्र	...	पंद्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में
४७ कवि कर्पूर	...	,, ,, ,,
४८ श्रीहरि	...	पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में
४९ कृष्णकवि	...	,, ,, ,,
५० सोमराज दीक्षित	...	सोलहवीं शताब्दी
५१ रूप गोस्वामि	...	सोलहवीं शताब्दो के उत्तर में
५२ सुन्दर मिश्र	...	,, ,, ,,
५३ जगमोहन	...	,, ,, ,,
५४ गोविन्दमाखन	...	सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में
५५ महादेव	...	सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व
५६ चक्र कवि	...	,, ,, ,,
५७ विक्रम	...	,, ,, ,,
५८ रामभद्र	...	सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में
५९ चन्द्रशेखर	...	सत्रहवीं शताब्दी के उत्तर
६० आनन्दराय मुख	...	,, ,, ,,

६१	लक्ष्मीपति	... सत्रहवीं शताब्दी
६२	पाण्डवविजय	... ,, ,,
६३	शङ्करदीक्षित	... अठारहवीं शताब्दी के उत्तर
६४	रामेश्वर	... ,, ,, ,,
६५	विद्यानाथ	... अठारहवीं शताब्दी

द्वितीय भाग

हिन्दी-कविता

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक संस्कृत-काव्य के श्रेष्ठ ग्रन्थों की रचना हो चुकी थी। संस्कृतकाव्य-रूपी आकाश-मण्डल में प्रचण्डतर प्रकाशमान सूर्य-रूपी कवि धुरन्धर अपने अतुलनीय प्रभाव का प्रकाश कर चुके थे। आगामी शताब्दियों में अल्प प्रकाशमान नक्षत्र इतस्ततः प्रकाश करते रहे, परन्तु पूर्व समय के मध्याह्न सूर्य की तेज़ी के समान प्रभावशाली धुरन्धर कवियों के सामने उनकी ज्योति मलिन थी। यह अवनति की दशा कितनी ही शोचनीय क्यों न हो, परन्तु हिन्दी-कविता के उदय से इसका परिवर्तन हो गया। हिन्दी-कविता का चमत्कार कुछ कम आश्चर्यकारक नहीं है।

यद्यपि ग्यारहवीं शताब्दी में चन्द्र कवि की अमर, यशस्वी, अति उत्तेजित वीर-रस और देशभक्ति-परिपूरित कविता के प्रचण्ड प्रभाव से अकस्मात् प्रकाशित हो कर हिन्दी-कविता सुन्दर, मनोहर और विचित्र शोभास्थान की श्रेणियों में निरन्तर चमत्कार दिखाती रही, तो भी १५ वीं शताब्दी में कबीर, नानक, नाभादास, मीराबाई इत्यादि परमभक्त साधु कविश्रेणी की निर्मल भक्ति-संयुक्त कविता दिव्य प्रतिभा से प्रभावित होती हुई दृष्टिगोचर हुई।

सोलहवीं शताब्दी में गंग, तुलसीदास, विहारी, केशवदास इत्यादि कविवरों की शुद्ध, स्निग्ध, मनोहर और ललित कविता के दिव्य चमत्कारों का दृश्य दिखाई दिया। थोड़े समय के लिए हिन्दी कविता का मार्ग भक्ति-परायण कविता के स्थान में फिर जा पड़ा। परन्तु इस समय सूरदास, हरिदास इत्यादि कवियों की परम पुनीत धार्मिक और भक्ति-संयुक्त कविता उत्तुङ्ग और अगम्य शिखरों पर जा पहुँची। १७—१८ और १९ वीं शताब्दियों में भूषण, मतिराम, गिरधर, पद्माकर, पजनेश, ठाकुर, भवन और बाबू हरिश्चन्द्र की शृंगार, वीर, नीति और काव्य-कुशलता-पूर्ण कविता विचित्र विद्युच्छटा से भरी हुई दिखाई दी।

संसार के किसी देश और मनुष्य जाति के इतिहास की और अपने कवि-कुशलता का गौरव एवं चमत्कारी कार्यों के प्रभाव से ये कवि सदैव शोभा बढ़ा सकते हैं। संसार में कविशिरोमणियों की श्रेणी में इनका स्थान अति उच्च है और विकराल काल की ध्वजा पर इनका नाम सदा के लिए अमर लिखा हुआ है।

ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में चन्द्र कवि हुए, जो हिन्दी कविता में प्रसिद्ध अँगरेज़ी कवि चौसर के तुल्य थे। चौहान वंश के राजा पृथ्वीराज के दरबार में इनका बहुत कुछ सम्मान हुआ। ये केवल कवि ही न थे, किन्तु एक बड़े प्रबल योधा भी थे। इन्होंने पृथ्वीराज के संग युद्ध कर के १०९२ ईसवी में प्राण त्याग दिया। इनका प्रसिद्ध काव्यग्रन्थ पृथ्वीराज

राइसा है । यह बृहद् ग्रन्थ ६९ भागों में विभाजित है । इसमें नाना प्रकार के छन्दों में पृथ्वीराज के वीर-कर्तव्यताओं का वर्णन है । इस ग्रन्थ में राजपूत जाति का इतिहास है । इस जाति का महत्व, वीरता और सभ्यता बड़ी कवि-कुशलता से दिखाई गई है । बींच बीच में और विषयों का भी वर्णन है । हिन्दी-साहित्य का यह अद्वितीय ग्रन्थ चला आता है । बीच के समय के राजपूतों के चरित्रों का एक प्रकार का भांडार है। प्राचीन क्षत्रिय जाति का जो दृश्य महाभारत में दिखाया गया है, वही दृश्य पिछले समय के राजपूतों का पृथ्वीराज-राइसा में दिखाया गया है। इस ग्रन्थ का विद्वानों द्वारा मथन होने की आवश्यकता है । नागरी-प्रचारिणी सभा ने जो यह समग्र ग्रन्थ हाल में छपाया है, उसमें कितनी ही त्रुटियाँ रह गई हैं। ऋग्वेद की खोज में और छपाने में जो परिश्रम मैक्समूलर ने अपने जीवन-पर्यन्त किया था, ऐसे ही विद्वान् तथा परिश्रम की इस ग्रन्थ के उद्धार करने में आवश्यकता है । यह खेद का विषय है कि अभी तक हमारे किसी एक दूसरे विद्वान् ने इस ग्रन्थ के उद्धार-कृत्य को अपने हाथ में नहीं लिया । अँगरेज़ी भाषा में अनुवाद न होने के कारण इस ग्रन्थ का परिचय आँग्ल-भाषा-भाषी विद्वान्-मंडली को नहीं हुआ है । इसकी भाषा सुबोध हिन्दी नहीं है, इसमें राजपूती बोली का बहुत कुछ सम्मेलन है । छप्पय-रचयिताओं में चन्द्र कवि का सब में उच्च स्थान है । इस छन्द के रचने में पीछे के कवि इस गौरवता तक कदापि

नहीं पहुँच सके। ये बड़े चमत्कारी कवि थे। पृथ्वीराज व उसके वीर राजपूतों की वीरता और पराक्रम इनकी कविता से उद्दीपन किये गये हैं। राजपूत-जाति की स्वतन्त्रता का प्रेम और रण में वीर-कर्तव्यों का प्रादुर्भाव वीर-रस-गर्वित इस ग्रन्थ के छन्दों से हुआ था।

चन्द्र कवि के वंश में शार्ङ्गधर कवि हुए। ये राजा हमीरदेव चौहान के दरबार में कवि थे। १२७३ ई० में इनका जन्म हुआ था। इनके दो प्रसिद्ध काव्य हम्मीर-राइसा और हम्मीरकाव्य हैं।

भारतवर्ष में कबीर का नाम सब जानते हैं। ये जुलाहे थे और इनका जन्म काशीजी में सन् १३९९ ई० में हुआ था। इस समय की खोज से ज्ञात हुआ है कि यह सिकन्दरलोदी बादशाह के समय में हुए थे और १५१९ ई० में इनका देहान्त हुआ था। रामानन्दजी के ये चेले थे। इन्होंने अपना पन्थ भी पृथक् चलाया है। इनके विचार बड़े उदार थे और जाति-पाँति के भेद का इन्होंने कुछ विचार नहीं रक्खा है। ये अनोखे ढंग के धर्मप्रचारक थे। इनकी लिखी हुई साखियों ने इनका नाम हिन्दी-कविता में अमर कर दिया है। इनके दूसरे ग्रन्थ बीजक-रामायण इत्यादि हैं। भाषा की सरलता, भावों की अगाध-सत्यता, काव्य-रचना की सुन्दरता, शब्दों के अर्थ का गुरुत्व और उपमा, रूपक इत्यादि की समय तथा काल की योग्यता इनके

ग्रन्थ-साखियों में कूट कूट कर भर दिये हैं। इस ग्रन्थ से बालकों के उपदेश के लिए बहुत से दोहे पाठशालाओं की पुस्तकों में रक्खे जाते हैं।

संसार के धर्म-प्रचारकों में नानकदेव का नाम सब कोई जानता है। इनकी कविता इनके 'ग्रन्थसाहब' ग्रन्थ से सम्यक् प्रकार सूचित होती है। यह ग्रन्थ बड़ा धर्म-प्रतिपादक और उत्तमताओं से भरा हुआ है। ये सन् १४६९ ई० में हुए और १५३९ ई० में देह छोड़ कर परलोक सिधारे।

भक्तिमाल के रचयिता नाभादास भी बड़े प्रसिद्ध कवि थे। १४९३ ई० में इनका जन्म हुआ। ये जयपुरस्थ अग्रदास के शिष्य थे। अपने गुरु की आज्ञा से इन्होंने भक्तमाल ग्रन्थ १०८ छप्पय छन्दों में रचा था। इस ग्रन्थ में १०८ भक्तों का चरित्र वर्णन है। कविता के ग्रन्थों में इस ग्रन्थ का बड़ा सम्मान है। जब से यह ग्रन्थ लिखा गया है तब से इसके प्रभाव से बहुत से मनुष्यों का जीवन सुधर गया है।

हिन्दी कविता के साहित्य में मीराबाई की कविता बड़े सम्मान से देखी जाती है। इनका समय १४९८ ई० से १५६३ ई० तक था। राठौर राज्यवंश की ये राजकुमारी थीं। इनका विवाह चित्तौर के राजा कुम्भकर्ण के साथ हुआ था। विवाह के कुछ काल अनन्तर ही इनके पति युद्ध में मारे गये और ये विधवा हो गईं। ये बड़ी रूपवती थीं। अपने मन्दिर में श्रीकृष्णजी की मूर्त्ति के सम्मुख अपने

हृद्गत प्रेम को कविता-बद्ध कर अर्पण करती थीं। यह मन्दिर चित्तौर के क़िले में था। ऐसी कहावत प्रचलित है कि श्रीकृष्ण-जी की मूर्त्ति इनकी भक्ति तथा प्रेम से ऐसी प्रसन्न हुई कि उसने आसन त्याग नीचे उतर कर इनकी भक्ति की प्रशंसा की। यह देख कर मीराबाई ऐसी आनन्द में मग्न हो गईं और इनका आत्मा सदैव आनन्द भोगने की अभिलाषा से स्वकीय कलेवर को त्याग परमात्मा के अनन्त आनन्द-संदोह में मग्न हो गया। दो मन्दिर जिनमें मीराबाई और उनके पति पूजा करते थे, नव्वे लाख रुपये लगा कर बनाये गये थे।

मीरा बाई का रचित रागगोविन्द एक अद्भुत ग्रन्थ है। उसकी कविता मीराबाई के हार्दिक भक्ति के रस में डूबी हुई है और इनके विरचित भजन बड़े सम्मान से गाये जाते हैं।

सोलहवीं शताब्दी के मध्य में प्रसिद्ध कवि गंग हुए हैं। ये बादशाह अकबर के दरबार में मुख्य कवि थे। बादशाह ने बड़ी उदारता से इनका सत्कार किया था। राजा बीरबल और दूसरे नामी दरबारियों ने भी इस कवि को बहुत द्रव्य दिया था। कविता में गंग कवि अद्वितीय थे। जो कुछ इनकी कविता पाई जाती है उससे इनकी कवि-कुशलता का पूरा पता लगता है। विशेष कर इनकी कविता में अकबर बादशाह की गौरवता और प्रभाव दिखाया गया है। इनके और ग्रन्थ अभी नहीं मिले हैं, परन्तु फुटकर कवित्त इनके कितने ही संग्रहों में पाये

जाते हैं और वे बहुत से विषयों पर हैं। ये कविता के अमूल्य रत्न हैं और बड़े सम्मान से कहे जाते हैं।

तुलसीदासजी का हिन्दी-साहित्य में वही स्थान है, जो इँग्लिश-साहित्य में शेक्सपियर का है। संसार के प्राचीन या नवीन कवियों में किसी को इतना सम्मान प्राप्त नहीं हुआ जैसा कि तुलसीदासजी को मिला। भारतवर्ष के बीस करोड़ सब जातियों के हिन्दुओं में कदाचित् कोई ऐसा हो कि जिसने तुलसीदासजी का नाम न सुना हो और जिसने इनके अमर ग्रन्थ रामायण को न पढ़ा हो। इस समय भारतवर्ष के सब धर्म-ग्रन्थों में उत्तम स्थान रामायण ने पाया है। १५४४ ई० में इनका जन्म हुआ, १६२४ ई० में ये परलोक सिधारे। ये इलाहाबाद के ज़िले में राजापुर के निवासी, कान्यकुब्ज सरयूपारी ब्राह्मण थे। निम्न-लिखित ग्रन्थ तुलसीदासजी के बनाये हुए कहे जाते हैं—

१—रामायण—चौपाइयों में

२—कवित्त रामायण

३—गीतावली रामायण

४—छन्दावली रामायण

५—बरवा रामायण

६—दोहावली रामायण

७—कुण्डलिया रामायण

८—सतसई

९—रामशलाका
१०—संकटमोचन
११—हनुमद्बाहुक
१२—कृष्णगीतावली
१३—जानकीमंगल
१४—पार्वतीमंगल
१५—कर्का छन्द
१६—रोला छन्द
१७—झूलना छन्द
१८—विनयपत्रिका
१९—कुछ और भी छोटे छोटे ग्रन्थ

तुलसीदासजी रचित छन्द, दोहा, चौपाइयों से परिपूर्ण रामायण की बराबरी और किसी हिन्दी-कविता के साहित्य से नहीं हो सकती और न हिन्दी-साहित्य में विनय-पत्रिका के से भाव और अद्वितीय गुण पाये जाते हैं। तुलसीदासजी ने बहुत से तीर्थ-स्थानों में भ्रमण किया था। काशी, अयोध्या, वृन्दावन, प्रयाग इत्यादि तीर्थ-स्थानों में निवास किया था। जो रामायण इनके हाथ की लिखी हुई थी, वह अभी तक वर्तमान है। उसके एक या दो पत्र फट गये हैं। भारतवर्ष की कवि-मंडली में तुलसीदासजी सूर्य-समान गिने जाते हैं। रामायण की कथा और उसके अद्भुत गुण सब को ज्ञात हैं, इस कारण उसका विशेष हाल यहाँ पर लिखना आवश्यक

नहीं है। भाषा इस ग्रंथ की परम शुद्ध, सरल, मनोहर, प्रसाद-गुणपूर्ण, रस-पूर्ण और बड़े धर्माभिप्राययुक्त है। तुलसीदासजी की अद्भुत लेखनी से सामान्यतः लेख में अद्भुतता दीखने लगती है। हिन्दी-साहित्य में रामायण का सदैव उच्चतम स्थान रहेगा। यह ग्रन्थ एक अनुपम तथा अमर कवि का है, जो सदैव इसी प्रकार सम्मानित बना रहेगा। ऐसा धर्म-प्रथानुयायी आत्मा को मालूम होता है।

बिहारीलाल चौबे ब्रज के निवासी जयपुर के राजा जयसिंह के दरबार में मुख्य कवि थे। इनका जन्म १५४५ ई० में हुआ था। बिहारीसतसई ७०० छन्द का संग्रह है। इसके लिए राजा जयसिंह ने प्रति छन्द की एक एक मुहर भेंट की थी। हिन्दी-साहित्य में इसकी बराबरी का कोई रसिक ग्रन्थ नहीं है। प्रत्येक दोहा कला-कुशलता का रत्न है। भाषा सुन्दर व सरस है, उपमा व रूपक चमत्कारी हैं। प्रत्येक दोहा अर्थ-गौरव से गर्वित है और जब उसका आशय निकाल कर विदित किया जाता है तो बड़ी व्याख्या करने की आवश्यकता होती है। इस भाषा-ग्रन्थ पर ३० से अधिक टीकायें पाई जाती हैं। इन पर एक संस्कृत-टीका भी है। सब दोहे ऐसे शब्दों में विरचित हैं कि जिनके अनेक अर्थ निकल सकते हैं। इस अद्भुत ग्रन्थ को जिसने नहीं पढ़ा उसने हिन्दी-विद्वत्ता की सफलता नहीं पाई है। इस ग्रन्थ की प्रशंसा और मान्यता पढ़ कर ही हो सकती है। पीछे के कतिपय कवियों

ने विहारी की कविता की छाया पर ग्रंथ रचे हैं, परन्तु उस की बराबरी नहीं हो सकती। जैसे तुलसीदास की रामायण के तुल्य कोई ग्रन्थ नहीं है, उसी प्रकार विहारीसतसई की तुलना रसिकता में किसी दूसरे ग्रन्थ से नहीं हो सकती। डाक्टर ग्रियर्सन् ने कि जिन्होंने हिन्दी-साहित्य के पढ़ने में अपना बहुत अमूल्य समय दिया था, इस पुस्तक को बहुत अच्छी तरह छपाया है और उसके आदि में अँगरेज़ी की एक विस्तृत भूमिका भी लिखी है। जिनको कविता से प्रेम है और उसके आनन्द में मग्न रहते हैं, उनके लिए सतसई से बढ़ कर कोई रसिक कविता नहीं हो सकती।

यदि बिहारी अपने विषय के अद्वितीय और अनुपम कवि हैं, तो केशवदास भी हिन्दी काव्य तथा साहित्य के धुरन्धर कवि हैं, मानो हिन्दी काव्य का साहित्य इन्हीं से निकला है।

केशवदास का समय १५६७ ईसवी पाया जाता है। ये सनाढ्य ब्राह्मण थे। टेहरी इनका जन्मस्थान था। बुन्देलखण्ड में ओरछे के राजा मधुकर की सभा में इन्होंने सम्मान पाया। उन राजा ने इनकी विद्या तथा गुणों की प्रशंसा की थी और इनके पुत्र इन्द्रजीत राजा ने २१ गाँव जागीर में उन्हें भेंट किये थे। इनके ग्रन्थ ये हैं।

१—विज्ञानगीता

२—काव्यप्रिया

३—रसप्रिया

४

४—रामचन्द्रिका

५—पिङ्गल का ग्रन्थ रामालङ्कृत मंजरी

इनके ग्रन्थ विद्वानों के पढ़ने योग्य हैं। पंडित तथा बुद्धिमान् मनुष्यों के लिए इनकी कविता रची गई है।

रामचन्द्रिका रामायण की छाया पर लिखी गई है। प्रत्येक समय और भाव के अनुकूल छन्दों को निर्मित कर रामचन्द्रजी का चरित्र इसमें दिखाया गया है। इनके ग्रन्थ साहित्य-रत्नों के भाण्डार हैं। इसमें से इनके अनन्तर के कवियों ने रत्नों को चुनकर अपने ग्रन्थों की शोभा बढ़ाई है। इन्होंने काव्य-शास्त्र के भी विषयों पर कविता विरचित की है। ये इस शास्त्र के अद्वितीय विद्वान् थे। कविता कैसी होनी चाहिए और उसमें क्या विषय लिखना चाहिए—इत्यादि सब बातों का उपदेश इनके ग्रन्थों में पाया जाता है। यह अत्यन्त खेद का विषय है कि इनके सब ग्रन्थों का एक संग्रह छपा हुआ ठीक नहीं मिलता है। इस देश के किसी विद्वान् ने इन ग्रन्थों की सम्यक् खोज अभी तक नहीं की है।

सूरदास जी यद्यपि अन्धे थे, परन्तु हिन्दी-कविता के दरसाने में मानों सूर्य ही थे। ये वृन्दावनवासी परमभक्त कवि थे। इनका नाम संसार से कभी लोप नहीं हो सकता। १५८३ ई० के लगभग इनका जन्म-समय पाया जाता है। ऐसा हिन्दू कौन है जिसने सूरदास तथा उनके भजनों की प्रशंसा न सुनी हो। सरलता, मनोहरता, सुन्दरता, काव्य-कुशलता और प्रेमभाव की

गम्भीरता सूरदासजी के भजनों में भरी हुई है। हृदय के गम्भीर प्रेम से यह भजन निकले हुए हैं। इनमें कृष्णचन्द्रजी की स्तुति की गई है। संसार भर के साहित्य में इन भजनों की अद्वितीय गणना है। इनका सूरसागर कविता का अमूल्य भाण्डार है। जितना यह ग्रन्थ इस समय पाया जाता है उससे अधिक पाने की संभावना है। साठ हज़ार भजन इनके अब तक मिले हैं। सूरदास के भजनों का अनुभव करना ही केवल सुनना समझना है। विद्वान् इन भजनों को सुन्दर और शोभा से अलङ्कृत मानते हैं। भक्त जन इन भजनों से आनन्द को पाते हुए ईश्वर के अनन्त आनन्द-सन्दोह में मग्न हो जाने की प्रेरणा पाते हैं। सूरदास बड़े पहुँचे हुए महात्मा थे और अद्वितीय कवि होने पर भी संगीत-शास्त्र में इनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता था। वृन्दावन की रमणीक और पवित्र कुञ्जों में जहाँ पर इनको साक्षात् दर्शन होते थे वहाँ इनके प्रेम-परिपूरित आनन्दपूर्ण भजनों की ध्वनि मानों अभी तक गूँज रही है। सूरसागर के अमूल्य रत्न खोजने में किसी उत्साही भक्त और प्रेम-परायण विद्वान् की आवश्यकता है।

सूरदासजी के समय ही में स्वामी हरिदास भी हुए। ये भी वृन्दावन ही में रहते थे और उनका जन्म-समय १५८३ ई० कहा जाता है। काव्य-रचना में तुलसीदास व सूरदास की श्रेणी में इनका नाम लिया जाता है और ये भी इनके समान भक्त और प्रेमी साधु थे। इनके भजन-ग्रंथ रागसागरोद्भव और

रागकल्पद्रुम हैं। कविता बड़ी मधुर तथा मनोहर है। कविता और संगीत में प्रसिद्ध तानसेन के ये गुरु थे।

देव कवि मैनपुरी के ब्राह्मण थे और १६ वीं शताब्दी के अन्त में इनका होना पाया जाता है अर्थात् १५८४ ई० में इनका जन्म हुआ था। ये एक अद्भुत कवि थे और इन्होंने ७२ ग्रन्थ बनाये हैं। इन ग्रन्थों में से निम्न-लिखित ११ ग्रन्थ विशेष प्रशंसनीय हैं।

१—प्रेमतरंग

२—भानुविलास

३—रसविलास

४—रसानन्दलहरी

५—श्यामविनोद

६—काव्यरसपिङ्गल

७—अष्टैयां

८—देवमायाप्रपञ्च नाटक

९—प्रेम-दीपक

१०—सुमालविनोद

११—राधिका-विलास

देव कवि बड़े विद्वान् थे। वे तदनन्तर हुए कवियों के एक प्रकार से गुरु कहे जा सकते हैं। पूरे ग्रन्थ इनके छपे नहीं हैं। इस कार्य की आवश्यकता है कि ये ग्रन्थ खोज कर छापे जायँ।

सामलसिंह चौहान १६७० ई० में हुए। इन्होंने महाभारत

के चौबीस हज़ार श्लोकों का दोहे व चौपाइयों में अनुवाद कर एक बड़ा ग्रन्थ रच दिया। कोई इनको चन्द्रगढ़ का और कोई सामलगढ़ का राजा बताते हैं; परन्तु वास्तव में ये इटावा ज़िले में कुछ गाँवों के ज़मींदार थे। इनके रिश्तेदार हरदोई ज़िले में जा बसे हैं। इन्होंने बहुत ग्रन्थों की रचना की है और इनके अनुवाद किये हुए महाभारत को सब सम्मान से पढ़ते व प्रशंसा करते हैं।

हिन्दी-कविता को प्रभावशाली बनानेवाले भूषण कवि हुए हैं। ब्राह्मण होने पर भी ये वीर-रस से परिपूर्ण थे। इनकी सब कविता वीररस-पूरित है। चन्द्र कवि को छोड़ कर ऐसे सब कवियों में इनका नाम प्रथम है जिन्होंने अपनी वीर कविता के प्रभाव से सेना को युद्ध में नियुक्त किया हो। ये कानपुर ज़िले में टीकमपुर ग्राम के निवासी थे। परन्तु सितारे के महाराज शिवराज सोलंकी के दरबार में इनका बहुत समय व्यतीत हुआ। वहाँ इनकी कविता का बड़ा आदर हुआ। वहाँ इनको अत्यन्त धन मिला। ये ऐसे कवि थे कि जिन्होंने अपनी वीर-रस की कविता के उत्तेजन से निर्भय और शूरवीर मरहटे योद्धाओं के दलों को मुसलमान बादशाहों से युद्ध में भिड़ा दिया और जिसका परिणाम यह हुआ कि यवनों का राज्य तितर-बितर हो गया। पन्ना के राजा छत्रपाल के दरबार में भी इन्होंने कुछ दिन निवास किया, परन्तु सितारे के मरहटे महाराज के द्रव्य देने से अतुल द्रव्य प्राप्त करके दूसरे राजाओं से दान लेना

इन्होंने छोड़ दिया । निम्न-लिखित ग्रन्थ इनके बनाये हुए कहे जाते हैं :—

१—शिवराज-भूषण

२—भूषणहज़ारा

३—भूषणउल्लास

इन कवि के फुटकर बनाये हुए कवित्त कई हज़ार इधर उधर पाये जाते हैं। देशभक्ति के अद्वितीय भूषण, भूषण कवि थे। इनके हाथ में भाषा क्या थी मानों वीर कवितानल प्रचण्ड करने के लिए इन्धन ही था। शिवराज के कर्तव्य-वर्णन की कविता एक वीर-रस का दृश्य-रूप है। संसार भर के साहित्यों में ऐसी वीर-रस-प्रधान रस-पूर्ण कविता कहीं नहीं पाई जाती। प्रत्येक शब्द क्या है, मानों योद्धाओं को युद्ध करने के लिए और अमर शूरवीरता दिखाने के लिए रण की विजय-दुन्दुभि है। सन् १६८१ ई० में इनका जन्म हुआ।

इसी समय में मतिराम कवि भी हुए हैं। हिन्दी की कवि-श्रेणी में इनका उच्च स्थान है। टीकमपुर ज़िले के टीकमपुर ग्राम में इनका जन्म हुआ था। ये जाति के ब्राह्मण थे। कई बड़े बड़े राजाओं के दरबार में ये रहे थे, परन्तु कमायूँ के राजा उद्दत-चन्द्र, और कोटा-बूँदी के भानुसिंह हाड़ा और बुँदेले फ़तह सिंह के समीप इनका बहुत सा समय व्यतीत हुआ। इनके ग्रंथ ये हैं :—

१—ललित-लालन—जिसमें कोटे के राजा भानुसिंह की प्रशंसा अलङ्कृत काव्य में की है।

२—छन्दसागर—जिसमें अनेक प्रकार के छन्द दिये हैं। और बुँदेले फ़तहसिंह की प्रशंसा की है।

३—राजराज—यह एक नायिका-भेद का ग्रंथ है।

मतिराम श्रेष्ठ कवि थे और इनके अनन्तर के कवियों ने इनकी विशेष प्रशंसा की है। इनके ग्रन्थों में पद-रचना की मनोहरता, विचार की गम्भीरता और अलङ्कारों की विचित्रता भरी हुई है।

सिक्ख मत को स्थापन करनेवाले श्रीगुरुगोविन्दजी जगत्प्रसिद्ध हैं। सन् १६८१ ई० में पटने में इनका जन्म हुआ। ये गुरु तेग़बहादुर के पुत्र थे। गुरु तेग़बहादुर का औरंगज़ेब बादशाह ने वध करा दिया था। इनकी कविता प्रसिद्ध ग्रंथसाहब में पाई जाती है। भारतवर्ष की कविता में इसका भी बड़ा आदर है। इनकी भाषा की वाक्य-सरलता, तथा स्पष्टता, धार्मिक व नैतिक भावों की उच्चता और पद-प्रणाली की मनोहरता श्रीगुरुगोविन्द-जी के वचनों व भजनों में ऐसी है कि जिनका सादृश्य नहीं हो सकता। कविता रचने में इनका ध्यान विचारों की तरफ़ बहुत कुछ रहा है और भाषा की तरफ़ कम, इस कारण कई भाषाओं के शब्द इनकी कविता में पाये जाते हैं। व्रजभाषा, पंजाबी और उर्दू ये भाषायें इसमें मिली हुई हैं।

सत्रहवीं शताब्दी क अंत में और १८ वीं शताब्दी के आरम्भ में हिन्दी-कविता के कालिदास कवि हुए। गङ्गा-तट पर किसी गाँव के निवासी जाति के ये ब्राह्मण थे। ये बादशाह औरङ्गज़ेब के साथ गोलकुण्डा गये थे और

बहुत समय तक दक्षिण देश में रहे, पश्चात् जम्बू के महाराजा जङ्गजीतसिंह रघुवंशी के दरबार में रहे। इन महाराजा की प्रशंसा में वधूविनोद नाम का एक अद्भुत ग्रन्थ इन्होंने रचा था और इन्होंने एक हज़ारा बनाया है जिसमें संवत् १४८० से संवत् १७७५ के ५२१२ कवियों की कविता लिखी है। यह बड़ा अद्भुत ग्रन्थ है; इनके दूसरे ग्रन्थ का नाम जँजीराबन्ध है। इस ग्रन्थ में बड़ी अद्भुत काव्य-कुशलता है। यद्यपि ये संस्कृत के कवि कालिदास के साम्य में नहीं हैं, तथापि हिन्दी-कवियों में इनका बड़ा आदर है।

आर्यावर्त-निवासी गिरधर कविराज का १७३० ई० में जन्म हुआ। नीति-विषय-सम्बन्धी इन्होंने बहुत कुण्डलियाँ बनाई हैं। ये इस विषय में बड़े प्रसिद्ध कवि थे। ये कुण्डलियाँ ऐसी अद्भुत, स्पष्टार्थ और गुण-गर्वित हैं और इनकी भाषा ऐसी सरल है कि पाठशालाओं में जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उनमें बहुत कुछ इनका भाव रक्खा जाता है। इस विषय में ये अद्वितीय थे।

१७१६ ई० के लगभग ग्वाल कवि हुए। ये एक धुरन्धर कवि थे। इनके ग्रन्थ निम्न-लिखित हैं:—

१—नखशिख
२—गोपीपच्चीसी
३—यमुना-लहरी
४—साहित्य-भूषण

५—भक्तिभार

६—शृङ्गार-दोहा

७—शृङ्गार-कवित्त

८—साहित्य-दर्पण

९—कुछ दूसरे कवियों की कविता का संग्रह है।

ग्वाल कवि मथुरा-निवासी थे और इनकी कविता की बड़ी प्रशंसा है।

भिखारीदास भी साधु कवियों में गिने जाते हैं। ये बुन्देलखण्ड के एक कायस्थ थे। इनका जन्म १७२३ ई० में हुआ था। ये हिन्दी-कविता के बड़े नामी कवियों में गिने जाते हैं। इनकी कविता में वाक्य तथा विचार दोनों के अद्भुत गुण हैं। पाँच ग्रन्थ इनके जो अब तक मिले हैं ये हैं:—

१—छन्दार्णवपिङ्गल

२—रससारांश

३—काव्य-निर्णय

४—शृङ्गार-निर्णय

५—वाग्विहार

बाँदा के मोहनलाल भट्ट के पुत्र पद्माकर भट्ट थे। इनका जन्म १७८१ ई० में हुआ था। ये रघुनाथ राव पेशवा के दरबार में नियुक्त थे। किसी समय एक छन्द के सम्मान में इन राजा ने इनको एक लक्ष मुद्रा भेंट की थीं। पश्चात् ये जयपुर में आ बसे। वहाँ राजा सवाई जगतसिंह की प्रशंसा में इन्होंने जग-

द्विनोद ग्रन्थ रचा। इसके सम्मान में उन्होंने सुवर्ण, हाथी और रथ इनको भेंट किये। इसके अनन्तर ये राज्य से चले आये और गङ्गा-तट पर आ निवास किया। गङ्गाजी की स्तुति में इन्होंने गङ्गालहरी बनाई। ऐसा कौन मनुष्य है जिसने पद्माकर कवि का नाम और कविता न सुनी हो। इनकी कविता में, अनुप्रास, उपमा, अन्योक्ति अलङ्कार बहुत पाये जाते हैं। इनकी भाषा श्राव्य और रोचक है, जिसमें कविता के अवाच्य और विचित्र राग विशेषता से पाये जाते हैं।

पद्माकर के ढङ्ग पर पजनेश की कविता भी है। उसी प्रकार की भाषा और उसी तरह के अनुप्रास हैं। ये कवि बुंदेलखण्ड के पन्ना राज्य में हुए थे। १९ वीं शताब्दी के प्रथम भाग में इनका उपस्थिति-समय पाया जाता है। यद्यपि इनकी कविता चमत्कृत है, तथापि पद्माकर की कविता के बराबर नहीं है। इनके ग्रंथों का नाम माधवप्रिया और नखशिख है। इनकी उपमा तथा अनुप्रासों को सुन कर मनुष्य स्वयं ही प्रशंसा करने लगता है। इनकी कविता में शब्द तथा वचनों की अति सरलता है, वह कानों को रोचक मालूम होती है; परन्तु अर्थ में गुरुता नहीं है। सामान्यता होने पर भी कवियों में इनका बड़ा सम्मान है।

ठाकुर कवि नाम के भी दो कवि हुए हैं। हिन्दी-कविता में ये बड़े प्रसिद्ध हैं। पहले ठाकुर कवि १७ वीं शताब्दी के मध्य में मुहम्मदशाह बादशाह के समय में हुए थे। इनकी

फुटकर कविता जो बड़ी सुन्दर है कई हज़ार कवित्त में मिलती है, परन्तु इनका कोई संपूर्ण ग्रन्थ अभी तक नहीं मिला। इनके निवास-स्थान का ठीक पता नहीं लगा है। कोई कहता है कि ये अशनी गाँव के रहने वाले थे और कितनों ही का यह कथन है कि ये बुन्देलखण्ड के निवासी थे।

दूसरे ठाकुर कवि जाति के ब्राह्मण रायबरेली ज़िले के एक गाँव के रहने वाले थे और १८२५ या १८६७ ई० के मध्य में इनका जन्म-समय बताया जाता है। काव्य-ग्रंथों की खोज में इन्होंने हिन्दुस्तान में दूर दूर तक भ्रमण किया और बहुत से ग्रंथों का संग्रह भी किया। इनका बनाया ग्रंथ रसचद्रिका बड़े नामी काव्यों में है। बहुत से फुटकर कवित्त ठाकुर कवि के नाम से पाये जाते हैं।

वाक्य-विचार की उत्तमता इनमें विशेष है। इनके विषय में ठीक नहीं कहा जा सकता कि ये पहले ठाकुर कवि के हैं या दूसरे के।

भवन कवि उन्नाव ज़िले के निवासी ब्राह्मण थे। १८३४ ई० में इनका जन्म हुआ था। इनके रचे हुए काव्यकल्पद्रुम की सब विद्वान् प्रशंसा करते हैं। भवन हिन्दी के धुरन्धर कवियों में हैं। इनकी कविता पढ़ने योग्य है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में काशी-निवासी बाबू गोपालचन्द्र के पुत्र बाबू हरिश्चन्द्र हुए। ये इस समय की हिन्दी का प्रबल प्रचार करने वाले गिने जाते हैं। इनके रचित

सुन्दरीतिलक और दूसरी फुटकर कवितायें ऐसी प्रसिद्ध हैं कि उनका वर्णन करना आवश्यकीय नहीं है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में राजा लक्ष्मणसिंह आगरा-निवासी ने रघुवंश, शकुन्तला, मेघदूत, कालिदास-कृत काव्य ग्रन्थों का अनुवाद एक उच्च श्रेणी की हिन्दी-भाषा में किया। ये हिन्दी-कवियों में सबसे पिछले प्रसिद्ध कवि थे।

इस पुस्तक में जिन हिन्दी-कवियों का वर्णन किया गया है उनका समय-सूचक सूचीपत्र।

कवि का नाम	समय
१ चन्द्र	... १०९२ ई०
२ शार्ङ्गधर	... १२७३ ई०
३ कबीर	... १३९९ से १५१९ ई०
४ नानक	... १४६९ से १५३९ ई०
५ नाभादास	... १४८३ ई०
६ मीराबाई	... १४९८ से १५६३ ई०
७ गंग	... १५३८ ई०
८ तुलसीदास	... १५४४ से १६२४ ई०
९ विहारी	... १५४४ ई०
१० केशवदास	... १५६७ ई०
११ सूरदास	... १५८३ ई०
१२ स्वामी हरिदास	... १५८३ ई०
१३ देव कवि	... १५८४ ई०
१४ सामलसिंह चौहान	... १६७० ई०
१५ भूषण (भूखन)	... १६८१ ई०
१६ मतिराम	... १६८१ ई०
१७ श्रीगुरुगोविन्द	... १६८१ ई०
१८ कालिदास	... १६५२ ई०

१९	गिरधर	... १७१३ ई०
२०	ग्वाल	... १७१६ ई०
२१	भिखारीदास	... १७२३ ई०
२२	पद्माकर	... १७८१ ई०
२३	पजनेश	... १८१५ ई०
२४	ठाकुर प्रथम	... १८२५ से १८६७ ई०
२५	ठाकुर द्वितीय	... १८५० ई०
२६	भवन	... १८३४ ई०
२७	बाबू हरिश्चन्द्र	उन्नीसवीं शताब्दी के पिछले भाग में
२८	राजा लक्ष्मणसिंह	उन्नीसवीं शताब्दी के पिछले भाग में

दूसरे प्रसिद्ध हिन्दी-कवियों का समय-सूचक सूचीपत्र जिनका वर्णन इस पुस्तक में नहीं है।

नाम कवि	समय
१ टोडरमल ...	... १५२३ ई०
२ मानदास ...	... १५२८ ई०
३ ब्रह्मकबीर ...	... १५२८ ई०
४ गोप ...	... १५३३ ई०
५ कृष्णदास ...	... १५४४ ई०
६ अमरसिंह हाड़ा ...	... १५६४ ई०
७ कवीन्द्र सरस्वती ...	... १५६५ ई०
८ प्रेमराय ...	... १५८३ ई०
९ हरस्वामी ...	... १५८३ ई०
१० हीराराय ...	... १५८३ ई०
११ हरिनाथ ...	... १५८७ ई०
१२ निपटनिरञ्जन ...	... १५९३ ई०
१३ देवकरण ...	... १६०६ ई०
१४ जयसिंह ...	... १६२४ ई०
१५ छत्रशाल ...	... १६३३ ई०
१६ तोषकवि ...	... १६४८ ई०
१७ देवीदास ...	... १६५३ ई०
१८ नायकगोपाल ...	... १६५८ ई०

१९ वनमालीदास	... १६५९ ई०
२० सुखदेव मिश्र	... १६७० ई०
२१ चिन्तामणि	... १६७२ ई०
२२ सदाशिव	... १६७७ ई०
२३ बुधराउ	... १६९८ ई०
२४ मानकवीश्वर	... १६९९ ई०
२५ जुगलकिशोर	... १७०८ ई०
२६ बन्नू कवि	... १७१३ ई०
२७ कृपाराम	... १७१५ ई०
२८ अजीतसिंह राठौर	... १७३० ई०
२९ कर्म कवि	... १७३० ई०
३० विजयसिंह	... १७३० ई०
३१ शिव कवि	... १७३९ ई०
३२ जगत्सिंह	... १७४१ ई०
३३ रघुनाथ	... १७४५ ई०
३४ गुमानजी	... १७४८ ई०
३५ कृष्णनन्द वासुदेव	... १७४९ ई०
३६ बलदेव	... १७५२ ई०
३७ गोकुलनाथ वेदी	... १७७७ ई०
३८ खुमान	... १७८३ ई०
३९ सूदन	... १७८३ ई०
४० गोपीनाथ	... १७९३ ई०

४१ विश्वनाथ	..	१७६४ ई०
४२ जसवन्तसिंह	...	१७६८ ई०
४३ सहजराम	...	१८०४ ई०
४४ देवकीनन्दन	...	१८१३ ई०
४५ श्रीधर	...	१८१४ ई०
४६ खेमकरण	...	१८१८ ई०
४७ शिवसिंह	...	१८२१ ई०
४८ ठाकुरप्रसाद	...	१८२५ ई०
४९ सुन्दर	...	१८३१ ई०
५० गंगाप्रसाद	...	१८३३ ई०
५१ शीतलराउ	...	१८३७ ई०
५२ छेदीराम	...	१८३८ ई०
५३ नरहरि	...	१८४१ ई०
५४ जय कवि	...	१८४४ ई०
५५ भोजकन्द	...	१८४४ ई०
५६ कृष्णसिंह	...	१८५२ ई०
५७ गदाधर भट्ट	...	१८५५ ई०
५८ उमापति	...	१८७३ ई०
५९ जसुराम	...	

बालसखा-पुस्तकमाला—पुस्तक २१ वीं।

बाल-स्मृतिमाला

लेखक

पण्डित सुन्दरलाल शर्मा, द्विवेदी

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, प्रयाग
१९१९

बालसखा-पुस्तकमाला—पुस्तक २१ वीं।

बाल-स्मृतिमाला

अर्थात्

अठारह स्मृतियों का पूरा सरल सार

लेखक

[धनमऊ (ज़िला मैनपुरी) निवासी]

पण्डित सुन्दरलाल शर्मा, द्विवेदी

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग

१९१९

द्वितीयावृत्ति] [मूल्य ।।)

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the
Indian Press, Allahabad.

भूमिका

शास्त्रों में बतलाया हुआ अपना धर्म कर्म जानना प्रत्येक मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। धर्म-कृत्यों को न जानने और उनको काम में न लाने से मनुष्य अभीष्ट सुख को कभी प्राप्त नहीं हो सकता।

देखा जाता है कि वर्तमान समय में लोगों में नास्तिकता अधिक हो गई है। वे अपने धर्म कर्म को कुछ भी नहीं समझते। इसका कारण एक तो संस्कृत-विद्या का प्रचार कम होना है और दूसरा मनुष्यों की कुछ स्वाभाविक प्रवृत्ति ही ऐसी हो गई है। हमें अपना धर्म कर्म न भूल जाना चाहिए। संस्कृत में धर्म-ग्रन्थों को देखना और उन्हें पढ़ सुन कर लाभ उठाना सर्वसाधारण के लिए कठिन काम हो गया है। इसलिए मैंने अठारहों स्मृतियों का हिन्दी में सरल सार लिखा है। इस "बाल-स्मृतिमाला" में ऐसी बातें लिखी गई हैं जो सर्वसाधारण के लिए उपयोगी हैं। यदि अठारहों स्मृतियों का पूरा अनुवाद किया जाता तो एक बहुत बड़ा पोथा तैयार हो जाता।

आशा है, हिन्दी-प्रेमी सज्जन इस पुस्तक को पढ़ कर अधिक लाभ उठावेंगे।

१।६।०९ सुन्दरलाल शर्मा, द्विवेदी।

सूचीपत्र

———

बाल-स्मृतिमाला

१—अत्रि-स्मृति

वर्णों के धर्म

एक दिन अत्रि ऋषि के आश्रम में उनके पास बहुत से ऋषि इकट्ठे होकर आये। सब ऋषि उनको नमस्कार करके बैठ गये। अत्रि मुनि प्रति दिन अग्निहोत्र किया करते थे। वे सबसे अधिक वेदों के मर्म को जाननेवाले थे और वे सब शास्त्रों की विधि भी अच्छी तरह जानते थे। इसी लिए सब ऋषि लोग उनको अपना पूज्य समझते थे। वहाँ आये हुए सब ऋषियों ने आदरपूर्वक उनसे कहा:—

हे भगवन्! आप बड़े दूरदर्शी हैं। आप सब कुछ जानते हैं। अतः आप हमको यह बतलाइए कि सब मनुष्यों की भलाई

किस तरह हो सकती है ? ऐसा कौन सा उपाय है जिससे सब का कल्याण हो सके ?

अत्रि ऋषि ने उत्तर दिया कि हे ऋषियो ! आप लोग भी वेद-शास्त्रों का अभिप्राय अच्छी तरह समझते हैं। इस पर भी आपने जो प्रश्न मुझसे किया है उसका उत्तर या उपदेश मैं अपने तजरिबे से करूँगा—संसार में जैसा कुछ मैंने देखा या सुना है, तदनुसार ही आपको उपदेश देता हूँ।

जो गुरु अपने शिष्य को एक भी अक्षर पढ़ाता है अर्थात् जो केवल एक 'ओ३म्' मात्र ही पढ़ाता है वह मानों उसको सर्वस्व अर्पण कर देता है। फिर शिष्य के पास ऐसी कोई भी चीज़ नहीं हो सकती जिसको देकर वह अपने गुरु से उऋण हो सके। और जो शिष्य एक अक्षर मात्र भी पढ़ानेवाले अपने गुरु को जन्म भर गुरु नहीं मानता वह सौ जन्म तक कुत्ते की योनि में जन्म लेता है। यही नहीं किन्तु जो वेद-शास्त्र पढ़ कर भी अपने गुरु का अपमान करता है वह मरणानन्तर पशु-योनि पाता है और इक्कीस तरह के नरक भोगता है।

कोई मनुष्य कहीं भी रहता हो, किसी अवस्था में हो, किसी तरह से भी रहता हो, यदि वह अपना कर्म अर्थात् मनुष्य-कर्तव्य को पूरा करता है तो संसार उसको प्यार करता है। संसार में उसकी प्रतिष्ठा होती है।

यज्ञ करना, दान देना, साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ना और तप करना; ये ब्राह्मण के कर्म हैं और दान लेना, वेद-शास्त्रों का पढ़ाना और यज्ञादि कराना ये तीनों ब्राह्मण की वृत्ति हैं—

जीविकायें हैं। ब्राह्मण के लिए ये तीन ही तरह की जीविकायें--रोज़गार—हैं।

यज्ञ करना, दान देना, साङ्गोपाङ्ग वेदों का पढ़ना और तप करना ये क्षत्रिय के कर्म हैं। हथियारों से जीविका और प्राणियों की रक्षा; ये दो क्षत्रिय की जीविकायें हैं।

दान देना, साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ना, खेती करना, गायों की रक्षा करना, व्यापार करना, और यज्ञ करना; ये वैश्य के कर्म हैं।

खेती, गायों की रक्षा, व्यवहार, तीनों वर्णों की श्रद्धापूर्वक सेवा और कारीगरी करना; ये शूद्र के कर्म हैं।

अपने अपने कर्म करने से ये चारों वर्ण इस लोक में बड़ी प्रतिष्ठा पाते और परलोक में परम गति पाते हैं और जो अपना धर्म छोड़ कर दूसरों का धर्म करते हैं उनको शिक्षा देनेवाला राजा स्वर्गलोक में पूजा जाता है।

अपने धर्म में लगा हुआ शूद्र भी स्वर्ग पाता है। दूसरों का धर्म, दूसरे पुरुष की अच्छे रूपवाली स्त्री की तरह, त्यागने योग्य है।

जो शूद्र अपना कर्तव्य कर्म छोड़ कर दूसरे कर्मों में अपना समय व्यतीत करता है वह दण्डनीय होता है।

दान लेना, वेदादि शास्त्रों का पढ़ाना, निषिद्ध वस्तु बेंचना और यज्ञ कराना; इन चारों कर्मों के करने में क्षत्रिय और वैश्य का पतित होना बतलाया गया है।

लाख और नमक के बेंचने से ब्राह्मण जल्दी पतित हो जाता

है। और दूध के बेंचने से तो तीन ही दिन में ब्राह्मण शूद्र के समान हो जाता है।

व्रतों के न करनेवाले और बिना पढ़े हुए ब्राह्मण जिस गाँव में रहते हुए भीख माँगते हैं उस गाँव के लोगों को राजा ऐसी सज़ा दे, जैसी चोरी की चीज़ भोगनेवाले को दी जाती है।

जिन देशों में विद्वानों के भोगने योग्य पदार्थों का भोग मूर्ख करते हैं वे देश मानों अनावृष्टि की इच्छा करते हैं अथवा उनमें बड़ा भय पैदा होता है। तात्पर्य्य यह कि विद्वानों का आदर होना मानों विद्या का आदर है और अनादर करने से विद्या का अनादर है।

साङ्गोपाङ्ग वेद को जाननेवाले और सब शास्त्रों के जानने वाले ब्राह्मणों का जिस देश में सत्कार होता है वहाँ मेंह ठीक ठीक बरसता है।

तीनों लोक, तीनों वेद, आश्रम और तीनों अग्नि, इनकी रक्षा रखने के लिए सृष्टि के आदि में ब्राह्मण बनाये गये हैं।

जो द्विज सबेरे और शाम को एकान्त-चित्त से मौन हो कर परमात्मा का ध्यान करते हैं वे हज़ार वर्ष तक देवों के स्वर्गलोक में आदर पाते हैं।

जो राजा गुण-दोष की अच्छी तरह परीक्षा करता है वह बड़ाई, स्वर्ग, राज्य और ख़ज़ाने का (क्षीण या नष्ट होने पर भी) फिर सञ्चय कर सकता है।

ये पाँच यज्ञ राजाओं के लिए कहे गये हैं १—दुष्ट को सज़ा देना, २—अच्छे मनुष्य का सत्कार करना, ३—न्याया-

नुसार ख़ज़ाने को बढ़ाना, ४—माँगनेवालों के साथ पक्षपात न करना, और ५—अपने देश की रक्षा करना।

प्रजा का ठीक ठीक पालन करने से राजा लोग इस संसार में जिस पुण्य-सुख को पाते हैं, उस पुण्य-सुख को हज़ार यज्ञ करने से भी ब्राह्मण नहीं पा सकते।

वसा, वीर्य, रुधिर, मज्जा, मूत्र, विष्ठा, कान का मैल, नाखून, कफ़, हड्डी, आँख का मैल और पसीना ये मनुष्य के बारह मल हैं।

शुरू के वसा आदि छः मलों की शुद्धि विद्वानों ने मिट्टी और जल से बतलाई है और पिछले छः की केवल जल से शुद्धि हो जाती है।

शुद्ध रहना, मङ्गल काम करना, परिश्रम करना, दूसरों के गुणों में दोष न लगाना, लोभ न करना, इन्द्रियों को विषयों से रोकना, दान देना, और दूसरों पर दया करना; ये ब्राह्मणों के लक्षण हैं। (इनकी विशेष व्याख्या ग्रन्थकार ने आगे की है)।

गुणवान् के अच्छे गुणों को न छिपावे, किन्तु दूसरे के गुणों की स्तुति करे और दूसरे के दोषों की हँसी न करे, इसका नाम 'अनसूया' है।

न खाने के लायक़ चीज़ का त्यागना और अच्छे मनुष्यों का साथ और नेकचलनी से न विचलना, इसका नाम 'शौच' है।

सदा अच्छे आचरण करना और बुरे आचरणों को छोड़ देना, इसको धर्म के बतलाने वाले ऋषियों ने मङ्गल काम बतलाया है।

जिस अच्छे या बुरे काम से शरीर को अधिक दुःख पहुँचे ऐसे काम को न करने का नाम 'अनायास' है।

धर्म के अनुसार मेहनत से जो कुछ अन्न-धनादि प्राप्त हो उसी में सन्तोष करना और दूसरों की स्त्रियों को न चाहना, इसका नाम 'अस्पृहा' (लोभ न करना) है।

दूसरे मनुष्य भीतरी वा बाहिरी कैसा भी दुःख पहुँचावें तो भी उन पर गुस्सा न करे और न उनको तकलीफ़ दे, इसका नाम 'दम' (इन्द्रियों को विषयों से रोकना) है।

अपने पास निर्वाह के लिए थोड़ा भी अन्न-धन हो तो भी उसमें से थोड़ा थोड़ा प्रसन्न-चित्त से नित्य दूसरे को दिया करे, इसका नाम 'दान' है।

कुटुम्बी, मित्र, द्वेष करने के योग्य और शत्रु; इन सब के साथ अपने आत्मा के समान जो बर्ताव करना है उसे 'दया' कहते हैं।

जो गृहस्थ द्विज भी इन ऊपर कहे लक्षणों से युक्त होता है वह मोक्ष का भागी बनता है। और फिर इस संसार में उसे जन्म नहीं लेना पड़ता।

ब्राह्मण को इष्ट और पूर्त्त कर्म के करने में कोशिश करनी चाहिए। इष्ट से स्वर्ग और पूर्त्त से मोक्ष मिलता है।

अग्निहोत्र, तप, सच बोलना, वेदों की रक्षा, अतिथि का सत्कार, और बलिवैश्वदेव करना, इनका नाम 'इष्ट' है।

प्याऊ, कुआ, तालाब, देव-मन्दिर बनवाना, अन्न-दान और बाग़ लगवाना, इनका नाम 'पूर्त्त' है।

इष्ट और पूर्त ये दोनों द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के सामान्य धर्म हैं। शूद्र पूर्त धर्म का अधिकारी है। उसे पूर्त काम करना चाहिए।

बुद्धिमान् को चाहिए कि वह यमों का भी सदा सेवन करे, केवल नियमों का नहीं। क्योंकि जो केवल नियमों का सेवन करता है और यमों का सेवन नहीं करता वह पतित हो जाता है।

अक्रूरता, क्षमा, सत्य, अहिंसा, दान, नम्रता, प्रीति, प्रसन्नता, मधुर वाणी, कोमल स्वभाव, ये दश यम कहाते हैं।

शौच, यज्ञ, तप, दान, वेद पढ़ना, गुप्तेन्द्रिय को वश में रखना, व्रत, मौन, उपवास और स्नान, ये दश नियम कहाते हैं।

पुत्रहीन को दत्तक पुत्र अवश्य बनाना चाहिए। बहुत सी ऐसी ज़रूरी बातें हैं जिनके लिए दत्तक पुत्र का होना कर्त्तव्य तथा धर्मांश में घटित हो सकता है।

जो पिता पैदा हुए पुत्र के मुँह को देख ले तो पुत्र को ऋण सौंप कर पिता पितृ-ऋण से छूट जाता है और मोक्ष पाता है। पुत्र के पैदा होने से ही पिता पितृ-ऋण से अनृणी हो जाता है और उसी दिन शुद्ध हो जाता है क्योंकि वह पुत्र पिता की नरक से रक्षा करता है।

अभक्ष्य भक्षण का प्रायश्चित्त

जहाँ भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं होता ऐसे शोकयुक्त स्थान के लिए भोजन की शुद्धि कहते हैं, उसको सुनो :—

अभक्ष्य भक्षण कर लेने की शङ्का हो गई हो तो जिसमें

खारीपन न हो ऐसे अन्न, लवण, रूखे अन्न, कान्ति को बढ़ानेवाली ब्राह्मी ओषधि या शङ्खपुष्पी को दूध के साथ तीन दिन तक पीवे ।

प्रश्न—शराब के बरतन में यदि कोई द्विज बिना जाने जल पी ले तो उसका कैसे प्रायश्चित्त हो और वह किस कर्म के करने से दोष से छूट सकता है ?

उत्तर—ढाक तथा बेल के पत्ते, कुश, कमल और गूलर इनके क्वाथ (काढ़ा) के पानी को तीन दिन तक पीने से शुद्ध हो जाता है ।

शाम को या सबेरे यदि भूल से सन्ध्या न करे तो नहा कर सावधानी से एक हज़ार गायत्री का जप करे ।

जिस ब्राह्मण को भेड़िये, कुत्ते और गीदड़ ने काटा हो तो वह सोने के जल से मिले हुए घी को खाकर शुद्ध हो जाता है ।

यदि ब्राह्मण बिना जाने ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य का भूठा खा ले तो तीन दिन तक गायत्री का जप करके शुद्ध हो जाता है ।

न खाने योग्य अन्न को, स्त्री और शूद्र के भूठे को खाकर और प्रत्यक्ष में मांस खा कर ब्राह्मण सात दिन तक एक बार जौ के सत्तू पीने से शुद्ध होता है ।

न छूने के योग्य को छूकर स्नान ही कर लेने से शुद्ध हो जाता है । और ऐसों का भूठा खाकर छः महीने तक कृच्छ्रव्रत करने से शुद्ध होता है ।

जिसके घर में कुछ देर तक मुर्दा पड़ा रहा हो उसकी शुद्धि

इस तरह होती है कि—मिट्टी के बरतन काम में लावे और दूसरे के बनाये अन्न को खावे। घर से बाहर मुर्दे को निकाल कर घर को गोबर से लिपावे और बाद बकरे से सुँघावे। (बकरे का मुँह शुद्ध माना गया है।)

जिन मन्त्रों का देवता ब्रह्मा है ऐसे मन्त्रों के पाठ से शुद्ध किये हुए घर को सोने और कुशाओं के जल द्वारा वेदमन्त्रों से छिड़कने से शुद्ध होता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

राजा वा दूसरे चाण्डाल आदि ने यदि द्विज को ज़बरदस्ती धर्म से हटा दिया हो तो वह द्विज फिर संस्कार करे और बाद तीन दिन तक कृच्छ्रव्रत करे।

जिसको कुत्ते ने छू लिया हो वह नहावे और कुत्ते का झूठा खा लिया हो तो कृच्छ्रव्रत करे।

अब सूतक का निर्णय किया जाता है, इससे आगे प्रायश्चित्त (पाप का शोधन) बतलाया जावेगा।

जो ब्राह्मण अग्निहोत्र करनेवाला और वेदपाठ करनेवाला हो तो वह एक दिन में शुद्ध होता है। जो सिर्फ़ वेदपाठ ही करता हो वह तीन दिन में शुद्ध होता है और जो दोनों को ही न करता हो तो वह दश दिन में शुद्ध हो जाता है।

व्रत करनेवाला या जो शास्त्र के अनुसार पवित्र हो, जो अग्निहोत्र करता हो और राजा; इनको सूतक नहीं लगता।

ब्राह्मण दश दिन में, क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य पन्द्रह दिन में और शूद्र एक महीने में शुद्ध हो जाता है।

चौथी पीढ़ी तक दश दिन, पाँचवीं पीढ़ी में छः दिन,

छठी पीढ़ी में तीन दिन और सातवीं पीढ़ी में भी तीन दिन का अशौच होता है।

मरे के सूतक में दासी और अनुलोम (पति से नीचे वर्ण की) स्त्रियों को पति के तुल्य (जितने दिन का पति को हो) सूतक होता है। पति के मरने पर अपनी (स्त्रियों की) योनि (जाति के अनुसार) का सूतक होता है।

जिस तीसरी पीढ़ी के मनुष्य ने मुर्दे को छुआ हो वह सचैल (मय कपड़े के) स्नान करे और चौथी पीढ़ी का मनुष्य सात घर की भिक्षा का भक्षण करे। यह मुर्दे के सूतक की विधि शास्त्र में बतलाई गई है।

जो पैदा हुआ बालक दश दिन के भीतर ही मर जावे तो जल्दी ही शुद्धि हो जाती है। मरने और पैदा होने के दोनों सूतक नहीं लगते।

ब्रह्मचारी, संन्यासी और सूतक से पहले ही मंत्र के जप का अनुष्ठान प्रारम्भ करनेवाले की, यज्ञ और विवाह के समय में तत्काल शुद्धि हो जाती है।

विवाह, उत्सव और यज्ञ के समय जो मरने या पैदा होने का सूतक हो जावे तो पहले की सङ्कल्प की हुई चीज़ों के लेने या खाने आदि में दोष नहीं होता।

यदि बच्चा मरा हुआ पैदा हो तो सूतक के शुरू में ही जल का स्पर्श और आचमन करने से शुद्धि हो जाती है; परन्तु सूतिका स्त्री को न छूना चाहिए।

दोनों प्रकार के सूतकों में पाँचवें दिन क्षत्रिय को और सातवें दिन वैश्य को छूना बुद्धिमानों को जानना चाहिए।

बुद्धिमान् दशवें दिन शूद्र को छुए। पर मरने और पैदा होने—दोनों तरह के सूतकों में एक महीने में शूद्र की शुद्धि होती है।

रोगी, कंजूस, जो सदा क़र्ज़दार रहता हो, क्रिया-रहित, मूर्ख, विशेष कर जो स्त्री के अधीन रहा हो, इनको; और, जुआ आदि बुरे व्यसनों में जिसका धन लगा हुआ हो, जो सदा पराधीन रहा हो और जो सदा श्राद्ध का भोजन करता रहता हो, इन सब को जीवन पर्यन्त सदा ही सूतक लगा रहता है।

परिवित्ति (जिसने बड़े भाई से पहले अपना विवाह किया हो) को दो कृच्छ्रव्रत, कन्या को एक कृच्छ्रव्रत और कन्या की माता को कृच्छ्र तथा अतिकृच्छ्रव्रत और पिता को सान्तपन-कृच्छ्रव्रत करना चाहिए।

कुबड़ा, बौना, नपुंसक, तोतला, बावला, जन्म से अन्धा, बहरा और गूँगा, ऐसे बड़े भाई से पहले छोटा भाई विवाह कर ले तो कुछ बुराई नहीं।

नपुंसक, दूर परदेश में रहनेवाले, पतित, संन्यासी, योग-शास्त्र में लगा हुआ, इनके भी परिवेदन में दोष नहीं है।

जिसका पिता, दादा वा बड़ा भाई अग्निहोत्र का अधिकारी हो उसको बड़े भाई से पहले विवाह करने में दोष नहीं है।

माता के मर जाने पर, पिता के परदेश चले जाने पर अथवा पिता को पातक लगने पर पिता की जगह पुत्र अग्निहोत्र आदि कर्मों का अधिकारी होता है।

व्रत-विधि

चान्द्रायण व्रत करने की विधि यह है कि शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से एक ग्रास खाना शुरू करे और प्रति दिन एक एक ग्रास बढ़ाता जावे। जब पौर्णमासी हो जावे तब महीने की शुरू प्रतिपदा से अमावास्या तक बराबर एक एक ग्रास कम करना चाहिए। अमावास्या के दिन बिलकुल कुछ भी न खाना चाहिए।

पहले तीन दिन तक एक एक ग्रास का भोजन करे और अगले तीन दिन बिलकुल भोजन न करे, इसको अतिकृच्छ्र व्रत कहते हैं। यह अतिकृच्छ्र व्रत ऋषियों ने उन मनुष्यों के प्रायश्चित्त के लिए बतलाया है, जो सदा वेदों को पढ़ते लिखते हैं, शरीर से निर्बल हैं और जो सदा पंचमहायज्ञ किया करते हैं।

जो मनुष्य दिन में सूर्य्य को देखता हुआ वायु खाकर रहता है और रात को जल में खड़ा होकर अपना समय बिताता है। उसे कोई भी पातक नहीं लगता अर्थात् उसके लिए यही प्रायश्चित्त काफ़ी है।

गाय का दूध, दही, गोमूत्र, गाय का गोबर और घी इन पाँचों चीज़ों को एक साथ मिला देने पर उसे पंचगव्य कहते हैं। इसको पहले दिन पी कर आगे के दिन उपवास करे, कुछ न खावे; इसको सान्तपनकृच्छ्र कहते हैं। सान्तपनकृच्छ्र के बाद पंचगव्य की पाँचों चीज़ें तथा कुशोदक इन छः चीज़ों को क्रमपूर्वक एक एक दिन खा कर छः दिन बितावे और सातवें दिन उपवास करे। यह सात दिन में होनेवाला महा-सान्तपनकृच्छ्र व्रत कहा गया है।

तीन दिन शाम को और तीन दिन सबेरे भोजन करे और तीन दिन बिना माँगे जो मिल जावे उसी का भोजन करे और फिर तीन दिन बिलकुल भोजन न करे—यह प्राजापत्य व्रत की विधि बतलाई गई है। भोजन में शाम को बारह ग्रास और सबेरे पन्द्रह ग्रास होने चाहिएँ।

बिना माँगे तीन दिन चौबीस ग्रास खाने से अच्छे ऋषियों ने अनशन (निराहार) व्रत बतलाया है।

मुर्ग़ी के अंडे के बराबर एक ग्रास होना चाहिए या व्रत करनेवाले के मुँह में एक बार में जितना आ सके वही उसका एक ग्रास है। शुद्धि के लिए इसको ग्रास समझे, यही देह की शुद्धि करनेवाला है।

तीन दिन गर्म जल और तीन दिन गर्म दूध पीवे। तीन दिन गर्म घी पीकर आख़िरी तीन दिन वायु का भक्षण करे। छः पल (चार तोले का एक पल होता है) पानी और तीन पल दूध और एक पल घी पीवे। इसको तप्तकृच्छ्र व्रत कहते हैं।

तीन दिन दही, तीन दिन घी, तीन दिन दूध और तीन दिन वायु का भक्षण करे। इसमें दही और दूध तीन तीन पल और घी एक पल होना चाहिए। यही पवित्र और वैदिक कृच्छ्र-व्रत है।

एक दिन हविष्य चीज़ का भोजन करे, दूसरे दिन बिना माँगे जो मिल जाय उसी को खा ले और आख़िरी तीसरे दिन उपवास करे, यह तीन दिन का पादकृच्छ्र व्रत कहा गया है।

इक्कीस दिन दूध को ही पी कर रहे, इसका नाम कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत है।

बारह दिन के उपवास को पराग व्रत कहा गया है।

खली, मट्ठा, जल और सत्तू क्रमपूर्वक एक एक दिन खाय और एक दिन उपवास करे, इसका नाम सौम्यकृच्छ्र है। इन पाँचों में से एक एक को तीन तीन दिन करने से पन्द्रह दिन का तुलापुरुष व्रत होता है।

कपिला गाय की धार के गर्म दूध को पीने से व्यासजी का किया कृच्छ्र व्रत चाण्डाल को भी शुद्ध कर देता है।

जिन बातों का प्रायश्चित्त शास्त्रों में नहीं बतलाया गया है उनकी शुद्धि के लिए चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

दुगुणी दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि यज्ञों के करने से जो फल प्राप्त होता है वही फल कृच्छ्रों के करने से मनुष्य को मिलता है। और वेद के पढ़ने में लगे हुए, दुर्बल, और नित्य शास्त्र के देखने वाले को भी वही फल मिलता है।

स्त्री का धर्म

जो स्त्री अपने पति के जीते जी उपवास, व्रत करती है वह मानों अपने पति की उम्र को कम करती है और स्वयं नरक को जाती है। यदि स्त्री को तीर्थयात्रा की इच्छा हो तो अपने पति के चरणों को धोकर पीवे। उसके लिए यह व्रत सबसे अच्छा है।

पति के जीते हुए स्त्री को बाँयें अंग की ओर और पति के

मर जाने पर दाहिने अङ्ग की ओर बैठना चाहिए। श्राद्ध, यज्ञ और विवाह में स्त्री को सदा दाहनी ओर बैठना चाहिए।

ब्राह्मण के लक्षण

जो वेद और शास्त्र को पढ़े और शास्त्र का अर्थ बतलावे उस ब्राह्मण को वेदवित् कहते हैं। उसका वचन मनुष्य को पवित्र करनेवाला है।

एक भी वेद का जाननेवाला ब्राह्मण जिस धर्म का निर्णय कर दे उसको परम धर्म जानना चाहिए तथा मूर्ख दश हज़ार भी जिसको कहें वह धर्म न समझना चाहिए।

जप और होम करने से ब्राह्मण अग्नि के समान तेजस्वी होता है।

प्रतिग्रह लेने से ब्राह्मण इस तरह नष्ट हो जाते हैं जिस तरह पानी से आग। प्रतिग्रह से पैदा हुए दोषों को ब्राह्मण प्राणायाम के द्वारा इस तरह नष्ट कर सकते हैं जिस तरह आकाश में बादलों को हवा भगा देती है।

सामान्य धर्म

इस लोक तथा परलोक में वेद से बढ़ कर कोई दूसरा शास्त्र नहीं और माता से बढ़ कर कोई माननीय गुरु नहीं और इस जन्म या दूसरे जन्म में दान से बढ़ कर कोई मित्र नहीं है।

जो दान कुपात्र को दिया जाता है वह दान सात पीढ़ी तक कुल को नष्ट करता है।

संन्यासी के धर्म

संन्यासी आपत्ति के समय भी काँसे के बर्तन में कभी भोजन न करे। जो संन्यासी काँसे के वर्तन में भोजन करते हैं, वे मानों निकृष्ट वस्तु खाते हैं।

जो काँसेवाले का बर्तन हो और गृहस्थी का बर्तन किसी धातु का हो उसमें अगर संन्यासी भोजन करे तो उन दोनों को दोष लगता है। इसी विषय में और भी ऋषियों की राय है कि सोना, लोहा, ताँबा, काँसा और चीनी के बर्तन में भोजन करनेवाला संन्यासी दोषी होता है और भोग की चीज़ों को इकट्ठा और इच्छा करने से भी संन्यासी दोषी बन जाता है।

संन्यासी के हाथ में पहले कुल्ला आदि के लिए पानी देना चाहिए। फिर भिक्षा दे, बाद में पीने को पानी; अर्थात् किसी बर्तन में भिक्षा या पानी न देना चाहिए। ऐसा अन्न मेरु तुल्य और पानी समुद्र के तुल्य अनन्त फल देनेवाला होता है।

संन्यासी चाहे बृहस्पति के समान बड़ा विद्वान्, प्रसिद्ध एवं ज्ञानी हो तो भी उत्तम, कुलीन ब्राह्मण आदि के घर में भिक्षा न मिलने पर नीच मनुष्य के पास से भी एक एक रोटी माँग कर खाय, पर किसी एक ही घर में भोजन कभी न करे।

जो संन्यासी आपत्काल के सिवा घर में रहता हुआ बनी बनाई एक ही जगह भोजन-वृत्ति करता है वह दश दिन तक वज्र नामक ओषधि और तीन दिन तक केवल जल पीवे, तब शुद्ध होता है।

ब्रह्मचारी, संन्यासी, विद्यार्थी, भिक्षा के अन्न से गुरु की रक्षा करनेवाला, रास्ते में चलनेवाला और जिस की कोई जीविका न हो, ये छः भिक्षुक कहलाते हैं।

महापातक के प्रायश्चित्त

बिना रँगा कपड़ा, तिलक लगाना, ज़मीन को इकट्ठा करना, सुगन्ध का लगाना और पापियों के साथ मेल रखना, संन्यासी के लिए ये पाँच बड़े पातक हैं। इनकी शुद्धि के लिए क्रम से तीन वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करे और यदि कृच्छ्र व्रत न करे तो भारी पाप लगता है।

जिसने स्त्री की हत्या की हो वह मनुष्य तीन महीने तक रात ही में भोजन करे, ज़मीन पर सोवे, अथवा एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करे तो शुद्ध होता है।

धोबी, नट और जो बाँसों से जीविका करनेवाले हों ऐसे मनुष्यों का अन्न खाने से द्विज को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

चाण्डाल आदि नीच मनुष्य का या रजस्वला स्त्री का छुआ हुआ पकान्न ब्राह्मण बे-जाने खा ले तो छः दिन तक आधा प्राजापत्य व्रत करे।

यदि चाण्डाल के अन्न को चारों वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—खा लें तो उनका प्रायश्चित्त इस तरह बतलाया गया है कि—ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत, क्षत्रिय सान्तपन व्रत करे। वैश्य छः दिन तक पञ्चगव्य खावे और शूद्र तीन दिन व्रत करे

और व्रत के बाद सबको यथाशक्ति दान करना चाहिए तब शुद्ध होते हैं।

साधारण धर्म

जिसके घर में एक भी गाय दूध न देती हो तो उस घर में आनन्द कहाँ—अर्थात् गृहस्थ के घर गाय का रखना और उसकी ठीक ठीक सेवा करना परम-धर्म है।

जो अपनी लड़की का अन्न खाता है वह मानों पृथिवी का मल खाता है।

जो घर वेद के उच्चारण से पवित्र नहीं, जो गायों से शोभायमान नहीं और जो बालकों से भरा हुआ नहीं है वह मरघट के समान है।

नीचे लिखे सात स्थानों की मिट्टी अच्छे काम में न लगावे—१–बामी की, २–चूहों के स्थान की, ३–जल के भीतर की, ४–स्मशान की, ५–वृक्ष के जड़ की, ६–देव-स्थान की और ७–जो बैलों ने खोदी हो। ऐसे शुद्ध स्थान की मिट्टी लेनी चाहिए जिसमें कङ्कड़-पत्थर न हों।

मौन-धारण के नियम

शौच, होम, पेशाब, दतौन, स्नान, भोजन और जप करते समय मौन रहना चाहिए।

स्नान, दान, जप, होम, भोजन, देवपूजन, वेद का पठन और पितृतर्पण ये आठ काम पाँव फैला कर न करने चाहिएँ।

दानधर्म

ग्रहण, विवाह, संक्रान्ति और प्रसव इन मौक़ों पर रात को भी दान करना अच्छा माना गया है।

रेशम, सूत और पाट के सूत के यज्ञोपवीत (जनेऊ) का जो दान करता है वह कपड़े के दान का फल पाता है।

अकाल में अन्न का दान करनेवाला, सुभिक्ष में सोने का दान करनेवाला और जङ्गल में प्याऊ द्वारा पानी का दान करनेवाला स्वर्ग पाता है।

सब दानों में विद्या का दान सबसे उत्तम है। पुत्र आदि को और सुपात्रों को विद्या का दान दे, कुपात्रों को नहीं। विद्या का दान करनेवाला यदि कुछ कामना रखता हो तो स्वर्ग को और यदि धनादि पदार्थों की इच्छा न रखता हो तो मोक्ष पाता है।

जो ब्राह्मण वेद जानता हो, शास्त्रों में चतुर हो, माता-पिता का भक्त हो, ऋतु के समय ही स्त्री-सङ्ग करता हो; शील तथा अच्छे आचरण करता हो और सबेरे नहाता हो ऐसे सुपात्र ब्राह्मण को अपना कल्याण चाहनेवाला दान दे।

२—विष्णु-स्मृति

एक दिन एकान्त स्थान में बैठे हुए विष्णु ऋषि से कई ऋषियों ने बहुत से प्रश्न किये। तब विष्णु ऋषि उपदेश द्वारा उनको समझाने लगे। उन्होंने कहा कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिए हम धर्म का सार कहते हैं। तुम लोग अच्छी तरह सुनो।

गर्भाधान आदि संस्कारों का विचार

सीमन्त संस्कार गर्भ के आठवें महीने में करना चाहिए। यह संस्कार स्त्री का नहीं, किन्तु गर्भ-स्थित बच्चे का होता है। इससे प्रत्येक गर्भ-स्थित बच्चे का सीमन्त संस्कार होना चाहिए।

बच्चे के पैदा होते ही शास्त्रानुसार जात-कर्म संस्कार होना चाहिए और उस बच्चे का बहिर्निष्क्रमण संस्कार (घर से बाहर ले जाना) चौथे महीने में होना चाहिए। बच्चा जब छः महीने का हो जावे तब उसका अन्न-प्राशन (अन्न खिलाना) संस्कार करे और जब तीन वर्ष का हो जाय तब उसका केश-कर्म (मुण्डन) होना चाहिए।

ब्रह्मचर्याश्रम का विचार

गर्भ से आठवें वर्ष ब्राह्मण का यज्ञोपवीत (जनेऊ) करना चाहिए। क्योंकि द्विज होने पर ही गायत्री का अधिकारी होता है। गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय का और बारहवें वर्ष में वैश्य

का जनेऊ होना चाहिए। शूद्र वर्ण का संस्कार यही है कि वह तीनों वर्णों की विधिपूर्वक सेवा करे। और कोई संस्कार शूद्र के लिए नहीं बतलाया गया।

ब्रह्मचर्य (जनेऊ) के समय जिस वर्ण का जो जो दण्ड (लाठी), मेखला, मृगछाला, सूत्र-वस्त्र गृह्यसूत्रकारों ने बतलाया है, उस उस का ब्राह्मण आदि वर्णों को धारण करना चाहिए।

ब्राह्म मुहूर्त्त में उठ कर नहा धो कर तीन आचमन तथा तीन प्राणायाम करके ब्रह्मचारी सन्ध्या करे। फिर सूर्य उदय होने तक गायत्री का जप करे। इसके पश्चात् अग्निहोत्र करके गुरु को अभिवादन (प्रणाम) करे। अभिवादन के पश्चात् जो जो पढ़ना हो गुरु से पढ़ कर, फिर दोपहर को भिक्षा के समय गुरु की आज्ञा लेकर ब्राह्मण आदि तीनों द्विजों के घर से भिक्षा माँग लावे। लाई हुई भिक्षा गुरु को दे देवे। और फिर गुरु की आज्ञा से ब्रह्मचारी नियम से उसका भोजन करे।

शाम को सन्ध्या करते समय ब्रह्मचारी एक सौ आठ बार गायत्री का जप करे और यदि भोजन की ज़रूरत हो तो सबेरे की तरह भिक्षा माँग कर खावे।

गृहाश्रम-धर्म-विचार

इस तरह ब्रह्मचर्य धर्म को पूरा करके और वेद पढ़ कर गृहस्थ धर्म की इच्छा करे। फिर गुरु के पास से आकर अच्छे कुल में पैदा हुई, अच्छे चिन्होंवाली, अपने वर्ण की लड़की के साथ शास्त्र की विधि से विवाह करे।

सन्तान होने पर भी अग्निहोत्र आदि शुभ काम करता रहे। इस विषय में आगे विस्तारपूर्वक बतलाया गया है।

सब ब्राह्मण आदि द्विज गृहस्थ सबेरे उठ कर, शौच आदि करके, आलस छोड़ कर स्नान करके सन्ध्योपासन करें। फिर यज्ञशाला में बैठ कर अग्निहोत्र करके वेदपाठ करें। दोपहर को पंच-महायज्ञों के बाद भोजन करें। फिर कुछ आराम करके तीसरे पहर इतिहास का भी कुछ पाठ किया करें।

शाम को घर में या बाहर सन्ध्योपासन करके यथाशक्ति गायत्री का जप करें। फिर अग्निहोत्र करके गृह्योक्त विधि से केवल बलि-कर्म नाम भूतयज्ञ करके विधिपूर्वक भोजन करें।

अतिथि-सत्कार

दिन में या रात में यदि कोई अतिथि आ जाय तो आसन, बैठने को जगह, जल और आदर से बोलकर उस का सत्कार करे, और कुशलप्रश्न पूछ कर उसको सन्तुष्ट करके विद्या आदि का विचार करे। पहले अतिथि के सोने का प्रबन्ध करके फिर उसकी आज्ञा लेकर खुद सोवे।

अगर भिक्षा के लिए कोई योगी आ जावे तो उसका भले प्रकार सत्कार करना चाहिए।

गृहस्थियों के लिए स्वर्ग का साधन उत्तम कर्म यही है कि ब्राह्म मुहूर्त्त में (३। ४ घड़ी रात रहने पर) उठ कर पहले कही हुई विधि को अच्छी तरह करें।

वानप्रस्थ-धर्म का विचार

गृहस्थी या ब्रह्मचारी जब वन में रहना चाहे तब चीथड़े और वृक्षों की छाल को कपड़ों की जगह काम में लावे। और ऐसे मुन्यन्न को खावे जो बिना जोते बोये, कुदरती पैदा हुआ हो। वहाँ पर अधिकतर मौन रहे और पंचयज्ञों को विधिपूर्वक सदा करता रहे, छोड़े नहीं। नीवार आदि अन्न से अग्निहोत्र भी करना चाहिए। सावन महीने में अग्नि लेकर वहाँ जाना चाहिए और ब्रह्मचर्य्य-धारण करके रहना चाहिए।

निरालस होकर पंचयज्ञों को करे। भोजन के वास्ते जो अन्न इकट्ठा करे उसको आश्विन महीने में न खाना चाहिए और वन में पैदा हुए नये अन्न को इकट्ठा करना चाहिए।

सरदी गरमी को सहता हुआ वन में रहे और कृच्छ्र, चान्द्रायण और अतिकृच्छ्र व्रतों को निष्काम होकर सफ़ाई के साथ करे; और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध गुणों को सहता हुआ तीन वक्त स्नान करे।

वन में रह कर वानप्रस्थ अतिथियों का सत्कार करे और स्वयं नियमबद्ध रहता हुआ किसी का दान न ले।

प्रियभाषी और श्रद्धावान् बन कर जो अपने पास फल मूलादि होवें उनको रोज़ दान करे और अपने बनाये हुए चबू-तरे पर रात को सोवे।

रोम, नाखून और दाढ़ी को न कैंची से कतरवावे और न अस्तुरे से बनवावे।

संन्यासियों क धर्म

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और यति ये चारों व्रत में दृढ़ रहने से जिस प्रकार उत्तम स्थान को प्राप्त होते हैं वह यह है कि—संसार की सब कामनायें छोड़ कर संन्यास का अच्छी तरह आश्रय ले। यही मनोवाञ्छित फल का देनेवाला है।

अपनी स्त्री आदि को अच्छी तरह समझा कर घर से निकले और चौथे आश्रम—संन्यास आश्रम—में क़दम रक्खे।

आचार्य्य के बतलाये हुए दण्ड आदि चीज़ों को अच्छी तरह रक्खे। संन्यासियों के धर्म और कर्मों को सीखे।

अहिंसा, सत्य, चोरी का त्याग, ब्रह्मचर्य्य और व्यर्थ बोलने का त्याग, सब प्राणियों पर दया; इनका संन्यासी को सदा ख़याल रखना चाहिए। गाँव के पास किसी वृक्ष के नीचे रहना चाहिए।

गाँव या नगर में एक ही जगह रहने से संन्यासी को दोष लगता है। लँगोट, ओढ़ने का कपड़ा—गुदड़ी और खड़ाऊँ इनको साथ रक्खे। इनसे अधिक चीज़ों का संग्रह न करना चाहिए।

स्त्रियों का सङ्ग, उनसे बोलना, उनको छूना, और देखना; नाच, गान, नौकरी और दूसरों की बुराई छोड़ दे और वानप्रस्थ या गृहस्थ से प्रीति न करे।

सदा अकेला विचरे। माँगने से या बिना माँगे जो भोजन मिल जाय उसी से अपना निर्वाह करे।

सब पुत्रादि को छोड़ और योगमार्ग में ठहर कर इन्द्रियों और मन को अपने वश में करता हुआ संन्यासी हंस कहाता है। कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि व्रतों द्वारा ब्रह्मपद की इच्छा करता हुआ संन्यासी अपनी देह को सुखा दे।

मानापमान में कभी राग-द्वेष न करे। अपने हाथ को ही संन्यासी बर्तन समझे या धातु के बर्तनों को काम में न लाकर तूँबा आदि काम में लावे।

वेषमात्र से जीविका करनेवाले संन्यासी को मोक्ष नहीं मिलता। जो संसार के सब विषयों को और भोगों को छोड़ कर अपने आत्मा में ही स्थित रहता है वह परम पद पाता है।

क्षत्रिय-धर्म

पवित्र आचारवाले धर्म, अर्थ, काम के अभिलाषी राजाओं का कर्तव्य कर्म यह है कि—तेज, सत्य, धैर्य्य और चतुराई, का अवलम्ब करें; संग्राम-भूमि से न भागें, दान दें और ठीक ठीक हुकूमत करें।

प्रजा का पालन करना क्षत्रिय का परम धर्म है। इससे राजा को सदा बड़ी चतुराई से प्रजा का पालन करना चाहिए।

दान देना, पढ़ना, यज्ञ करना और फिर योगमार्ग का सेवन करना, ये क्षत्रिय राजा के कर्तव्य हैं।

३--हारीत-स्मृति

वर्णों की उत्पत्ति और उनके धर्म

पहले प्रलय के समय में जगत् के रचनेवाले ब्रह्माजी ने देवता, असुर और मनुष्यों सहित सब संसार को रचा। फिर, यज्ञ की सिद्धि के लिए पाप-रहित तपस्वी ऋषि ब्राह्मणों को मुख-प्रधान, क्षत्रियों को भुजा-प्रधान, वैश्यों को जङ्घा-प्रधान और शूद्रों को चरण-प्रधान पैदा किया।

ब्राह्मणों के छः कर्म नित्य के हैं। उनको करता हुआ ब्राह्मण सदा सुखी रहता है। वे छः कर्म ये हैं—वेद का पढ़ना और पढ़ाना, यज्ञ करना और दूसरों को यज्ञ कराना, सुपात्रों को दान देना और लेना।

वेदादि शास्त्र का पढ़ाना तीन प्रकार का बतलाया गया है। १–धर्म के लिए, २–धन को लेकर, ३–सेवा के लिए। इन तीनों में से जिसमें धर्म आदि शुभ लक्षण एक भी न हो, ऐसे शिष्य को पढ़ाने से ब्राह्मण वृथाचारी होता है। ऐसे पुरुष को अपनी भलाई चाहनेवाला पुरुष कभी विद्या न पढ़ावे।

श्रुति और स्मृति ये दोनों ब्राह्मणों के नेत्र बतलाये गये हैं। इन दोनों में से जो एक से हीन है उसको काना और जो दोनों से हीन—अपठित—हो उसको अन्धे के समान समझना चाहिए।

ब्राह्मण आलस छोड़ कर गुरु की सेवा करे। सबेरे और शाम को हवन किया करे।

स्नान आदि करके सदा बलिवैश्वदेव करे और घर पर आये हुए अतिथियों को, बिना विचारे, शक्ति के अनुसार सत्कार करे।

ब्राह्मण सदा सच बोले, क्रोध कभी न करे और अधर्म के करने में कभी बुद्धि न लगावे—अधर्म से सदा दूर रहे।

सन्ध्या आदि करते समय प्रमाद कभी न करे। सब की हितकारिणी और परलोक में अपना हित करनेवाली सच वाणी सदा बोला करे। यह संक्षेप से ब्राह्मण का धर्म कहा गया है। इसके अनुसार बर्ताव करने से ब्राह्मण सदा सुखी रहता है और ब्रह्मपद पाता है।

अब क्षत्रिय आदि के धर्म बतलाते हैं कि जिनको विधि-पूर्वक करते हुए क्षत्रिय आदि परम गति पाते हैं।

राज्य-पदवी पर स्थित क्षत्रिय राजा धर्म से प्रजा की रक्षा करता हुआ वेद पढ़े और सदा यज्ञ करे।

जो राजा धर्मानुकूल दान देता है और अपनी ही स्त्री से प्रेम करता है वह प्रजा से छठा भाग 'कर' लेने के योग्य होता है।

नीतिशास्त्र में राजा होशियार हो और सन्धि-विग्रह को भी अच्छी तरह समझे। विद्वानों में भक्ति और पितृ-कार्य्य में सदा तत्पर रहे।

वैश्य गायों की रक्षा, खेती और व्यापार विधि-पूर्वक करे।

यथाशक्ति दान दे। दम्भ और मोह को छोड़ दे, सदा सच बोले, ईर्ष्या कभी न करे, अपनी ही स्त्री से प्रेम करे, दूसरी स्त्रियों की ओर बुरी नज़र से कभी न देखे। विद्वान् ब्राह्मणों को और यज्ञ में ऋत्विजों को सदा धन से सन्तुष्ट रक्खे, अपनी हुकूमत कभी किसी को न दिखलावे। प्रतिदिन आलस छोड़-कर यज्ञ करे, वेद पढ़े, दान दे, और पितृ-कार्य्य श्रद्धापूर्वक करे।

यह ऊपर वैश्य का धर्म बतलाया है। इसके अनुसार जो वैश्य बर्ताव करता है वह अक्षय सुख भोगता हुआ स्वर्ग को प्राप्त होता है।

शूद्र तीनों वर्णों की सेवा, भक्ति से करे। बिना माँगे दान दे और आलस छोड़कर पाकयज्ञ से देवों का पूजन करे।

अपनी ही स्त्री से प्रेम करे। दूसरे की स्त्री को कभी न चाहे। मन, वाणी और दैहिक कर्म से शूद्र इसी प्रकार बर्त्ते।

ब्रह्मचारी के धर्म

जनेऊ के बाद ब्रह्मचारी गुरु-कुल में रहे और मन, कर्म और वाणी से गुरु-कुल में प्रीति रक्खे।

ब्रह्मचर्य्य-पूर्वक रहे, पृथ्वी पर सोवे, समिदाधान करे, और गुरु की सेवा करे।

शास्त्रों में बतलाई हुई विधि से ब्रह्मचारी वेदों और वेदाङ्गों को पढ़े। विधि-रहित पढ़ना और धर्म करना फलदायक नहीं होता। अपने स्वाध्याय की सिद्धि के लिए गुरु-कुल में वेद के व्रतों को करे और गुरु के पास सब शौच और आचरण सीखे।

मृगछाला, दण्ड, मेखला, करधनी और जनेऊ को होशियारी से अप्रमत्त होकर धारण करे।

इन्द्रियों को जीत कर भोजन के लिए सदा शाम को और सबेरे भिक्षा माँगे, फिर सावधान होकर आचमन करने के बाद उसे खावे।

प्रातःकाल सदा दतौन करे। छाता लगाना, जूता पहनना, इतर-फुलेल लगाना, माला पहनना, नाचना, गाना, बहुत बोलना, और मैथुन करना बिलकुल छोड़ दे। हाथी, घोड़े पर न चढ़े और इन्द्रियों को वश में रखता हुआ ब्रह्मचारी सन्ध्योपासन नित्य किया करे।

सन्ध्या के बाद गुरु के चरणों को अभिवादन करके भक्ति के साथ माता-पिता की सेवा करे।

जो ब्रह्मचारी गुरु और माता-पिता की सेवा करना भूल जाता है उस पर देवता अप्रसन्न हो जाते हैं। इस लिए, ईर्ष्या को छोड़ कर ब्रह्मचारी इनकी शिक्षा—उपदेश—में सदा स्थित रहे।

गुरु से चारों वेद, या दो वेद या एक वेद पढ़े और जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी गुरु को दक्षिणा देकर समावर्त्तन संस्कार कर के गाँव में रहे।

जीभ, गुप्त इन्द्रिय, पेट, और हाथ, ये इन्द्रियाँ जिसकी भले प्रकार वश में हो गई हों वह ब्राह्मण ब्रह्मचर्य्य अवस्था से ही संन्यास ले लेने का समय नियत कर ले। और अगर वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहना पसन्द करे तो उसी आचार्य्य के पास

मरण पर्यन्त विरक्त होकर गुरु की सेवा करे। यदि आचार्य्य का स्वर्गवास हो जाय तो गुरु के पुत्र के पास या उसके शिष्य के पास गुरु के कुल में तप करता हुआ जन्म बितावे।

नैष्ठिक ब्रह्मचारी के लिए विवाह और संन्यास का अधिकार नहीं है। विधि-पूर्वक सावधानी से जो ब्रह्मचारी इस प्रकार गुरु की सेवा करता हुआ रहता है वह अत्यन्त दुर्लभ और कल्याण रूप विद्या को पाकर उसका सुलभ फल (मोक्ष) प्राप्त करता है।

गृहस्थ-धर्म

जो वेद को पढ़ चुका हो और वेद-शास्त्र का आशय भले प्रकार समझता हो ऐसा ब्रह्मचारी समावर्त्तन संस्कार करके ऐसी सुन्दर कन्या से विवाह करे कि जिसके प्रवर और गोत्र अपने प्रवर और गोत्र से दूसरे हों, और जिसका कोई भाई मौजूद हो; देह के सब अंग जिसके ठीक ठीक हों और जिसका आचरण पवित्र हो। और आठ विवाहों में जो उत्तम ब्राह्म विवाह माना गया है ब्राह्मण उसी विधि से विवाह करे। ब्राह्म-विवाह से भिन्न विवाह क्षत्रिय आदि के लिए कहे गये हैं।

आलस को छोड़कर सबेरे शाम नित्य होम करे और नित्य दतौन करे। सूर्य्य के उदय होने से पहले उठ कर विधि-पूर्वक मुँह की सफ़ाई करे। मुँह के बासी होने से मनुष्य का मन मलिन रहता है; इससे सूखी या गीली दतौन अवश्य करनी चाहिए। वह दतौन करंज, खैर, कदंब या मौलसिरी की हो।

सप्तपर्ण, पृश्निपर्णी, जामन, नींब, औंगा, बेल, आक और गूलर की भी दतौन अच्छी मानी गई है। काँटे वाले सब वृक्ष पवित्र हैं, और जिनमें दूध निकलता हो ऐसे वृक्ष यश के हेतु माने गये हैं। दतौन आठ अङ्गुल लंबी या बालिश्त भर की होनी चाहिए। दतौन के न मिलने पर मञ्जन आदि से भी मुँह की शुद्धि हो सकती है। दतौन के बाद स्नान करना चाहिए।

स्नान करके सन्ध्या करनी चाहिए। प्रातःकाल सन्ध्या उस समय आरम्भ करे जब आकाश में तारे दिखलाई देते हों और सूर्य्य के उदय होने के समय तक गायत्री का जप करता रहे। बाद हवन करे। शाम को सूर्य्य के अस्त होने से पूर्व ही सन्ध्या शुरू कर दे और जब तक तारे दिखलाई न दें तब तक बराबर सन्ध्या करता रहे। फिर हवन करे।

इस कृत्य के बाद देवयज्ञादि चारों यज्ञ विधि-पूर्वक करे। भोजन के समय जितने समय में गाय दुही जाती है उतने समय तक गृहस्थी पुरुष अतिथि की बाट देखे। यदि कोई अतिथि आ जाय तो उसका विधि-पूर्वक सत्कार करे, फिर स्वयं भोजन करे।

वानप्रस्थ-कृत्य-विधि

गृहस्थी पुरुष पुत्र, पौत्र आदि को और अपनी वृद्ध अवस्था को देख कर स्त्री को पुत्रों के अधीन करके, या अपने साथ लेकर, वन में चला जावे। वहाँ नीवार आदि अन्न से या शाक, मूल, फलों से अपना गुज़ारा करे और सबेरे शाम हवन करता रहे।

चौथे पहर या आठवें पहर या छठे पहर रोज़ एक बार भोजन करे। गरमी सरदी का विचार न करके तप करता रहे। जो वानप्रस्थ मन को वश में करके समाधि लगा कर तप करता है वह पापों से रहित, निर्मल, शान्ति रूप होकर सनातन दिव्य पुरुष को प्राप्त होता है।

संन्यास-आश्रम की कृत्य-विधि

वानप्रस्थ आश्रम को समाप्त करके पापों को दूर करता हुआ मनुष्य चौथे संन्यास-आश्रम को ग्रहण करे।

संन्यास ले लेने के बाद पुत्रादि में प्रीति और उनसे व्यवहार करना छोड़ दे और अपने भाई-बन्धों और सब प्राणियों को अभयदान दे।

संन्यासी कौपीन आदि को ग्रहण कर उत्तम तीर्थस्थान में जावे और वस्त्र से छाने हुए पानी से स्नान और आचमन करके, प्राणायाम करे। यथाशक्ति गायत्री का जप करके परब्रह्म परमात्मा का खूब ध्यान करे। देह की स्थिति के लिए रोज़ भिक्षा माँगे। जितने अन्न से पेट भर जावे उतनी भिक्षा लेनी चाहिए, अधिक नहीं।

भोजन के पश्चात् अपना समय जप, ध्यान और उत्तम उत्तम किताबों के पढ़ने में बितावे।

जो संन्यासी धर्म में तत्पर, शान्त, सब प्राणियों में एक सा, और जितेन्द्रिय होकर विचरता है वह उत्तम स्थान को प्राप्त होता है।

योगाभ्यास-विधि

योगाभ्यास के बल से ही पाप नष्ट होते हैं, इसलिए योग में तत्पर हो कर मनुष्य उत्तम आचरण से नित्य ध्यान करे।

जो ब्रह्म अपने ही स्वरूप से बाहर और भीतर स्थित है और शुद्ध सोने के समान जिसकी कान्ति है ऐसे ब्रह्म का मरण पर्य्यन्त एकान्त में एकाग्र बैठ कर ध्यान करे।

जो सब प्राणियों का हृदय रूप और जो सबके हृदय में स्थित है और जो सब मनुष्यों के जानने योग्य है ऐसे परमात्मा को जाने।

जब तक आत्म-प्राप्ति का सुख न हो तब तक ध्यान करे। आत्म-लाभ के अविरोधी श्रुति और स्मृति के धर्म को करे और गृहस्थ आदि का धर्म न करे।

जैसे घोड़े के बिना रथ और सारथि के बिना घोड़ा नहीं चल सकता और दोनों परस्पर सहायक हैं, इसी प्रकार तप (कर्मकाण्ड) और विद्या (ज्ञान) दोनों मिल कर संसार के रोग की दवा हैं।

जिस प्रकार मीठे से मिले हुए अन्न और मीठे की दशा और जिस प्रकार दोनों ही पंखों से आकाश में पक्षियों की गति (उड़ना) होती है, वैसे ही ज्ञान और तप से युक्त और योग में लगा हुआ मनुष्य दोनों (स्थूल-सूक्ष्म) देहों को शीघ्र छोड़ कर

बन्धनों से छूट जाता है। इस प्रकार जिस का शरीर छूटता है, उसकी कभी कुगति नहीं होती।

इस प्रकार हारीत मुनि ने वर्णों और आश्रमों के धर्म बतलाये हैं। इन धर्मों में, चारों वर्णों में से जो विपरीत बर्ताव करे उसको पतित समझना चाहिए। अपने अपने धर्मों को करते हुए मनुष्य परम गति पाते हैं।

४—औशनस-स्मृति

सृष्टि के आदि में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार ही वर्ण माने गये थे। इन चारों वर्णों के कर्त्तव्य-कर्म भी पृथक् पृथक् धर्मशास्त्रों में बतलाये गये हैं। पहले समय में, वस्तुतः प्रत्येक वर्ण अपने अपने वर्ण का धर्म अच्छी तरह किया करता था। फिर धीरे धीरे जैसा जैसा समय परिवर्तित होता गया वैसा वैसा वर्णों के वर्ण-धर्मों में भी फ़र्क़ पड़ता गया। लोगों में कुछ कुछ अनाचार की प्रवृत्ति होने लगी और होते होते वर्णसङ्करता भी होने लगी। उनके कर्मों में भी भेद हो गया।

इस स्मृति में ऐसी ही जातियों का अधिकतर वर्णन है जो वर्णसङ्करता से पैदा हुई हैं। ये जातियाँ देशकालानुसार जैसा जैसा कर्म करती हैं उसका वर्णन किया गया है।

इस स्मृति की व्याख्या सर्वसाधारण के लिए अधिक उपयोगी न समझ कर हम इसकी इतिश्री यहीं करते हैं।

५—अंगिरः-स्मृति



स स्मृति में नीला रङ्ग विशेषतया बुरा बतलाया गया है। नील के रँगे हुए कपड़े कभी न पहनने चाहिएँ। नील का कपड़ा पहन कर भोजन करना, दान करना, नील की खेती करना आदि सभी बुरे हैं और प्रायश्चित्त के योग्य हैं।

बहु-विध प्रायश्चित्त-विधि

यदि ब्राह्मण अन्त्यज का पकाया हुआ अन्न भूल से खा ले तो उसे चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। और यदि क्षत्रिय खा ले तो उसे कृच्छ्र व्रत तथा वैश्य खा ले तो उसे आधा कृच्छ्र व्रत करना चाहिए।

धोबी, चमार, नट, बुरुड, कैवर्त्त-भेद और भील ये सात अन्त्यज कहाते हैं।

यदि द्विज भूल से अन्त्यज के घर का पानी पी ले तो उसे शास्त्रानुसार प्रायश्चित्त ज़रूर करना चाहिए। यदि ब्राह्मण चाण्डाल के कुएँ या घर का पानी पी ले तो उसे सान्तपन व्रत, क्षत्रिय पी ले तो उसे प्राजापत्य व्रत, और वैश्य पी ले तो उसे आधा प्राजापत्य और शूद्र पी ले तो उसे चौथाई प्राजापत्य व्रत करना

चाहिए। ब्राह्मण अज्ञान से अन्त्यज जातियों का पानी पीकर एक दिन उपवास करके पञ्चगव्य पीने से भी शुद्ध हो जाता है।

बिना जाने लाठी के मारने से गाय मूर्च्छित हो जाय या गिर पड़े तो आठ हज़ार गायत्री का जप करने से शुद्धि होती है।

रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करने के बाद शुद्ध होती है। उसको रजोदर्शन समाप्त होने पर ही स्नान करना चाहिए।

सोने-चाँदी के बर्तन वायु, सूर्य और चन्द्रमा की किरणों से शुद्ध हो जाते हैं।

स्त्री की कमाई से जीविका करना ठीक नहीं; अपनी जीविका के लिए स्वयं परिश्रम करे और धन इकट्ठा करे। मनुष्य को स्त्री के भरोसे पर न रहना चाहिए।

६--यम-स्मृति

विशेष प्रायश्चित्त-विधि



स स्मृति में भी विशेषता के साथ प्रायश्चित्त-विधि बतलाई गई है।

जो पतित हुए बिना ही भाई-बन्धों को छोड़ देते हैं उनको राजा दण्ड दे। पतित पिता भी त्यागने योग्य होता है, पर माता नहीं।

जो पुरुष आत्मघात (खुदकुशी) करता हुआ मरने से बच जाय उस पर दो सौ रुपया जुर्माना करना चाहिए। और उसके पुत्र तथा मित्रों को भी एक एक मुद्रा दण्ड देना चाहिए। फिर सबको प्रायश्चित्त भी करना चाहिए।

जो जल में डूबने से या फाँसी से बच गये हैं, जो संन्यास धर्म का नाश करनेवाले या उसके त्यागी हैं, जो ज़हर खाने से या ऊँचे स्थान से गिरने से और शस्त्र के लगने से मरते मरते बच जायँ; ये सब प्रायश्चित्त के योग्य होते हैं। ये चान्द्रायण या तप्तकृच्छ्र व्रत करने से शुद्ध हो जाते हैं। ऐसे पापियों के घर में रहनेवाला या भोजन करनेवाला भी पापी हो जाता है। उसको दो चान्द्रायण व्रत या गोदान करना चाहिए।

जो गोशाला या ब्राह्मण का घर जला दे और जो खुद फाँसी लगा कर मरा हो, उस को जलानेवाला और फाँसी काटनेवाला द्विज एक कृच्छ्र व्रत करके शुद्ध होता है।

चाण्डाल के घर का भोजन या उनकी स्त्रियों के साथ सहवास करनेवाला एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करे और बिना जाने भोजन कर ले तो दो चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

ब्रह्महत्या आदि महापातक करनेवाले बड़े बड़े अश्वमेध यज्ञों के करने से शुद्ध होते हैं।

गाय के मारने से अगर उस का गर्भ गिर जाय तो एक कृच्छ्र व्रत करना चाहिए।

गाय को बाँधने, रोकने, और पालन-पोषण करने से यदि बीमार गाय मर जाय तो बाँधना आदि काम करनेवाले को पाप नहीं लगता।

मूर्च्छित होकर ज़मीन पर गिरे हुए पशु को जो मनुष्य, गुस्से के बिना ही, चलाने के वास्ते लकड़ी से धमकावे और वह गिरा हुआ पशु यदि उठकर दो चार पैर चले या ग्रास खा ले या पानी पी ले और फिर अपने पूर्व रोग से मर जाय तो प्रायश्चित्त नहीं होता।

प्रायश्चित्त के समय बाल सब मुड़वा देना चाहिए। दीवाल की, जल के भीतर की, बाँबी की, चूहों की खोदी हुई, रास्ते की, मुर्दा-घाट की और शौच की बची हुई मिट्टी शुद्धि के लिए नहीं लेनी चाहिए।

इष्ट (यज्ञ आदि) करना और पूर्त्त कुएँ आदि सबको बनाने चाहिएँ। इष्ट से स्वर्ग और पूर्त्त से मोक्ष मिलता है। जिस प्रकार की धन की शक्ति हो वैसा ही यज्ञ हो सकता है। तालाब, बाग़ और प्याऊ का नाम पूर्त्त है। बावड़ी, कुँआ, तालाब और मन्दिर अगर टूट फूट गये हों तो इनकी मरम्मत करानेवाला भी पूर्त्त के फल का भागी होता है।

सफ़ेद गाय का मूत्र, काली गाय का गोबर, लाल गाय का दूध, सफ़ेद गाय का दही, और कपिला गाय का घी, यह पञ्चगव्य प्रायश्चित्तियों के लिए बतलाया गया है।

एक सूतक के पूरा होने के पहले यदि दूसरा सूतक हो जाय तो दूसरे सूतक का दोष नहीं होता। पहले के साथ उसकी भी शुद्धि हो जाती है।

जन्म के अशौच के साथ जन्म-अशौच की और मृतक-अशौच के साथ मृतक-अशौच की शुद्धि हो सकती है। दुबारा शुद्धि करने की ज़रूरत नहीं।

७--आपस्तम्ब-स्मृति

प्रायश्चित्तनिराकरण

इस आपस्तम्ब ऋषि की बनाई हुई स्मृति में भी अन्य स्मृतियों के समान शुरू शुरू में प्रायश्चित्त की विधि, प्रायश्चित्तीय होने के कारण और उनका निराकरण विस्तारपूर्वक लिखा गया है। दूसरी स्मृतियों में हम संक्षेप रूप से इस विषय में लिख चुके हैं, इस कारण यहाँ पर इस विषय को दुबारा नहीं लिखा*।

---

*पुराने ज़माने में लोग धर्मिष्ठ अधिक होते थे। इस का निश्चय पुरानी किताबों के देखने से भले प्रकार होता है। पूर्वकाल में लोगों से पहले तो ऐसे काम ही कम बन पड़ते थे कि जो दोष-पूर्ण हों और अगर कोई उनसे ऐसा काम हो भी जाता था तो वे उस ज़रा ज़रा सा बुरा काम हो जाने पर प्रायश्चित्त किया करते थे, और अपनी शुद्धि कर लेते थे। इसी कारण, इन प्रत्येक स्मृतियों में ऐसे प्रायश्चित्त पाये जाते हैं जिनको आज कल लोग हास्यदृष्टि से देखने लगे हैं। कोई भी स्मृति ऐसी नहीं जिसमें प्रायश्चित्त विषय पर खूब ज़ोर से न लिखा गया हो। हमने ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से पहले इस विषय में जहां तहां संक्षेप रूप से लिख दिया है, जो हमने सर्वसाधारण के लिए अधिक उपयोगी समझा है। और जिसको अधिक उपयोगी नहीं समझा उसे छोड़ दिया है।

मोक्ष-साधन और क्रोध आदि का त्याग

यमराज को यम नहीं कहते किन्तु अपने शरीर को ही यम कहते हैं। जिस मनुष्य ने अपने को वश में कर लिया उसका यमराज क्या करेगा ? मनुष्य को चाहिए कि पहले वह अपने को अपने वश में करे।

खड्ग (तलवार) भी ऐसा तीखा या पैना नहीं और साँप भी ऐसा विकराल या भयानक नहीं जैसा कि मनुष्यों के शरीर में क्रोध अपना नाश करनेवाला है। इस क्रोध की बड़ी महिमा है ; इसे छोड़ने की बड़ी ज़रूरत है।

क्षमा गुण मनुष्य को इस लोक और परलोक में सुख देने-वाला है। क्षमा करनेवालों में एक ही प्रत्यक्ष दोष देख पड़ता है, दूसरा नहीं। वह यह कि क्षमा करनेवाले मनुष्य को लोग अस-मर्थ समझने लगते हैं। सो ठीक नहीं।

शब्द-शास्त्र (व्याकरण) ही पढ़ने-पढ़ानेवाले मनुष्य को, घर से प्रेम रखनेवाले को, तथा भोजन-वस्त्र में प्रेम करनेवाले को और जो जगत् को अपने वश में करने के लिए लगे रहते हैं उनको मोक्ष नहीं मिल सकता। किन्तु एकान्त में रहनेवाले, दृढ़ व्रत करनेवाले, सांसारिक मोह-जाल में अधिक न फँसनेवाले का मोक्ष होता है। और अध्यात्म-योग में लगे रहनेवाले, हिंसा न करनेवाले और जिसका मन स्वाध्याय रूप योग में प्रवृत्त रहता है उस का—वेदादि शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने में लगे रहनेवाले पुरुष का—अच्छी तरह मोक्ष होता है।

गुस्सा करनेवाला मनुष्य जो कुछ यज्ञ, होम, पूजा, पाठ करता है उसका वह सब किया हुआ शुभ काम इस तरह नष्ट हो जाता है जिस तरह कच्चे घड़े में पानी भरने से घड़ा टूट फूट जाता है।

अपमान से तप की वृद्धि और सत्कार से तप का नाश होता है। अर्चित और पूजित ब्राह्मण दुही हुई गाय के समान दुःखी होता है। फिर वही गाय अमृत-जल से पैदा हुए तिनकों से जैसे पुष्ट होती है वैसे ही वह ब्राह्मण भी जप तथा होम से पुष्ट होता है।

मनु ने भी बतलाया है कि ब्राह्मण को सम्मान से सदा, विष की तरह, डरना चाहिए। और अमृत की तरह अपमान की इच्छा रखनी चाहिए। जो ब्राह्मण आदर चाहेगा वह यज्ञ, तप आदि शुभ कर्म अच्छी तरह नहीं कर सकता।

जो दूसरे की स्त्री को माता के समान और दूसरे के धन को ढेले के समान और सब प्राणियों को अपने समान देखता है, वास्तव में वही मनुष्य देखता है। उसी को द्रष्टा कहते हैं।

———

८—संवर्त्त-स्मृति

ब्रह्मचर्य्याश्रम-धर्म



क दिन वामदेव आदि ऋषि वेद-वेदाङ्ग के पारङ्गत संवर्त्त ऋषि के पास उपस्थित हुए और उन्होंने द्विजों के धर्म का साधन जानने की इच्छा प्रकट की। तब संवर्त्त ऋषि ने कहा—

जिस देश में काला हरिण स्वभाव से सदा विचरता हो उसी को धर्म का देश समझना चाहिए और वही द्विजों के धर्म का साधक है।

जनेऊ हो जाने के बाद प्रति दिन द्विज ब्रह्मचारी गुरु के हित का आचरण करे और माला, गन्ध और शहद का सेवन करना छोड़ दे।

प्रातःकाल की सन्ध्या उस समय विधि से आरम्भ करे जिस समय आकाश में तारे दिखलाई देते हों और सायङ्काल की सन्ध्या उस समय आरम्भ करे जिस समय सूर्य्य आधा अस्त हो चुका हो। सबेरे जब तक सूर्य्य दिखलाई न दे तब तक, और शाम को जब तक तारे दिखलाई न दें तब तक, निरन्तर गायत्री का जप ब्रह्मचारी को करना चाहिए। इसके बाद नित्य होम करना चाहिए, फिर वेद-पाठ भी अवश्य करना चाहिए। पहले प्रणव—

ओ३म्—वेद का उच्चारण करे, फिर "ओ३म् भूः, ओ३म् भुवः, ओ३म् स्वः, इन तीन व्याहृतियों का। इनके बाद गायत्री—'ओ३म् तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्' को पढ़े। इसके बाद वेद का पढ़ना आरम्भ करना चाहिए।

सदा गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिए और पढ़ते समय बुद्धि दूसरी जगह कहीं न लगानी चाहिए।

व्रत करनेवाला ब्रह्मचारी सदा शाम को और सबेरे भिक्षा माँग कर लावे और गुरु की आज्ञा लेकर पूर्व की ओर मुँह करके खा जाय।

द्विजातियों के लिए शाम को और सबेरे दो ही बार भोजन करना लिखा है। इसलिए अग्निहोत्री बीच में भोजन न करे। आचमन करके भोजन करना चाहिए। जो आचमन किये बिना भोजन करता है वह प्रायश्चित्तीय होता है।

पैरों को धोये बिना, चोटी में गाँठ दिये बिना, यज्ञोपवीत के बिना और खड़ा हो कर आचमन करने से मनुष्य अशुद्ध हो जाता है।

गट्टे तक हाथों और पैरों को जल से धोना चाहिए। फिर दो बार मुँह को पोंछ कर नेत्र आदि बारह अङ्गों का स्पर्श करे।

जिसने सन्ध्या और अग्निहोत्र न किया हो वह स्नान करके आठ हज़ार गायत्री का जप करने पर शुद्ध होता है।

अपनी स्वस्थ अवस्था में एक ही पुरुष से भिक्षा माँग कर जो खाता है या बिना नहाये जो खाता है वह आठ सौ गायत्री का

जप करने से शुद्ध होता है। ब्रह्मचारी को एक ही पुरुष से भिक्षा माँग कर कभी न खानी चाहिए।

ब्रह्मचारी को बासी अन्न कभी न खाना चाहिए। स्वस्थ अवस्था में ब्रह्मचारी के लिए दिन में सोना भी मना है। यदि कभी ऐसी हालत में सो जावे तो आठ सौ गायत्री का जप करना चाहिए।

इस प्रकार बर्ताव करता हुआ ब्रह्मचारी अपनी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त होता है।

गृहस्थाश्रम-धर्म

ब्रह्मचर्य्य आश्रम को समाप्त करके, समावर्तन करने के बाद, द्विज ऐसी स्त्री के साथ विवाह करे जो अपने वर्ण की हो तथा अच्छे कुल में पैदा हुई हो, एवं अच्छे लक्षणों वाली हो। शील-रूप-गुण-वाली स्त्री के साथ ब्राह्म * विवाह करना चाहिए। और प्रति दिन पञ्चयज्ञ करता रहे। अपना कल्याण चाहनेवाला द्विज पञ्च-यज्ञ कभी न त्यागे। परन्तु जन्म और मरण के सूतक में ये काम न करने चाहिएँ। इन दोनों सूतकों में दान देना और वेद पढ़ना भी छोड़ दे। ये काम ब्राह्मण को दश दिन तक, क्षत्रिय को बारह दिन तक, और वैश्य को पन्द्रह दिन तक छोड़ने चाहिएँ। शूद्र एक महीने के बाद शुद्ध होता है।

*अच्छे अच्छे कपड़े पहिना कर विद्वान् और सुशील लड़के को बुला कर कन्या दे देना ब्राह्म-विवाह कहाता है।

किसी के मर जाने पर प्रथम, तृतीय, चतुर्थ एवं नवें दिन द्विज को अस्थि-सञ्चयन करना चाहिए। अस्थि-सञ्चयन के बाद ही दूसरों को छू सकता है।

पुत्र के पैदा होने पर पिता को सचैल स्नान करना चाहिए। माता दश दिन में शुद्ध होती है पर पिता का स्नान कर लेने पर, स्पर्श किया जा सकता है। जन्म-सूतक में सूखे अन्न या फल से होम करने का विधान है।

मरण और जन्म-सूतकों में पञ्चयज्ञ-विधि नहीं करनी चाहिए। दश दिन के बाद धर्म का जाननेवाला ब्राह्मण अच्छी तरह वेद पढ़े।

दान-धर्म-माहात्म्य

मनुष्य को पापों का नाश करनेवाला दान अनेक तरह से देना चाहिए। संसार में मनुष्य को जो जो चीज़ें इष्ट और प्यारी हों, अपने अक्षय पुण्य की इच्छा करनेवाले पुरुष को वही चीज़ें गुणवान् पुरुष को देनी चाहिएँ। अनेक तरह के द्रव्य और अनेक तरह के अन्न, मुद्रा और रत्न पाप-रहित गुणज्ञ मनुष्य को देने से मनुष्य लक्ष्मी को प्राप्त होता है। गन्ध, भूषण और फूलों का दान करनेवाला प्रसन्न हुआ जहाँ तहाँ पैदा होता है।

जो दान वेद-पाठी तथा कुलीन और विशेष कर अभ्यागत को दिया जाता है वह बड़े फल का देनेवाला होता है।

सुशील, वेद को जाननेवाले, कुलीन, शुद्ध एवं बड़े बुद्धिमान् ब्राह्मण को बुला कर हव्य और कव्यान्न से उसका सत्कार करे।

अनेक तरह के द्रव्य जो रसीले हों और जिनको लेने-वाला अच्छा समझे उन्हीं चीज़ों का दान अपना कल्याण चाहने-वाले पुरुष को करना चाहिए।

वस्त्र के दाता का उत्तम वेष और चाँदी के दाता का सुन्दर रूप होता है। सोना दान करनेवाले को धन की वृद्धि तथा अच्छी अवस्था मिलती है।

प्राणियों को अभय-दान देने से सब कामनायें पूरी होती हैं और बड़ी उम्र और सदा सुख मिलता है।

अन्न, जल और घी का दान करनेवाला सुख भोगता है और भूषण दान करने से बड़े फल को प्राप्त होता है।

पान का दान करनेवाला बुद्धिमान्, पण्डित, रूपवान् और भाग्यशाली होता है।

जो मनुष्य खड़ाऊँ, जूता, छाता, चारपाई और आसन तथा अनेक तरह की सवारी देता है वह जन्मान्तर में धनी बनता है।

जो जाड़े में दूसरों का शीत निवारण करता है वह जठराग्नि की दीप्ति प्राप्त करता है और रूपवान् तथा भाग्यवान् होता है।

जो रोगियों के रोग को दूर करने के लिए ओषधि, और घी मिला हुआ भोजन दान करता है वह रोग-रहित, सुखी और बड़ी उम्र का होता है।

जो जाड़े के दिनों में ईंधन का दान करता है वह युद्ध में शत्रुओं को जीतता और लक्ष्मीवान् बन कर देदीप्यमान बनता है।

जो कन्या को अच्छी तरह से ज़ेवर और कपड़े पहना कर कन्या के समान वर को ब्राह्म-विधि से सत्कार के साथ कन्यादान करता है वह कल्याण को प्राप्त होता है और सज्जनों में भलाई तथा कीर्त्ति प्राप्त करता है।

जो अन्न का दान करता है वह सदा तृप्त और पुष्ट रहता है और जल का दान देनेवाला सुखी तथा सब कर्मों से युक्त रहता है। सब दानों में अन्न का दान उत्तम कहा गया है क्योंकि सब प्राणियों का अन्न ही जीवन है। अन्न से ही प्राणी पैदा होते हैं और अन्न ही से जीते हैं।

जो विद्या का दान करता है वह सदा सुखी रहता है और मोक्ष पाता है।

कभी किसी की बुराई न करनी चाहिए, झूठ कभी न बोलना चाहिए और दिये हुए दान की प्रसिद्धि कभी न करनी चाहिए। यह नहीं कि थोड़ा सा भी दान किया और फ़ौरन शुभ समाचार लिख कर समाचार-पत्रों में भेज दिया। इससे कुछ लाभ नहीं होता।

जो मनुष्य गृहस्थी का काम करके अपनी स्त्री का पालन-पोषण करते हैं और ऋतुकाल में ही उसका सङ्ग करते हैं वे परम गति को प्राप्त होते हैं।

वानप्रस्थ-धर्म

इस तरह दूसरे आश्रम को समाप्त करके जब बाल सफ़ेद हो जावें और अवस्था भी अधिक हो जाय तब तीसरे आश्रम—

वानप्रस्थ—का आश्रय लेना चाहिए। उस समय अकेला या स्त्री सहित वन को चला जाय। वन में अग्निहोत्र कभी न छोड़े। वेद का अध्ययन करता रहे। कन्द, मूलादि खावे और शाक, मूल, फलादि का दान भी सदा करते रहना चाहिए।

संन्यास-धर्म

इस तरह वानप्रस्थ-आश्रम को पूरा करके क्रोध और इन्द्रियों के वेग को जीत कर संन्यास ले लेना चाहिए।

संन्यासी होकर वेद का भी अभ्यास करना चाहिए और आत्मविद्या में तत्पर रहना चाहिए और विचारवान् बन कर संन्यासी कई घर से भिक्षा माँग कर अपना गुज़ारा करे।

निर्जन वन में बैठ कर मन, वाणी और कर्म से एकाकी नित्य ब्रह्म का विचार करे। मरने और जीने का कभी ख़याल न करे। जब तक अवस्था समाप्त हो काल की प्रतीक्षा करता रहे।

क्रोध और इन्द्रियों को वश में करके जो चारों आश्रमों का सेवन कर लेता है वह वेद-शास्त्र का जाननेवाला ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है।

ब्रह्महत्या आदि महापातकों के प्रायश्चित्त

ब्रह्महत्यारा, मदिरा पीनेवाला, सोने की चोरी करनेवाला, गुरु की शय्या पर गमन करनेवाला और पाँचवाँ इनका साथी, ये पाँच महापातकी कहलाते हैं।

ब्रह्महत्यारे को सब घर-बार छोड़ कर वन में चला जाना

चाहिए। वहाँ वह बक्कल पहन कर रहे और जटा रखाये रहे; सब काम छोड़ कर वन में पैदा हुए फल-मूल खावे। यदि फल-मूल से गुज़ारा न हो तो भीख माँगने के लिए गाँव में घूमे। चारों वर्णों से भीख माँगे और हत्या के चिह्न को बाँधे रहे। मन को सदा अपने क़ाबू में रक्खे, भिक्षा माँग कर फिर भी वन ही में चला जावे। वह सदा आलस को छोड़ कर वन में ही निवास करे और अपने पाप-कर्म प्रकट करता रहे। ऐसे पातकी को बारह वर्ष तक व्रत करना चाहिए और सब इन्द्रियाँ रोक कर सब प्राणियों की भलाई में लगा रहना चाहिए। इस तरह बर्त्ताव करने से ब्रह्महत्या से छुटकारा होता है।

द्विजों को मदिरा कभी न पीनी चाहिए। जितने प्रकार की मदिरा होती है सब एक ही दरजे की मानी गई है—सबके पीने से एक सा ही पाप होता है। मदिरा पीने का प्रायश्चित्त इस तरह है कि आग पर गर्म किया हुआ गाय का मूत्र या गोबर पीना चाहिए—अथवा गर्म किया हुआ घी। दूसरी बात यह कि सांसारिक सब कामनायें छोड़ कर वन में बसना चाहिए या तीन चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। इस तरह मदिरा पीनेवाले की शुद्धि होती है। मदिरा के बरतन का पानी पी कर भी मनुष्य दुबारा यज्ञोपवीत संस्कार के योग्य हो जाता है।

सोने की चोरी करनेवाले की शुद्धि इस तरह होती है—चोरी करने के बाद चोर अपने राजा से निवेदन करे कि मैंने भूल से यह अपराध किया है। तब राजा उसको सख़्त सज़ा दे। दूसरा यह कि पड़े पड़ाये फटे कपड़े पहन कर वन में चल

जाना चाहिए और ब्रह्महत्या का व्रत करना चाहिए। इस तरह भी शुद्ध होता है।

गुरु की शय्या पर गमन करनेवाले का प्रायश्चित्त इस तरह बतलाया गया है कि—लोहे की गर्म कड़ाही में सो कर स्वयं शरीर छोड़ दे अथवा चार या तीन चान्द्रायण व्रत करे।

जो कोई इन पापियों के साथ मोह वश सम्बन्ध रखता है उसको भी उसके साथ वैसा ही प्रायश्चित्त करना चाहिए, तभी शुद्धि होती है।

दूसरे प्रायश्चित्त

गाय मारनेवाला गाय के ही पास अपना संस्कार करे और गोशाला में ही इन्द्रियों को वश में रखता हुआ पन्द्रह दिन तक पृथिवी पर सोवे। तीन वक्त स्नान करे और नाखून तथा बाल न रक्खे। गोहत्या के पाप से मुक्ति चाहनेवाला मनुष्य क्रम से सत्तू, जौ, दूध, दही और गोबर का भोजन करे और यथाशक्ति गायत्री तथा दूसरे पवित्र मन्त्रों का जप करता रहे। जब आधा महीना हो चुके तब ब्रह्मभोज आदि करे और गोदान भी करे।

हाथी, घोड़ा, भैंस, ऊँट और बन्दर यदि भूल से किसी से मर जावें तो उसे सात दिन तक निराहार व्रत करना चाहिए।

बाघ, कुत्ता, गधा, सिंह, रीछ और सुअर को बिना जाने मारनेवाला तीन दिन तक व्रत करने से शुद्ध होता है।

वन में घूमनेवाले हिरनों का मारनेवाला उपवास करके

एक दिन रात अग्नि-देवतावाले मन्त्र का जप करता हुआ खड़ा रहे तो शुद्धि होती है।

हंस, कौआ, बगला, मोर, कारण्डव (एक प्रकार का हंस) सारस और पपीहा—इन पक्षियों के मारनेवाले को तीन दिन तक उपवास करके रहना चाहिए।

चकवा, कूँच, मैना, तोता, तीतर, श्येन, गीध, उल्लू, कबूतर, टिटिहरी, जालपाद (हंस का भेद), कोयल और मुरग़े को मारनेवाला एक दिन उपवास—व्रत करे। कुछ भी न खावे। ऊपर कहे जीवों का मारनेवाला व्रत के साथ साथ अग्नि-मन्त्र का जप करता हुआ खड़ा रहे।

मेंढक, साँप, बिलाव और चूहे के मारनेवाले को तीन उपवास व्रत और दान करना चाहिए।

जिनमें हड्डी नहीं होती ऐसे मक्खी-मच्छर आदि जीवों को मारनेवाला प्राणायाम करने से शुद्ध हो जाता है। और जिनमें हड्डी होती है ऐसे छोटे छोटे जानवर भूल से मर जावें तो दान करने से शुद्धि होती है।

सब प्रकार के अनर्थ दूर करने के उपाय

स्नान करके शुद्ध होकर, धुले हुए साफ़ कपड़े पहन कर, शुद्ध मन से इन्द्रियों को जीत कर और सात्विक स्वभाव होकर ज्ञानवान् मनुष्य को दान करना चाहिए।

मन को जीतनेवाला द्विज उपपातकों (छोटे छोटे पापों) की शुद्धि के लिए सात व्याहृतियों से एक हज़ार आहुति देकर

होम करे और बड़ा पातकी गायत्री से एक लाख आहुति देकर होम करे। क्योंकि गायत्री मन्त्र पवित्र करनेवाला है।

सब प्रकार के पापों की शुद्धि के लिए वेदों की माता पवित्र गायत्री मन्त्र का वन में जाकर या नदी के किनारे बैठ कर साव-धानी से जप करे। नदी, तालाब आदि में विधिपूर्वक स्नान तथा आचमन करके तीन प्राणायामों से शुद्ध होकर द्विज को गायत्री का जप करना चाहिए। पापियों को शुद्ध करनेवाला गायत्री से बढ़ कर दूसरा उपाय नहीं है। महा-व्याहृति और ओङ्कारसहित गायत्री का जप करना चाहिए।

ब्रह्मचारी भोजन छोड़ कर, सबकी भलाई में लगा हुआ, एक लाख गायत्री का जप करने से पाप से छूटता है।

यज्ञ करने के अयोग्य पुरुष के घर यज्ञ कराने से और बुरा अन्न खाकर मनुष्य आठ हज़ार गायत्री का जप करने से शुद्ध होता है।

जो प्रति दिन गायत्री का जप करता है वह बिना जाने किये हुए पाप से इस तरह छूट जाता है जैसे केंचुली से साँप।

ओङ्कार सहित सात महाव्याहृति, गायत्री और प्राणायाम द्विज को नित्य करने चाहिएं।

मन को वश में करने का नाम प्राणायाम है। सावधान होकर प्रति दिन कम से कम तीन प्राणायाम करना चाहिए। मन, वाणी या देह से जो किया हुआ पाप है वह प्राणायाम के प्रभाव से भस्मीभूत हो जाता है। प्राणायाम करने से पाप की निवृत्ति हो जाती है।

९—कात्यायन-स्मृति

यज्ञोपवीत-विचार

एक पवित्र सूत के तीन तार ऊपर की ओर बटने चाहिएँ और फिर उन तीनों तारों को तीन बार नीचे को बटना चाहिए, तब जनेऊ तैयार होता है। उस जनेऊ में एक गाँठ लगानी चाहिए।

द्विज को ऐसा जनेऊ पहनना चाहिए जो पीठ की हड्डी और नाभि पर से धारण किया हुआ कटि भाग तक आ जावे, अर्थात् न बहुत लम्बा हो और न बहुत छोटा।

द्विज को सदा जनेऊ धारण किये रहना चाहिए और चोटी में सदा सबको गाँठ लगानी चाहिए। जिसकी चोटी में गाँठ लगी हुई न हो और जो जनेऊ पहने न हो तो उसका किया हुआ शुभ कर्म न किये के समान हो जाता है।

आचमन और इन्द्रिय-स्पर्शविधि

प्रत्येक कृत्य में पहले तीन बार आचमन करना चाहिए। फिर दो बार मुँह पोंछ कर मुँह, नाक, आँख, कान, नाभि, हृदय, शिर और कन्धों का स्पर्श करना चाहिए।

मिली हुई बीच की तीन उँगलियों से मुँह का, अँगूठा और प्रदेशिनी से नाक का स्पर्श करना बतलाया गया है। अँगूठा और अनामिका अँगुली से पहले दाहनी आँख, फिर बाईं आँख

और कानों को छूना चाहिए। कनिष्ठिका और अँगूठे से नाभि को और हथेली से हृदय को छूना चाहिए। पीछे सब अँगुलियों से सिर को और हाथ के आगे के हिस्से से भुजाओं को छूना ठीक है।

शास्त्रों में जहाँ जहाँ यज्ञादि कर्मों का विधान किया गया हो और यह ख़ास तौर से न बतलाया गया हो कि कौन काम किस अङ्ग से करना चाहिए तो वहाँ दाहने हाथ का विधान समझना चाहिए। क्योंकि दाहना हाथ सब कामों को पूरा करनेवाला है। इसी प्रकार, जिस यज्ञादि में यह न बतलाया गया हो कि किस दिशा में कृत्य करना चाहिए वहाँ पूर्व, उत्तर और ईशान ये दिशायें समझ लेनी चाहिएँ। इनमें से किसी एक दिशा की ओर मुँह करके काम करना चाहिए। जिस कृत्य में यह भी विधान न बतलाया गया हो कि यह काम बैठ कर, खड़ा होकर या झुक कर करे तो वहाँ यही समझना चाहिए कि बैठ कर काम करने का विधान है।

अरणी बनाने की विधि

यज्ञादि कार्यों में अरणी द्वारा निकाली हुई अग्नि को लोग पहले काम में लाते थे। यह अग्नि पवित्र मानी गई है और इसी का शास्त्रों में विधान भी पाया जाता है। अरणी बनाने की रीति यह है—

छोंकर का पेड़ जिसमें साथ साथ लिपटा हुआ जमा हो ऐसे शुद्ध भूमि में जमे हुए पीपल की, जिसकी शाखायें पूर्व की ओर या उत्तर की ओर या ऊपर को गई हों, लकड़ी लेनी

चाहिए। उस लकड़ी की अधरारणी और उत्तरारणी (जिसमें बर्म्मा दबा कर बर्म्मा फेरते हैं) बनानी चाहिए। और मज़बूत लकड़ी का चात्र और ओविली (बर्मे के नीचे और ऊपर की छोटी छोटी लकड़ियाँ) बनानी चाहिएँ।

छयोंकर की जड़ से जिस पीपल की जड़ मिली हुई हो उस पीपल को शमीगर्भ कहते हैं। यदि शमीगर्भ पीपल कहीं न मिले तो केवल पीपल की ही लकड़ी अरणी के वास्ते ले लेनी चाहिए।

चौबीस अंगुल की लम्बाई, छः अंगुल की चौड़ाई, चार अंगुल की मोटाई और ऊँचाई का प्रमाण दोनों अरणियों का बतलाया गया है। आठ अंगुल का प्रमन्थ (उत्तरारणी का टुकड़ा जिसको अधरारणी में लगा कर मथते हैं) होना चाहिए। बारह अंगुल का चात्र (जिस लकड़ी में रस्सी लपेट कर खांचा जाता है) होना चाहिए और ओविली (जिस लकड़ी को ऊपर से तिरछी रख कर दोनों हाथों से दबाया करते हैं) का विधान है। यह सभी अग्नि मथने का सामान है। जहाँ कहीं अँगूठे के अंगुल का प्रमाण कहा गया हो वहाँ बीच की गाँठ से सदा मापना चाहिए।

पञ्चमहायज्ञ-विधि

देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ और मनुष्ययज्ञ ये पाँच महायज्ञ कहाते हैं।

विधि-पूर्वक वेद का पढ़ना पढ़ाना, सन्ध्योपासन और योगाभ्यास आदि करना ब्रह्मयज्ञ है।

हवन करना, विद्वानों का सङ्ग, सेवा, पवित्रता, दिव्य गुणों का धारण, विद्या की उन्नति आदि शुभ कर्मों का करना देवयज्ञ कहाता है।

विद्वान्, ऋषि, पढ़ने पढ़ानेवाले, माता-पिता आदि वृद्ध, ज्ञानी और परम योगियों की सेवा करना पितृयज्ञ कहाता है। पितृयज्ञ के दो भेद हैं—एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्रद्धापूर्वक जो काम किया जाय उसको श्राद्ध कहते हैं, और जिस जिस कर्म से माता-पिता आदि पितर प्रसन्न हों या प्रसन्न किये जायँ उसको तर्पण कहते हैं।

जब रसोई तैयार हो चुके और भोजन के लिए जो कुछ बनाया गया हो उसमें से (खट्टे, नमकीन और खारी भोजन को छोड़ कर) घी, मीठा मिले हुए अन्न को लेकर हवन करे और अतिथि को खिलावे तथा कुत्ते आदि जीवों को टुकड़े दे दे। इसका नाम भूतयज्ञ है।

पाँचवाँ मनुष्ययज्ञ अर्थात् अतिथि-सेवा है। वह इस प्रकार करनी चाहिए कि—जिसके आने की कोई तिथि निश्चित न हो अर्थात् जो अचानक आ जाय; जो धर्मात्मा, सत्य का उपदेश करनेवाला, सब की भलाई के लिए सब जगह घूमनेवाला, पूरा विद्वान्, और परम योगी हो उसकी अच्छे प्रकार जल और भोजन आदि से सेवा करे। इसी का नाम मनुष्ययज्ञ है।

ब्रह्मयज्ञ तर्पण से पहले अथवा प्रातःकाल के होम के पीछे करना चाहिए।

मनुष्य स्वयं भोजन करे या न करे पर बलिवैश्वदेव दोनों समय अवश्य करना चाहिए; नहीं तो पाप का भागी बनता है।

ब्रह्मयज्ञ से बढ़ कर यज्ञ और वेद को पढ़ाना रूप दान से बढ़ कर दूसरा दान नहीं है।

दक्षिणा-दान

यज्ञादि कार्यों में ब्रह्मा का आसन सर्वोच्च माना गया है। यदि हवन करने का काम ब्रह्मा के सिवा किसी दूसरे विद्वान् ने किया हो तो आधी दक्षिणा हवन करनेवाले को तथा आधी ब्रह्मा को देनी चाहिए। यज्ञ का करनेवाला यदि ब्रह्मा और होता—हवन करनेवाले—का काम स्वयं ही करे तो किसी पूर्ण विद्वान् को दक्षिणा दे दे। कुल का ऋत्विज् यदि भले प्रकार पढ़ा लिखा हो और यदि गुरु पास ही हों तो अपना कल्याण चाहनेवाला पुरुष दक्षिणा देने के समय इन दोनों को कभी न त्यागे अर्थात् दोनों को दक्षिणा ज़रूर देनी चाहिए और दूसरों को भी, दक्षिणा देने के समय, गुरु और अपने विद्वान् पुरोहित से सलाह करके दे। यदि कुल-पुरोहित और गुरु दूर देश में हों तो इन दोनों के लिए उत्तम उत्तम चीज़ों का मन में सङ्कल्प करके दूसरे मनुष्यों को दक्षिणा देनी चाहिए।

जिसके घर में एक मूर्ख हो और विद्वान् दूर हो तो विद्वान्

को ही दक्षिणा देनी चाहिए, क्योंकि मूर्ख का तिरस्कार गिना नहीं जाता।

बिना पढ़े-लिखे का तिरस्कार नहीं समझा जाता क्योंकि जलती हुई आग को छोड़ कर राख में आहुति देना ठीक नहीं है।

१०—बृहस्पति-स्मृति

सब दानों म पृथ्वी का दान अच्छा है

इस स्मृति में राजा इन्द्र और उनके पुरोहित महा विद्वान् बृहस्पति के परस्पर प्रश्नोत्तर हैं।

जब राजा इन्द्र, ऐसे ऐसे सौ यज्ञ समाप्त कर चुके कि जिनमें बड़ी बड़ी दक्षिणायें दी गई थीं। तब बृहस्पति से पूछने लगे कि हे भगवन्! ऐसा कौन सा दान है जिसके करने से मनुष्य को चारों ओर से सुख बढ़ता है? जो जो चीज़ें देने के योग्य और सबसे अच्छी हों और बेशक़ीमत समझी जाती हों, उनका दान मुझे बतलाइए। तब इन्द्र के पुरोहित, वाणी के पति, और महान् विद्वान् बृहस्पतिजी ने उत्तर दिया कि हे इन्द्र! सोना, पृथिवी और गाय का दान करनेवाला सब पापों से छूट जाता है। हे इन्द्र! जो मनुष्य पृथिवी का दान करता है उसने मानों सोना, चाँदी, कपड़े, मणि और रत्न—सब का दान दे दिया।

जो पृथिवी हल से जोती गई हो, जिसमें बीज भी बोया गया हो और जो हरे हरे अन्न से शोभायमान हो, ऐसी पृथिवी का दान करनेवाला सदा सुखी रहता है।

जिस प्रकार पृथिवी पर बोये हुए बीज जमते हैं इसी प्रकार पृथिवी के दान से कामनाओं की सिद्धियाँ बढ़ती हैं।

हे इन्द्र ! जैसे जल में पड़ी हुई तेल की एक बूँद भी फैलती जाती है इसी प्रकार पृथिवी का दान भी शाख़ शाख़ में जमता है।

अन्न का देनेवाला सदा सुखी रहता है, वस्त्र का दाता रूपवान् होता है और हे राजन् ! वह मनुष्य सब कुछ देनेवाला होता है जो पृथिवी का दान करता है।

जिस प्रकार दूध देनेवाली गाय दूध देकर बछड़े को सन्तुष्ट करती है, इसी प्रकार हे इन्द्र ! अपने हाथ से दी हुई पृथिवी भी देनेवाले को पुष्ट तथा सन्तुष्ट करती है।

हे इन्द्र ! शङ्ख, राजगद्दी, छाता, प्राणी, वृक्षादि और उत्तम हाथी, ये पृथिवी के दान के समान पुण्य हैं और स्वर्ग के फल देते हैं। पृथिवी के दान की सब देवों ने प्रशंसा की है। पृथिवी का जो दान करता है उसके पिता, पितामह आदि खुश होते हैं कि हमारे कुल में पृथिवी का दान करनेवाली सन्तान पैदा हुई है। यह हमारी भी रक्षा करेगा—हमें भी सुख पहुँचायेगा।

गाय, पृथिवी और विद्या ये तीन सबसे बड़े तथा अच्छे दान हैं। ये तीनों दाता को निःसन्देह पापों से पार कर देते हैं।

भूमि छीनने का निषेध

जो मनुष्य अन्याय से दूसरों की भूमि छीन लेते हैं, या दूसरों से छिनवा लेते हैं, वे दोनों ही छीनने और छिनवानेवाले, अपने कुल को नष्ट करनेवाले हैं।

जो मन्द-बुद्धि और अज्ञानी मनुष्य पृथिवी छीननेवाले को प्रेरणा (इशारा) करता है वह पशु आदि तिर्यक् योनि में पैदा होता है।

खेत छीननेवाले की तीन पीढ़ियाँ दुःख भोगती हैं।

होम, दान, तप, वेद का पढ़ना और जो कुछ पुण्य धर्म मनुष्य ने संचित किया है वह सब आधी अंगुल भी पृथिवी की सीमा छीन लेने से नष्ट हो जाता है।

गायों का रास्ता, गाँव की गली, श्मशान और रखाया हुआ खेत इनका बिगाड़नेवाला नरक को जाता है।

कन्या के लिए झूठ बोलने में पाँच को, गाय के लिए झूठ बोलने में दश को, घोड़े के लिए झूठ बोलने में सौ को, पुरुष के लिए झूठ बोलने में हज़ार को, सोने के लिए—पैदा हुए तथा पैदा होनेवाले—सबको और पृथिवी के लिए झूठ बोलने से झूठ बोलनेवाला सबको मारता है। अतएव पृथिवी के लिए कभी झूठ न बोलना चाहिए।

प्राण चाहे कंठ में आ जावें तो भी ब्राह्मण के धन में प्रीति न करनी चाहिए अर्थात् ब्राह्मण का धन कभी लेने की इच्छा न करनी चाहिए। किसी का धन ले लेना हलाहल विष है, जिस की कोई दवा नहीं है। बुद्धिमान् कहते हैं कि विष, विष नहीं है किन्तु किसी का धन मार लेना सबसे बढ़ कर विष है। इससे किसी का धन कभी न मारना चाहिए।

मूर्ख को दान देने का निषेध

हे इन्द्र ! जो ब्राह्मण कुलीन और ग़रीब हो, जो वेद पढ़ा हो, सन्तोषी हो, नम्र हो, सब प्राणियों की भलाई करनेवाला हो, जो वेद का अच्छी तरह से अभ्यास करता हो, तपस्वी हो और इन्द्रियों का जीतनेवाला हो, ऐसे ब्राह्मण को दिया दान अक्षय्य पुण्यवाला होता है।

मिट्टी के कच्चे बर्तन में रक्खा हुआ दूध, दही, घी और शहद जैसे बर्तन की कमज़ोरी से नष्ट हो जाता है–सूख जाता है–और वह बर्तन भी नष्ट हो जाता है–टूट जाता है–इसी प्रकार गाय, सोना, वस्त्र, अन्न, पृथिवी, तिल आदि का जो मूर्ख ब्राह्मण दान लेता है वह लकड़ी की तरह भस्म हो जाता है।

जिस पुरुष के घर में मूर्ख ब्राह्मण हो और पढ़ा लिखा कहीं दूर रहता हो तो पढ़े लिखे को ही दान दे; और ऐसा करने में मूर्ख का तिरस्कार न समझे।

जो पुरुष ज़बरदस्ती, बिना कहे पृथिवी, गाय और स्त्री को छीन लेता है उसे ब्रह्महत्या लगती है। और क्रोध से दुःखी ब्राह्मणों की प्रार्थना पर जो राजा छीन लेनेवाले को सज़ा नहीं देता उसे भी ब्रह्महत्या लगती है।

हे इन्द्र ! विवाह, दान, और यज्ञ करने के समय जो मूर्ख विघ्न करता है वह मरने के बाद कीड़ा बनता है।

दान करने से धन, और प्राणियों की रक्षा करने से जीवन

बढ़ता है और हिंसा न करनेवाला रूप, आरोग्य और ऐश्वर्य के फल भोगता है।

सब वेदों को पढ़कर मनुष्य शीघ्र ही दुःख से छूटता, पवित्र धर्म कर्म करता और स्वर्ग पाता है।

११--पाराशर-स्मृति

शास्त्र का प्रस्ताव


वदारु वृक्षों के वन में, हिमालय पर्वत के ऊपर, एकान्त स्थान में बैठे हुए व्यासजी से ऋषियों ने पूछा कि हे सत्यवती के पुत्र व्यासजी ! कलियुग में मनुष्य की भलाई करनेवाला धर्म पवित्रता और आचार हमको बताइए। ऋषियों के पूछने पर, शिष्यों के सहित अग्नि और सूर्य्य के समान बड़े तेजस्वी, श्रुति (वेद) और स्मृति (धर्म-शास्त्र) को भले प्रकार जाननेवाले व्यासजी ऋषियों से बोले कि हम सब तत्त्वों को भली भाँति नहीं जानते। हमारे पिता पराशरजी से इस विषय में पूछिए। तब धर्म जानने की इच्छा करनेवाले सब ऋषियों के साथ व्यासजी बदरीनारायण को अपने पिता के पास गये। बदरीनारायण अत्यन्त मनोहर स्थान था, जहाँ बहुत से ऋषि तपस्या किया करते थे। यह स्थान तीर्थ-स्थान होने से अब भी प्रसिद्ध है, और मनोहर है। मन्दिर अत्यन्त मनोहर बना हुआ है। बदरीनारायण में पहुँच कर, ऋषियों की सभा में सुख-पूर्वक बैठे हुए तथा बड़े बड़े प्रसिद्ध मुनीश्वर जिन के चारों ओर बैठे थे ऐसे शक्ति के पुत्र पराशर को, व्यासजी ने साथ में आये हुए ऋषियों के साथ हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा करके स्तुतियों से पूजन किया।

तब सन्तुष्ट होकर मुनिश्रेष्ठ पराशरजी व्यासजी से बोले कि तुम अपना कुशल-क्षेम कहो। व्यासजी ने कहा, हम आनन्द से आये हैं। इसके बाद व्यासजी ने कहा कि हे भक्तवत्सल! आप मेरी भक्ति को भले प्रकार जानते हैं; इसलिए हे पितः! प्रेम के साथ मुझे धर्म बतलाइए। क्योंकि आपको मेरे ऊपर अवश्य कृपा करनी चाहिए। मैंने गर्ग आदि सब ऋषि-मुनियों के बनाये धर्मशास्त्र देखे सुने हैं और आपके किये हुए वेद के अर्थ भी सुने हैं और याद हैं। मन्वन्तर तथा कृत, त्रेता आदि युगों में जो धर्म बतलाये गये थे वे सब कलियुग में नष्ट हो गये। धर्म का मर्म जाननेवाले चारों वर्णों का जो कर्त्तव्य हो उसको कहिए। हे धर्म का स्वरूप जाननेवाले! सूक्ष्म और स्थूल आचार को विस्तारपूर्वक बतलाइए। तब पराशरजी ने धर्म के विषय में कहा—

कृतयुगादि में धर्मशक्ति कम हो जाती है

वेद का बनानेवाला कोई नहीं है अर्थात् वेद अपौरुषेय हैं।

सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में मनुष्य का धर्म भिन्न भिन्न हो जाता अर्थात् बदलता रहता है। युग के अनुसार कलियुग में भी दूसरा धर्म हो जाता है।

सत्ययुग में तप, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में एक दान को ही लोग मुख्य कहते हैं अर्थात्—तप, ज्ञान, यज्ञ और दान ये धर्म के चार पैर माने गये हैं। उनमें सत्ययुगी तप

को, त्रेतायुगी ज्ञान को, द्वापरयुगी यज्ञ को और कलियुगी धर्मात्मा मनुष्य दान को ही मुख्य कर्त्तव्य कर्म मानते हैं।

सत्ययुग में मनु के कहे हुए, त्रेता में गौतम के कहे हुए, तथा द्वापर में शङ्ख और लिखित के एवं कलियुग में पराशर के कहे हुए धर्म विशेष माने या बर्त्ताव में लाये जा सकते हैं।

सत्ययुग में धर्म-हीन देश को, त्रेता में धर्म-विरोधी गाँव को, द्वापर में धर्म-विरोधी कुल को और कलियुग में अधर्म करनेवाले को त्याग देना चाहिए। और सत्ययुग में अधर्मी के साथ बातचीत करने से, त्रेता में उसे देखने से, द्वापर में उस अधर्मी का अन्न लेकर और कलियुग में बुरा कर्म करने से मनुष्य पतित हो जाता है।

सत्ययुग में धर्मात्मा ब्राह्मण के पास जाकर, त्रेता में ब्राह्मण को अपने घर पर बुला कर, द्वापर में माँगने पर और कलियुग में जो सेवा करता है उसी को लोग दान देते हैं। दान के ये ही चार प्रकार—दर्जे—माने गये हैं।

सत्ययुग में विद्वान् ब्राह्मण के पास जाकर दान देना सर्वोत्तम है। पास जाकर दिया हुआ दान उत्तम है। अपने पास बुलाकर दिया हुआ दान मध्यम है और सेवक को जो दान दिया जाता है वह निष्फल है। इससे कोई विशेष लाभ नहीं होता।

कलियुग में अधर्म से धर्म, झूठ से सत्य, चोरों से राजा और स्त्रियों से पुरुष जीत लिये जाते हैं, अर्थात् दब जाते हैं। अग्निहोत्र बन्द हो जाते और गुरु की पूजा नष्ट हो जाती है। कुमारी कन्याओं के सन्तान होने लगती है।

ब्राह्मणादि का सदाचार आदि धर्म

चारों वर्णों का जो आचार बतलाया गया है वही धर्म का रक्षक है। उसी के अनुसार प्रत्येक वर्ण को अपना अपना नित्य प्रति बर्त्ताव करना चाहिए। जो आचार-रहित होते हैं उन से धर्म भी पराङ्मुख होता—पीठ फेर लेता—है।

जो छः कर्मों में नित्य लगे रहते हैं और देवों तथा अतिथि का पूजन करते हैं और हवन करके भोजन किया करते हैं वे ब्राह्मण कभी दुःखी नहीं होते।

स्नान करके सन्ध्या, जप, हवन, विधिपूर्वक वेदों का पढ़ना, देवों का पूजन, अतिथि की सेवा और वैश्वदेव ये छः कर्म मनुष्य को प्रति दिन करने चाहिएँ।

प्यारा हो या शत्रु, मूर्ख हो या पण्डित, जो कोई भी वैश्वदेव के समय आजाय तो अतिथि समझ कर उसका अच्छी तरह सत्कार करे। उस सत्कार से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है।

जो दूर से चल कर आया हो, थक गया हो और वैश्वदेव के समय आया हो तो उसी को अतिथि समझना चाहिए। जो पहले से आकर ठहरा हुआ हो उसको अतिथि न समझना चाहिए।

एक गाँव में रहनेवाले तथा मेली पुरुष को अतिथि कभी न समझना चाहिए। जो सदा न आता हो वही अतिथि माना गया है।

वैश्वदेव के समय आये हुए अतिथि का स्वागत आदि से

सत्कार करे। उसके बैठने को अच्छा आसन तथा हाथ-पैर धोने को पानी और श्रद्धापूर्वक अन्न दे, प्रिय बोले, अच्छी अच्छी बातें करे और जाने के समय पीछे पीछे चल कर कुछ दूर तक पहुँचा आवे।

जिस के घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है विद्वान् उसके घर जाना पसन्द नहीं करते। जिसके घर से अतिथि निराश होकर—बिना सत्कार पाये—लौट जाता है उसका बड़े बड़े यज्ञ करना भी व्यर्थ है।

अच्छे खेत में बीज बोना चाहिए और सुपात्र को दान देना चाहिए। क्योंकि अच्छे खेत में बोया हुआ बीज तथा सुपात्र को दिया हुआ दान कभी नष्ट नहीं होता।

अपने मन में अतिथि को देवता समझना चाहिए। क्योंकि अतिथि देवताओं का रूप माना गया है।

अच्छे व्रत, नियम और आचार-विचार करनेवाला ब्राह्मण, तथा इसी प्रकार का अतिथि और प्रति दिन जो वेद को पढ़ता है ये तीन यदि रोज़ रोज़ आवें तो भी नवीन ही समझे जाते हैं।

वैश्वदेव करने के समय यदि भिक्षुक घर पर आ जाय तो वैश्वदेव के वास्ते अन्न अलग निकाल कर उसको भिक्षा देकर चलता कर दे।

संन्यासी और ब्रह्मचारी दोनों, बनी बनाई रसोई के अधिकारी माने गये हैं। इन दोनों को, वक़्त पर आजाने पर,

जो भोजन न करा के स्वयं भोजन कर लेता है वह चान्द्रायण व्रत करने का प्रायश्चित्तीय हो जाता है।

संन्यासी और ब्रह्मचारी को भिक्षा अवश्य देनी चाहिए। वैश्वदेव के भूल जाने के दोष को भिक्षुक दूर कर सकता है पर भिक्षुक के लौट जाने से हुए पाप को वैश्वदेव दूर नहीं कर सकता। अर्थात् भिक्षुक को भिक्षा अवश्य देनी चाहिए।

द्विजों में जो पुरुष वैश्वदेव किये ही बिना भोजन कर लेते हैं उनका जीवन निष्फल है, और अन्ततः वे नरक भोगते हैं।

जो वैश्वदेव करके अतिथि का भी सत्कार नहीं करता वह नरक भोगता तथा कौए की योनि पाता है।

शिर में पगड़ी बाँध कर, दक्षिण दिशा की ओर मुँह करके और बाँयें पैर पर हाथ रख कर भोजन करना मना है।

संन्यासी को सोना, ब्रह्मचारी को पान और चोरों को अभय (निडर) दान देनेवाला नरक भोगता है।

चोर हो या चाण्डाल हो और चाहे अपना शत्रु ही हो तो भी वैश्वदेव के समय घर पर आये हुए का सत्कार करना पुण्य फल का देनेवाला होता है।

समस्त वेदों के जाननेवाले अतिथि का जो ब्राह्मण सत्कार नहीं करता, वह अतिथि को न दिये हुए अन्न-जल को खा कर पाप का भागी होता है।

जिस गाँव में, व्रतों को न करनेवाले तथा वेद को न पढ़े हुए ब्राह्मण भिक्षा माँगते हैं, उस गाँव को राजा दण्ड दे, क्योंकि वह गाँव मानों चोरों को भाग देता है।

क्रोधी मनुष्य की नाईं शस्त्र हाथ में लिये हुए, प्रजा की रक्षा करता हुआ, क्षत्रिय शत्रुओं की सेनाओं को जीत कर, धर्मानुसार प्रजा का पालन करे। क्योंकि लक्ष्मी कुलपरम्परा से नहीं आती और ज़ेवरों से भी नहीं जानी जाती। अपने शस्त्र-बल से शत्रुओं को दबा कर पृथिवी का भोग करे। क्योंकि पृथिवी शूर-वीरों के भोगने योग्य बनाई गई है।

राजा को चाहिए कि जैसे माली बग़ीचे के वृक्षों की रक्षा करता हुआ फूल ही तोड़ता है, वैसे ही राजा भी प्रजा की रक्षा करता हुआ उससे धनादि पदार्थ लिया करे। किन्तु कोयला बनानेवाला जिस प्रकार वृक्षों को जड़ से काट डालता है वैसे प्रजा की जड़ न उखाड़ डाले—उसे बिगाड़ न दे।

लाभ का काम करना, रत्न आदि की परीक्षा करना, वाणिज्य-व्यापार करना, गायों की अच्छी रक्षा रखना और खेती करना यह वैश्य की वृत्ति है।

शूद्रों का परम धर्म द्विजों की सेवा करना है। इससे भिन्न जो कुछ शूद्र करता है वह निष्फल है।

नमक, शहद, तेल, दही, दूध मट्ठा, घी ये चीज़ें शूद्र से दूषित नहीं हो जातीं। इनको शूद्र सब जातियों में बेंच सकता है।

मदिरा और मांस को बेचने से, अभक्ष्य भक्षण करने से और गमन करने के अयोग्य स्त्री के साथ गमन करने से शूद्र उसी समय पतित हो जाता है।

खेती करने का विशेष विचार

अपने छः कर्मों को करता हुआ ब्राह्मण खेती भी कर सकता है। ब्राह्मण भूखे, प्यासे, थके और अङ्गहीन बैलों को खेती के काम में न लगावे।

तिल और छः रस ब्राह्मण को न बेंचना चाहिए।

जल्लाद, मछलियों को मारनेवाला, हिरणादि को मारनेवाला, चिड़ीमार, और जो दान न दे और खेती करता हो तो ये पाँचों एक ही तरह के पापी माने गये हैं।

ओखली, चक्की, चूल्हा, जल का घड़ा और बुहारी ये पाँच हत्यायें गृहस्थ को रोज़ रोज़ लगती हैं। वैश्वदेव (देवयज्ञ), बलि (भूतयज्ञ), भिक्षा देना, गाय को ग्रास, और हन्तकार नाम अतिथि-यज्ञ, इन पाँच यज्ञों को जो प्रति दिन करता है उसको ऊपर लिखी पाँच हत्यायें नहीं लगतीं।

वृक्षों के काटने, पृथ्वी के खोदने, कृमि और कीड़ों के मारने से जो पाप खेती करनेवाले को लगता है वह यज्ञ करने से छूट जाता है।

जिसकी अन्न की राशि तैयार होगई हो और वह पास आये हुए भिक्षुक को भिक्षा न दे तो पाप का भागी होता है।

जो छठा भाग राजा को, इक्कीसवाँ भाग देवताओं को और तीसवाँ भाग परोपकार में ख़र्च करता है वह खेती के दोष से लिप्त नहीं होता।

क्षत्रिय भी खेती करे तो देवता और ब्राह्मणों की पूजा करे।

इसी तरह वैश्य और शूद्र भी खेती, वाणिज्य-व्यापार और कारीगरी करें; पर शूद्र का विशेष धर्म यही है कि वह द्विजों की सेवा को ही परम धर्म समझे।

जन्म-मरण की शुद्धि

जन्म-सूतक में ब्राह्मण दश दिन में, क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य पन्द्रह दिन में और शूद्र एक महीने में शुद्ध होते हैं।

बकरी, गाय, भैंस, नवसूतिका (जिसके प्रथम ही सन्तान हुई हो) ब्राह्मणी और पृथिवी पर ठहरा हुआ जल—ये दश दिन में शुद्ध होते हैं।

जो पिता के अंश के भागी हैं, अर्थात् एक ही माँ-बाप की सन्तान हों और रहते अलग अलग हों तो, उन सबको जन्म और मरण का सूतक एक सा लगता है।

दोनों प्रकार के सूतकों में सूतकवालों का अन्न दश दिन तक नहीं खाना चाहिए। सूतक में न दान देना चाहिए और न लेना चाहिए, ब्रह्मयज्ञ और हवन भी नहीं करना चाहिए।

एक गोत्रवालों में चौथी पीढ़ी तक ही सूतक होता है। क्योंकि अपने वंश का पाँचवाँ पुरुष बाँट हो जाने से पृथक् हो जाता है।

चौथी पीढ़ी तक दस दिन, पाँचवीं पीढ़ी में छः दिन, छठी पीढ़ी में चार दिन और सातवीं पीढ़ी में तीन दिन में शुद्धि होती है।

सींगवाले पशुओं या अग्नि से मरने में, या दूसरे देश में

मरने से, बालक के मरने में और अपने परिवार के संन्यासी के मरने में उसी समय शुद्धि हो जाती है।

दस दिन बीत जाने पर परदेश में सगोत्री का मरना सुने तो तत्काल ही मय कपड़ों के स्नान करने से शुद्धि मानी गई है। और डेढ़ महीने के बाद सुनने पर तीन दिन में, छः महीने में सुने तो एक दिन-रात में और एक वर्ष के बीत जाने पर मृत्यु सुने तो तत्काल ही शुद्धि हो जाती है।

यदि दूर देश में अकाल-मृत्यु हो जाय और मरने की तिथि मालूम न हो तो कृष्ण-पक्ष में अष्टमी, अमावास्या और एकादशी को शुद्धि का कृत्य करना चाहिए।

जो बच्चा दाँतों के निकलने से पहले या पैदा होते ही मर गया हो तो उसका अग्नि-दाह और अशौच आदि कुछ भी न करना चाहिए।

यदि बच्चा गर्भ में ही मर जाय या गर्भ गिर गया हो तो जितने महीने का गर्भ हो उतने ही दिन सूतक मानना चाहिए।

चार महीने के गिरनेवाले गर्भ का नाम स्राव है। पाँच और छः महीने के बाद गिरे तो उसको गर्भ-पात कहते हैं। इसके आगे प्रसूति होती है। प्रसूति का सूतक दस दिन का होता है।

स्त्रियों के प्रसव-समय में यदि जीती हुई सन्तान पैदा हो तो चार पीढ़ी तक के गोत्रवालों को अशौच लगता है और मरी हुई सन्तान पैदा हो तो सिर्फ़ माता को अशुद्धि लगती है।

यदि रात में मरी हुई सन्तान पैदा हो तो सूर्य्य का उदय होने के पहले बीते हुए दिन से ही गणना करनी चाहिए।

दाँतों के निकलने से पहले जो बच्चा मर जाय तो उसी समय और चूड़ाकर्म से पहले मरे तो एक दिन रात और यज्ञोपवीत से पहले मरे तो तीन दिन का अशौच होता है। इससे आगे दस दिन का होता है।

जीती हुई सन्तान पैदा होकर मर जाय तो दस दिन और मरी हुई पैदा हो तो तत्काल शुद्धि होती है। चूड़ाकर्म से पहले कन्या मरे तो तत्काल, सगाई होने के पहले मरे तो एक दिन-रात और वाग्दान होने पर सप्तपदी से पहले मरे तो पितृगोत्र-वालों को तीन दिन-रात की शुद्धि माननी चाहिए।

जिनके घर में हवन करता हुआ ब्रह्मचारी रहता हो और वह मर जाय तो जिन लोगों ने उसको छुआ नहीं है उनको सूतक नहीं लगता।

मुर्दे का अशौच सात पीढ़ी तक सबको और जन्मसूतक माता-पिता को ही लगता है और इन दोनों में माता ही विशेष कर अशुद्ध होती है। पिता तो नहाने के बाद शुद्ध हो जाता है।

जो अपना गोत्री और कुटुम्बी न हो तो उसके साथ श्मशान-भूमि में जाकर ब्राह्मण, मुर्दे का दाह हो जाने पर, नहाने के बाद प्राणायाम करने से शुद्ध हो जाता है।

स्त्री-पुरुषों का धर्म

जो स्त्री पतित न हुई हो और निर्दोष हो उस को जो पुरुष जवानी की उम्र में छोड़ देता है वह सात जन्म तक स्त्री की योनि में जन्म लेता है। उस रूप में वह बार बार विधवा होती है।

अपना पति दरिद्री, रोगी या मूर्ख ही हो तो भी जो स्त्री उसका अपमान करती है, वह मरने के बाद साँपिन बनती है और बार बार विधवा होती है।

पति के जीते हुए जो स्त्री उपवास तथा व्रत करती है वह मानों अपने पति की उम्र घटाती है और आप नरक में जाती है।

मनुजी ने बतलाया है कि जो स्त्री अपने पति से पूछे बिना व्रत करती है वह सब राक्षसों को मिलता है।

जो स्त्री अपने सजातीय बांधवों के साथ दुष्ट आचरण या गर्भपात करती हो उसके साथ पति कभी न बोले।

ब्रह्महत्या में जितना पाप है उससे दूना गर्भ के गिराने में है। गर्भ गिरानेवाली स्त्री का प्रायश्चित्त कुछ भी नहीं है, किन्तु पति को चाहिए कि वह उसको छोड़ दे।

उस गर्भपात करनेवाली स्त्री को छोड़ देने से श्रौत-स्मार्त्त अग्निहोत्र छूट जाय तो कुछ चिन्ता न करे; किन्तु उस स्त्री के साथ अग्निहोत्र करनेवाला, धर्म का विरोधी होने से, चाण्डाल माना जायगा।

विद्वानों की सभा का विचार

पाप करनेवाले को यदि जल्दी ही पाप का निश्चय हो जाय तो प्रायश्चित्त के लिए विद्वानों की सभा में हाज़िर हुए बिना भोजन न करे। जहाँ सभा बनी हुई न हो वहाँ पर भी, जो पहले भोजन कर लेता है वह मानो पाप को बढ़ाता है। यदि सन्देह हो कि मेरा यह काम पाप योग्य है या नहीं, तो निश्चय

होने के समय तक भोजन न करे और अपराध का निश्चय करने में भूल न करे, किन्तु जिस तरह सन्देह मिट सके वैसा ही करना चाहिए। किये हुए पाप को कभी छिपाना न चाहिए, क्योंकि छिपाया हुआ पाप अधिक बढ़ता है। पाप-कर्म छोटा हो वा बड़ा, धर्म के जाननेवालों के सामने निवेदन कर दे और उसका प्रायश्चित्त पूछे। क्योंकि वे विद्वान् लोग ही पाप करने-वाले रोगियों के वैद्य—दवा करनेवाले यानी पापों का नाश करनेवाले हैं।

प्रायश्चित्त के समय लज्जायुक्त, सत्य धर्म में तत्पर और बारम्वार नम्रता को धारण करनेवाला मनुष्य शुद्धि को प्राप्त होता है।

चुपचाप, मय कपड़ों के स्नान करके, गीले कपड़े पहने हुए, सावधान हो कर धर्म की सभा—न्यायालय—में जाना चाहिए।

जो सन्ध्या आदि शुभ कर्म नियम के साथ न करते हों, जो वेद-मन्त्रों को न जानते हों और जो नाममात्र के ब्राह्मण हों ऐसे चाहे हज़ारों ही इकट्ठे हों तो भी वह धर्म की सभा नहीं समझनी चाहिए।

धर्म का मर्म न जाननेवाले अज्ञानी मूर्ख ब्राह्मण जो प्राय-श्चित्त आदि बतलाते हों तो वह पाप सौगुना हो कर उन धर्म की व्यवस्था करनेवालों को प्राप्त होता है।

जो धर्म-शास्त्रों को न जान कर प्रायश्चित्त कराता है तो वह

पापी तो पवित्र हो जाता है पर उस प्रायश्चित्ती का पाप प्रायश्चित्त करानेवाले को लगता है।

वेदों को अच्छी तरह जाननेवाले जो बतलावें वही धर्म समझना चाहिए और दूसरे हज़ार भी बतलावें तो भी न मानना चाहिए।

प्रमाण के मार्ग को खोजते हुए जो विद्वान् धर्म की व्यवस्था बतलाते हैं उन सत्य कहनेवालों से पाप दूर भागता है।

जिस प्रकार पत्थर पर पड़ा हुआ पानी हवा और सूर्य्य के तेज से शुद्ध हो जाता है इसी प्रकार धर्म-सभा की आज्ञा से किये हुए प्रायश्चित्त से उस पापी का पाप भी नष्ट हो जाता है।

वह पाप न तो करनेवाले पर रहता और न सभा पर जाता किन्तु हवा और सूर्य्य के मेल से पत्थर पर पड़े हुए जल की नाईं नष्ट हो जाता है।

जिसमें वेद के जाननेवाले, अग्निहोत्री, चार या तीन तक भी हों तो उसको परिषत्—धर्मसभा—कहते हैं। अथवा जो अग्निहोत्री न हों किन्तु वेदवेदाङ्गों का तत्त्व भले प्रकार समझते-बूझते हों ऐसे तीन वा पाँच विद्वानों की भी परिषत् हो सकती है।

कुछ न बोलनेवाला, मौनव्रत रखनेवाला, बहुत कम बोलनेवाला, तपस्वी, मुनि, आत्मविद्या—वेदान्तविद्या—का जाननेवाला, द्विजों को यज्ञ करानेवाला और वेद में बतलाये हुए नियमों को ब्रह्मचर्य्य द्वारा समाप्त करके जिसने समावर्त्तन किया हो ऐसे एक विद्वान् की भी परिषत् हो सकती है। ऐसे

विद्वानों के सिवा, जो ब्राह्मण केवल नाम धारण करनेवाले हैं वे चाहे हज़ार गुने हों तो भी उनकी धर्मसभा नहीं हो सकती।

जिस प्रकार काठ का हाथी, हाथी और चाम का नक़ली हिरन, हिरन नहीं कहा जा सकता। उसी प्रकार जो वेद को बिना पढ़े लिखे ब्राह्मण हैं, वे सिर्फ़ नाम धारण करनेवाले हैं।

जिस प्रकार निर्जन (जिसमें कोई मनुष्य न रहता हो) गाँव, जल के बिना कुआँ—अँधेरा, और जिस प्रकार बिना आग के राख में होम करना है वैसे ही वेद का न जाननेवाला ब्राह्मण भी शून्य मात्र है।

जिस प्रकार नपुंसक और बाँझ गाय वृथा हैं और जिस प्रकार मूर्ख ब्राह्मण को दान देना वृथा है इसी प्रकार वेदहीन ब्राह्मण भी वृथा है।

जिस प्रकार तसवीर बनानेवालों की चित्रकारी अनेक प्रकार के रङ्गों से धीरे धीरे अत्यन्त शोभायमान, चमकीली होती जाती है, इसी प्रकार मन्त्रों के द्वारा किये गये अनेक संस्कारों से ब्राह्मणपन भी उज्ज्वल—प्रकाशमान—हो जाता है।

विद्या और तप से रहित जो नामधारी ब्राह्मण प्रायश्चित्त कराते हैं वे सब पापों के करनेवाले हैं और अन्त में नरक भोगते हैं।

जो ब्राह्मण वेद पढ़े हुए हैं और जो नियमपूर्वक पाँचों महायज्ञ करते हैं वे ही सच्चे ब्राह्मण हैं।

गायत्री से रहित ब्राह्मण शूद्र से भी अधिक अशुद्ध होता

है और गायत्रीरूप वेद का तत्त्व जाननेवाले ब्राह्मण की लोग पूजा करते हैं।

चारों वेदों को जाननेवाले चार विद्वान्, एक न्याय का जाननेवाला नैयायिक, एक वेदाङ्गों का जाननेवाला, एक धर्म-शास्त्रों का जाननेवाला और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ इन तीनों आश्रमोंवाले मुखिया, इन धर्मज्ञ विद्वानों की धर्मसभा कहाती है।

धर्मसभा का यह कर्त्तव्य है कि वह राजसभा की आज्ञा लेकर किसी प्रायश्चित्त आदि की धर्म-व्यवस्था करे। और यदि किसी का छोटा ही क़सूर हो और प्रायश्चित्त भी मामूली ही हो तो राजा की बिना आज्ञा लिये भी पण्डित-सभा निश्चय कर सकती है।

अगर विद्वानों का उल्लङ्घन करके राजा स्वयं प्रायश्चित्तीय पाप का फ़ैसला करना चाहे तो वह पाप सौ गुना होकर राजा को लगता है।

प्रायश्चित्त किसी अच्छे प्रतिष्ठित देव-मन्दिर आदि स्थान पर करना चाहिए। प्रायश्चित्त करानेवाला विद्वान् भी अपना कृच्छ्र व्रत—प्रायश्चित्त—करके वेद की माता गायत्री का जप करे।

प्रायश्चित्त करनेवाला मय चोटी के बालों का मुण्डन करा के तीन समय स्नान करे। रात को गायों के बीच गोशाला में रहा करे और दिन में चरने के वास्ते जङ्गल में जानेवाली गायों के पीछे पीछे जङ्गल में घूमा करे।

अत्यन्त गरमी के समय में, वर्षा में, शीतकाल में और ज़ोर

की आँधी में अपने बचने का उपाय तब करना चाहिए जब पहले अपनी शक्ति भर गायों की रक्षा कर ले।

अपने घर में या दूसरे के घर में, खेत में या खलिहान में खाती हुई गाय को न तो ख़ुद हटावे और न दूसरे मनुष्य से हटाने के लिए कहे और दूध पीते हुए बछड़े को भी किसी को न बतावे।

गाय के जल पीने पर स्वयं जल पीवे, उसके बैठने पर स्वयं बैठे और गड्ढा वग़ैरह में गिरी पड़ी या कीचड़ में फँसी हुई गाय को अपनी ताक़त भर उठावे और निकाले।

जो मनुष्य ब्राह्मणों और गायों की रक्षा करने के लिए प्रयत्न करता—तकलीफ़ सहता है वह महा पापों से छूट जाता है।

प्रायश्चित्ती को जूता और छाता धारण न करना चाहिए। वह जङ्गल में रह कर नदी आदि में स्नान किया करे और निर्वाह के लिए गाँव में आकर भिक्षा माँगा करे। भिक्षा माँगने के समय अपना पाप अच्छी तरह ज़ाहिर करना चाहिए।

भक्ष्याभक्ष्य-विचार

ब्यानी हुई गाय का दस दिन के पहले दूध न पीना चाहिए। जो पीता है वह, और सफ़ेद लहसुन, बेगन, गाजर, प्याज़, वृक्षों का गोंद, देव-धन, कठफूल, ऊँटनी का दूध, भेड़ का दूध, इन चीज़ों को जिस ब्राह्मण ने बिना जाने खा पी लिया हो तो वह तीन उपवास करने और पञ्चगव्य के पीने से शुद्ध होता है।

जो क्षत्रिय और वैश्य बाहरी और भीतरी सब प्रकार की शुद्धि नियमपूर्वक रखते हुए सन्ध्या और पञ्चमहायज्ञ आदि ठीक ठीक करते हों तो उनके घर में देव-पितर-सम्बन्धी कामों के समय ब्राह्मणों को सदा भोजन करना चाहिए।

घी, दूध, तैल और गुड़ की पकाई हुई चीज़ें पवित्र शूद्र के घर की भी ब्राह्मण खा सकता है।

जो मद्य मांस खानेवाला और नीच कर्मों का करने कराने वाला शूद्र हो तो उसको चाण्डाल के समान नीच समझ कर ब्राह्मण दूर से त्याग दे।

जो मद्य मांस न खाते हों, द्विजों की सेवा करते हों और जो अपने कर्त्तव्य कर्म में लगे हुए हों ऐसे शूद्रों को कभी न छोड़ना चाहिए।

१२—व्यास-स्मृति

शास्त्र का प्रस्ताव

काशी में सुख-पूर्वक बैठे हुए तपस्वी वेदव्यासजी के पास जाकर मुनियों ने वर्णव्यवस्था-सम्बन्धी धर्म पूछे। मुनियों के पूछने पर बुद्धिमान् वेदव्यासजी ने वेदार्थ-गर्भित धर्मशास्त्र का स्मरण करके और प्रसन्न होकर कहा—

जिस विषय में श्रुति, स्मृति और पुराण का आपस में विरोध दिखलाई पड़े वहाँ वेद का प्रमाण ठीक समझना चाहिए। स्मृति और पुराण में विरोध होने पर स्मृति को उत्तम मानना चाहिए— स्मृति में बतलाया हुआ कर्म करना चाहिए।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों वर्ण द्विजाति कहाते हैं। विशेष कर यही तीनों वर्ण वेद, स्मृति और पुराणा में बतलाये हुए धर्म कर्म को भले प्रकार कर सकते हैं।

सोलह संस्कार

संस्कार सोलह होते हैं। वे ये हैं—१—गर्भाधान, २—पुंसवन, ३—सीमन्त, ४—जातकर्म, ५—नामकरण, ६—निष्क्रमण, ७—अन्नप्राशन, ८—मुण्डन, ९—कर्णवेध, १०—यज्ञोपवीत, ११—वेदारम्भ, १२—केशान्त, १३—समावर्तन, १४—विवाह, १५—आवसथ्याधान, १६—गार्हपत्य, आहवनीय

और दक्षिणाग्नि इन तीनों श्रौत अग्नियों का स्थापन। ये सोलह संस्कार कहाते हैं। कर्णवेध तक जो नौ संस्कार हैं वे कन्या के बिना मन्त्र होते हैं। विवाह कन्या का भी मन्त्रों से ही हुआ करता है। कर्णवेध तक नौ और एक विवाह ये दश संस्कार शूद्रों के, बिना वेद-मन्त्रों के होने चाहिएँ।

गर्भाधान पहले गर्भस्थापन के समय होता है। जब गर्भ तीन महीने का हो जावे तब पुंसवन-संस्कार करना चाहिए। आठवें महीने में सीमन्तोन्नयन संस्कार करे। संतान के पैदा होने पर जात-कर्म, और ग्यारहवें दिन नामकरण करे। चौथे महीने में निष्क्रमण करे अर्थात् घर से बाहर बच्चे को निकाले। छठे महीने अन्न-प्राशन और मुण्डन कुल की रीति के अनुसार करने चाहिएँ। मुण्डन हो जाने के बाद बच्चे का कर्ण-वेध (कनछेदन) संस्कार करना चाहिए। गर्भ से लेकर आठवें वर्ष में ब्राह्मण का, ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय का और बारहवें वर्ष में वैश्य के बच्चे का यज्ञोपवीत (जनेऊ) संस्कार हो जाना चाहिए।

तीनों वर्णों के यज्ञोपवीत का जो समय बतलाया गया है उससे दूने से अधिक समय बीत जावे और संस्कार न हुआ हो तो वे तीनों वर्ण के बालक वेद के व्रत से पतित 'व्रात्य' हो जाते हैं। तब उनको व्रात्यस्तोम प्रायश्चित्त करना चाहिए।

द्विजातियों के दो जन्म माने गये हैं। उनमें पहला माता से और दूसरा जन्म गुरु से। गुरु से, वेदों की माता गायत्री को विधिपूर्वक ग्रहण करने से होता है।

इस प्रकार संस्कारों के होने पर मनुष्य द्विजत्व को प्राप्त

होता है और दुराचारादि दोषों से निवृत्त हो कर श्रुति-स्मृति के पढ़ने योग्य बनता है।

ब्रह्मचारी के नियत धर्म

यज्ञोपवीत हो जाने पर गुरु-कुल में सावधान हो कर बालक को रहना चाहिए। दण्ड, कौपीन, जनेऊ, मृगछाला और मेखला-करधनी—ये सब शास्त्रों में बतलाये हुए ब्रह्मचर्य्य के चिह्न हैं। इनको सदा धारण करना चाहिए।

फिर अच्छे दिन— अच्छे मुहूर्त्त में—गुरुजी की आज्ञा लेकर, मन्त्रों से समिदाधान कर तथा ओङ्कार और गायत्री को याद करके गुरु से अपना वेद पढ़ना शुरू करे।

द्विज ब्रह्मचारी शौच तथा आचार को अच्छी तरह जानने के लिए गुरु से धर्मशास्त्र पढ़े और धर्मशास्त्र में बतलाये हुए कर्म को गुरु की आज्ञा के अनुसार भले प्रकार किया करे। फिर अपने पूज्य वृद्धों को नमस्कार करके गुरु का सहारा ले और वेद पढ़ने के लिए होशियारी से गुरु के हित का बर्त्ताव करना चाहिए।

बुराई करने पर भी गुरु के सामने न बोले और गुरु के धमकाने पर भी कहीं चला न जावे।

किसी के साथ द्रोह करना, दूसरों की चुग़ली करना, हिंसा अर्थात् दूसरों को सताना, सूर्य्य को बिना मतलब देखना, तौर्यत्रिक (गाना, बजाना, नाचना), झूठ बोलना, उन्माद करना, दूसरों की बुराई करना, ज़ेवर पहनना, अञ्जन लगाना, उबटन करना, शीशा देखना, पुष्प-माला पहनना, चन्दन आदि सुगन्धित

चीज़ों का लगाना, स्त्री का स्मरण करना, देखना और छूना आदि, वृथा इधर उधर घूमना, और लालच करना—इनको, ब्रह्मचारी छोड़ दे। जब दोपहर हो तब गुरु की आज्ञा लेकर आप ही चञ्चलता को छोड़ कर, जिनके उत्तम आचरण हों और वेदाध्ययन होता हो और जो पञ्चमहायज्ञादि शुभ कर्म करते हों ऐसे उत्तम ब्राह्मण आदि द्विजों के घर से ब्रह्मचारी भिक्षा माँग कर लावे। लाई हुई भिक्षा का प्राप्त वस्तु के समान संस्कार करे। फिर दोपहर का कृत्य करके गुरु की आज्ञा लेकर विधि-पूर्वक भोजन करे और एक घर की भिक्षा का अन्न और उच्छिष्ट—बचा हुआ अन्न—कभी न खावे। यदि खा ले तो आचमन करना चाहिए।

नियम में रहता हुआ ब्रह्मचारी भिक्षा में भोजन के सिवा, धनादि पदार्थ, किसी के आदर या आग्रहपूर्वक देने पर भी स्वीकार न करे। और शुद्ध पुरुष के घर पर न्योता देने पर भी विना गुरु की आज्ञा के कभी भोजन न करे।

यदि ब्रह्मचर्य्य के सब नियम ब्रह्मचारी ठीक ठीक करता हो और किसी प्रकार की बाधा न होती हो तो एक शुद्ध गृहस्थ के घर भी भोजन कर सकता है।

रोज़ विधि-पूर्वक अग्निहोत्र आदि काम करके गुरु की सेवा करनी चाहिए और गुरु को नमस्कार करके उनकी आज्ञा लेकर सोना चाहिए।

इस तरह रोज़ अभ्यास करता हुआ ब्रह्मचारी व्रतों को करे और सदा दूसरे के हित की बात और प्यारी वाणी बोले।

जो ब्रह्मचारी विधि-पूर्वक वेदों को पढ़ता है वह मानों दूध, अमृत, मधु और घी से देवताओं को प्रसन्न करता है। इसलिए अनध्याय (छुट्टी) का दिन छोड़ कर अच्छी तरह वेद को पढ़े और गुरु की आज्ञा का पालन करता हुआ वेद के अङ्ग व्याकरण आदि अनध्याय के दिनों में भी पढ़ सकता है।

नियमों में व्यतिक्रम होने से वेद का पढ़ना ठीक नहीं हो सकता। इसलिए अहङ्कार छोड़ कर ऐसा बर्ताव करे कि नियम खण्डित न हो। नियम अच्छी तरह निभाने से ब्रह्मचारी को इस लोक और परलोक में अभीष्ट सुख की प्राप्ति होती है।

जो यज्ञोपवीत संस्कार से लेकर मरने तक इन व्रतों को करता रहता है वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्रह्म-सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होता है।

ग्रन्थों में कहे हुए केशान्त संस्कार तक व्रत करके परोपकार की इच्छा से गृहस्थाश्रम की इच्छा करता हुआ द्विज, तीनों वेदों को, वा दो वेदों को, या एक वेद को जल्दी समाप्त करके, गुरु को दक्षिणा आदि से सन्तुष्ट करके उन की आज्ञा से, विधि पूर्वक समावर्तन-संस्कार करे।

गृहस्थ के विवाह आदि धर्म

दूसरे आश्रम—गृहस्थाश्रम—की इच्छा से इस प्रकार स्नातक रूप को प्राप्त हुआ द्विज शुद्ध वंश में पैदा हुई कन्या को विवाह के लिए खोजे।

विवाह ऐसी कन्या के साथ करना चाहिए जिसके कुष्ठ वग़ैरह

कोई बड़ा असाध्य या कष्टसाध्य रोग न हो, जो बुरे कुल की न हो, जिसका बाप बिना धन लिये विवाह करना चाहता हो; जो अपने वर्ण की तो हो, पर अपने प्रवर की न हो तथा अपने माता-पिता के गोत्र की न हो; जिसका पहले किसी पुरुष के साथ विवाह न हुआ हो, जो अधिक मोटी न हो, शुभ लक्षणोंवाली हो, रूपवती हो, और जिसके कुल में पूर्वज विख्यात और कुलीन हों।

पुत्र का कुल भी अच्छे प्रकार प्रतिष्ठित हो और लड़की अच्छे आचरणवाले पुरुष की हो; और जो अपनी कन्या का विवाह करना चाहता हो तो धर्मानुसार शास्त्र की विधि से विवाह करदे।

ब्राह्म-विवाह की विधि से विवाह करना चाहिए। और अगर ब्राह्म-विवाह न हो सकता हो तो दैव आदि विवाहों की विधि से विवाह करना चाहिए।

पिता, पितामह, भाई, चाचा, कुटुम्ब के मनुष्य और माता इनमें से पहले पहल के न होने पर अगला अगला कन्या का विवाह कर दे। यदि इनमें से कोई भी न हो तो कन्या आप ही योग्य पति के साथ विवाह कर ले।

'मैं तुमको दूँगा' और 'मैं उसको ग्रहण करूँगा' इस प्रकार विवाह के समय की परस्पर प्रतिज्ञा करके वर और कन्या का देनेवाला यदि प्रतिज्ञा पूरी न करे तो वह राजदण्ड का भागी होता है।

जो स्त्री दूषित न हो उसको त्यागनेवाला, निर्दोष कन्या को दोष लगानेवाला, ये दोनों ही राजदण्ड के भागी होते हैं।

स्त्री और पुरुष मिल के यह एक ही शरीर पहले था और अब है, जिसको ब्रह्माजी ने स्त्री, पुरुष-रूप दो भागों में बाँटा है। वेद में अच्छी तरह लिखा है कि आधे शरीर से पति और आधे से स्त्री हुई है। इसलिए जब तक पुरुष स्त्री के साथ विवाह नहीं करता तब तक वह आधा ही रहता है। इसीलिए स्त्री अर्द्धाङ्गिनी कहाती है।

वेद में लिखा है कि पुरुष को सन्तानोत्पत्ति करनी चाहिए। बिना स्त्री के, आधे शरीर से पुत्रोत्पत्ति नहीं हो सकती, इसलिए सवर्णा स्त्री के साथ विवाह करना चाहिए।

वह स्त्री अर्थ, धर्म, और काम की बड़ी भारी भूमि—पैदा करनेवाली— है। उन तीनों अर्थों की प्राप्ति बिना स्त्री के, दूसरे साधन से, नहीं हो सकती।

इधर उधर के व्यभिचार आदि दोषों से बच कर, अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखता हुआ, गृहस्थ पुरुष उस स्त्री का पालन-पोषण करे। विवाह करके पुरुष अग्नि और स्त्री के सहित, घर बना कर बसे।

अपनी मिहनत से कमाये हुए धन को पाकर विधिपूर्वक स्थापित किये श्रौत अग्नियों को कभी न छोड़े। स्मृतियों में बतलाये हुए कर्मों को विवाह-सम्बन्धी गृह्य अग्नि में और श्रौत कर्मों को श्रौत अग्नियों में करना चाहिए।

प्रति दिन विधि और प्रीतिपूर्वक उक्त कर्मों को करते हुए

स्त्री-पुरुषों को धर्म, अर्थ और काम रात दिन भले प्रकार एक-मन होकर, एक-व्रत होकर, और एक-वृत्ति होकर करते रहना चाहिए। स्त्रियों के लिए धर्म, अर्थ और काम प्राप्त करने का साधन पति के सिवा कोई नहीं है।

पति से मालूम करके, पति की आज्ञा से, स्त्री धर्म को जाने और करे।

स्त्री पति से पहले उठ कर देह की शुद्धि करके, खाट आदि उठावे और बुहारी आदि से घर की सफ़ाई करे। बुहार कर और लीप कर अग्नि की शाला और अपने आँगन को शुद्ध करे। अग्निहोत्र के बर्तन वग़ैरह, जिनसे हवन होता हो उनको, गर्म जल से धोकर जहाँ के तहाँ पानी आदि भर कर ठीक ठीक स्थान पर रख दे। फिर रसोई के बर्तनों की सफ़ाई करके चौके की सफ़ाई करे। जो बर्तन जिस चीज़ के रखने योग्य हो उसमें वही चीज़ रक्खे।

दोपहर से पहले के कामों को करके अपने गुरु—पति—को अभिवादन करे।

अपने माता-पिता या पति के माता-पिता—सास-ससुर—तथा भाई, मामा और बान्धव के ही दिये हुए कपड़े और ज़ेवर स्त्री सदा पहना करे।

मन, वाणी और कर्म से शुद्ध, पति की आज्ञा में बरतने वाली, छाया के समान पति की अनुगामिनी—पीछे पीछे चलने वाली—और स्वच्छ हुई सखी की नाईं पति का हित करे। पति के कहे हुए कामों को स्त्री सदा दासी की तरह करे। फिर

अन्न की अच्छी अच्छी स्वादिष्ट चीज़ें बना कर पति के आगे रक्खे। जिस अन्न से देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ कर दिया हो ऐसा अन्न अतिथि आदि को और पति को जिमावे; तब पति की आज्ञा लेकर बचे हुए अन्न को ख़ुद खावे।

भोजन करने के बाद बाक़ी दिन में आमदनी-ख़र्च का हिसाब-किताब लिखे।

इस तरह प्रति दिन प्रातःकाल और सायङ्काल घर की सफ़ाई करके पतिव्रता स्त्री नित्य प्रीति-पूर्वक अच्छे स्वादिष्ट भोजन बनावे तथा बड़ी प्रीति से अपने पति को जिमावे और घर का उत्तम प्रबन्ध रक्खे।

स्त्री को चाहिए कि कभी नङ्गी न रहे, बेहोश भी न रहे। निष्काम और जितेन्द्रिय होकर रहे। ऊँची आवाज़ से चिल्ला कर कभी न बोले और कठोर भी न बोले। बहुत बेकाम किसी से बातचीत न करे, कम बोले। ऐसे वचन कभी न बोले जो पति को प्यारे मालूम न होते हों। किसी के साथ कभी लड़ाई-झगड़ा न करे, बिना मतलब कभी कोई बात न कहे। किसी बीते हुए दुःख का विलाप न करे, बहुत ख़र्च करने की आदत न डाले, धर्म और अर्थ का विरोध न करे।

असावधानी, उन्माद, क्रोध, ईर्ष्या—डाह, ठगना—छल-फ़रेब, अधिक मान चाहना, चुग़ली करना, हिंसा, वैर, अहङ्कार, धूर्त्तपन, नास्तिकता, साहस (जल्दी में बिना विचारे चाहे सो कर डालना), चोरी और दम्भ, दिखावा, इन सब बुरी बातों को साध्वी स्त्री छोड़ दे। इस प्रकार परम देवता रूप अपने पति की

सेवा करती हुई वह स्त्री इस लोक में यश और सुख को पाती हुई परलोक में भी अत्यन्त सुख पाती है।

जो स्त्री धूर्त्त हो, जो धर्म और काम को नष्ट करती हो, जिसके कोई पुत्र न होता हो, जिसको असाध्य रोग हो, जो अत्यन्त दुष्टा हो, जिसको शराब पीने आदि का दुर्व्यसन लगा हो और जो पति का हित न चाहती हो, या न करती हो, ऐसी स्त्री का अधिवास न करे—ऐसी स्त्री के मौजूद होने पर भी दूसरी स्त्री के साथ विवाह कर लेना चाहिए।

जिसके विद्यमान होते हुए दूसरा विवाह किया है, उस पहली स्त्री का भी—दूसरी स्त्री के समान ही—कपड़े ज़ेवर वग़ैरह से पति आदर-सत्कार किया करे।

पति के परदेश चले जाने पर स्त्री मलिन-वर्ण और दीन-मुख होकर रहे; देह में उबटन और तैल लगाना आदि छोड़ दे; पति में व्रत रक्खे। दूसरे पुरुष का मन से भी ध्यान न करे। आहार कुछ कम करे, देह को दुबला-पतला रक्खे। ऐसी स्त्री सच्ची पतिव्रता कहाती है।

स्त्रियों की सब अवस्थाओं में पुरुष रक्षा किया करते हैं और करनी चाहिए; अर्थात् बालकपन में पिता, जवानी की उम्र में पति, और वृद्ध अवस्था में पुत्रादि क्रम से अपनी पुत्री, पत्नी और माता आदि की रक्षा और पालन-पोषण आदि किया करें।

जो सन्तान अपने घर में पैदा हुई हो, या गोद लेकर जिनका पालन-पोषण किया गया हो, ऐसे जो पुत्र, पौत्र, और

प्रपौत्र, आदि कहानेवाले होते हैं वे, मोक्ष देनेवाले तथा बड़े बड़े फलों के देनेवाले अग्निहोत्र आदि यज्ञों से अपने पितरों को पूजते—सन्तुष्ट करते हों तो ऐसे पुत्रादि के मरने पर उनके स्थापित किये हुए अग्निहोत्र की अग्नि से विधिपूर्वक दाहकर्म करना चाहिए। और यदि ऐसे मनुष्यों की स्त्री पहले मर जाय तो उसका दाहकर्म उसी अग्निहोत्र की अग्नि से करना चाहिए। यह स्वर्ग का साधन है।

गृहस्थ सबसे बड़ा है

सब आश्रमों में जो पुण्य बतलाये गये हैं और जो पुण्य मोक्ष-धर्म के हैं वे सब गृहस्थाश्रम में मिल सकते हैं। गृहस्थ आश्रम सब आश्रमों से बड़ा है। जो गृहस्थ पुरुष अपने धर्म का पूरा पूरा पालन शास्त्र के अनुसार करता है उसको सब तीर्थों का फल घर में ही मिल जाता है।

ऐसे धर्मात्मा गृहस्थ पुरुष को घर में ही तीर्थ का फल मिलता है कि जो गुरु का भक्त हो, स्त्री-पुत्रादि भृत्यों का पालन करता हो, जो दया करनेवाला हो, जो कभी किसी की बुराई न करता हो, सदा जप-होम करता हो, सच बोलता हो, और जितेन्द्रिय रहता हो। ऐसे पुरुष को घर में ही तीर्थ का फल मिलता है कि जिसे अपनी ही स्त्री में सन्तोष हो, जो दूसरे की स्त्री को न चाहता हो, और जिसकी कोई बुराई न करता हो।

दूसरे की स्त्री तथा दूसरे के धन को जो चाहता है वह सब तीर्थों की सेवा करे तो भी कुछ फल नहीं होता।

नम्रता रखना, जिमाने के समय विद्वानों के पैर धोना, ब्राह्मणों को तृप्त करना, बलि-वैश्वदेव करना और भिक्षा देना—इन कामों को जो प्रति दिन करता रहता है उसको पाप नहीं लगता।

दान का माहात्म्य

जो उत्तम विद्वान् धर्मात्माओं को धन देता है या जो स्वयं धन का भोग करता है उसी धन को उसका धन समझना चाहिए और बाक़ी धन की मानो वह दूसरे के लिए ही रक्षा करता है। जितना दान देता है या भोग कर लेता है वही धन उसका है। क्योंकि उसके मर जाने पर बाक़ी धन से दूसरे ही आनन्द भोगते हैं।

बुड्ढे मनुष्य धन से क्या कर सकते हैं? जिस शरीर को धन से बढ़ाया या हृष्ट-पुष्ट किया जाता है वह अनित्य है, सदा रहनेवाला नहीं है। मित्र और धन सदा नहीं रहते और मौत सदैव पास खड़ी है। इसलिए धर्म का सञ्चय करना चाहिए।

जो धन, धर्म के लिए, काम-भोग के लिए और कीर्ति के लिए न हो और जिसको यहीं छोड़ कर परलोक जाना पड़ता है उस धन को धर्म-कार्य्य में क्यों न ख़र्च किया जावे?

जिस मनुष्य के जीवित रहने से ब्राह्मण, मित्र और कुटुम्बी लोगों की जीविका हो, और उपकार होता हो, उसी पुरुष का जीना सफल है। अपने लिए कौन नहीं जीता?

कृमि, कीट, पतङ्ग आदि भी क्या अपने जीवन का निर्वाह

नहीं करते जो एक दूसरे को खा लेते हैं। परन्तु परलोक के लिए जो दान-पुण्य करता हुआ जीता है उसी का जीवन सार्थक—सफल—है।

केवल अपना पेट भरनेवाले तो पशु भी बहुत दिन तक जीते रहते हैं। अच्छी तरह रक्षा किये हुए बलवान्, बहुत जीनेवाले, शरीर से मनुष्यों को क्या लाभ है? एक ग्रास या आधा ही ग्रास माँगनेवाले को क्यों नहीं देता? इच्छा के अनुसार धन कब किसके हुआ और होगा? अर्थात् इतना धन कभी किसी के पास न होगा जिससे तृष्णा पूरी हो जाय।

व्यासजी कहते हैं कि हमारी राय में किसी को कुछ भी न देनेवाला ही पुरुष सच्चा त्यागी है क्योंकि वह धन को दूसरों के लिए छोड़ कर मर जाता है; साथ कुछ भी नहीं ले जाता। परन्तु हम दाता (देनेवाले) को कञ्जूस समझते हैं क्योंकि देनेवाला मर कर भी धन को नहीं छोड़ता अर्थात् मर जाने के बाद भी उसको धन देने के पुण्य-फल का उत्तम ऐश्वर्य्य-भोग मिलता ही है।

प्राणों का नाश होना निश्चय ही है परन्तु अपना काम—दान, पुण्य आदि शुभ कर्म—करके जो मरता है वह मानों नहीं मरा और जो बिना धर्म किये मरता है वह गधे के समान है।

बिना बुलाये, विद्वान् ब्राह्मण के घर जाकर और बिना ही माँगे, जो दान दिया जाता है उस दान का फल युगयुगान्तर तक रहता है।

जिस गाय का बछड़ा मर गया हो या जो गाभिन हो उस का दूध दुहना, शास्त्र के विरुद्ध माना गया है—ऐसी गाय का दूध नहीं पीना चाहिए। इसी प्रकार आपस में दान देने का जो व्यवहार है वह लोक-रीति है। उस दान को धर्म नहीं समझना चाहिए।

जो मनुष्य पाप को न देख कर—(अर्थात् किसी पाप के नाश के लिए न देता हो), और दान का भोग करनेवाले को न देखे (यह इच्छा न करे कि इस दान का फल मुझे मिले), और यह भी इच्छा न करे कि फिर मैं इसी संसार में आऊँगा, ऐसे दानी के दान का फल अनन्त होता है। किसी कामना से जो दान न किया जाय वही दान सबसे उत्तम माना गया है।

माता-पिता, भाई, श्वशुर, स्त्री, पुत्र और पुत्री को जो दान दिया जाता है वह भी अनन्त सुख का—स्वर्ग का—देनेवाला है।

पिता को देना सौ गुना, माता को हज़ार गुना, बहन को देना लाख गुना होता है और दूसरे को जो दिया जाता है उसका कभी भी नाश नहीं होता किन्तु अक्षय्य फल मिलता है।

व्यासजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरो! सुपात्र ब्राह्मण को रोज़ रोज़ दान देना चाहिए, क्योंकि यदि कभी कोई तपस्वी सुपात्र सिद्ध योगी महात्मा आ जावेगा तो वह देनेवाले को संसार-सागर से पार कर देगा।

कोई सुपात्र तो वेदपाठी और कोई तपस्वी होता है। पर

सब सुपात्रों में अच्छा सुपात्र वह माना गया है जिस के पेट में शूद्र का अन्न न गया हो। शूद्र का अन्न खाना बहुत बुरा है।

जिसके घर के पास मूर्ख ब्राह्मण रहता हो और गुणी सुपात्र कहीं दूर रहता हो तो उसी गुणी को ही दान देना चाहिए, मूर्ख को नहीं। उस मूर्ख का तिरस्कार करने में कुछ दोष नहीं है।

किसी देवता के मन्दिर-सम्बन्धी धन का नाश करने से, ब्राह्मण का धन किसी प्रकार मार लेने से और विद्वान् ब्राह्मण का तिरस्कार करने से, तिरस्कार करनेवाला पतित हो जाता है।

जिसने वेद नहीं पढ़ा-लिखा, ऐसे मूर्ख, निन्दित और कुपात्र ब्राह्मण को दान देकर आदर-सत्कार न करना उसका रूप उल्लङ्घन करना नहीं है, क्योंकि जलती हुई आग को छोड़ कर राख में हवन नहीं किया जाता। अर्थात् जैसे राख को छोड़ कर जलती हुई आग में हवन करना उचित है वैसे ही मूर्ख ब्राह्मण को छोड़ कर विद्वान् को दान देना चाहिए। हाँ, पास में रहनेवाले विद्वान् ब्राह्मण का तिरस्कार दान देते समय करना ठीक नहीं।

जैसे काठ का हाथी और चाम का बना हुआ हिरन काम नहीं देता वैसा ही बिना पढ़ा लिखा मूर्ख ब्राह्मण है। ये तीनों नाम मात्र ही के हाथी, हिरन और ब्राह्मण कहानेवाले होते हैं अर्थात् निरर्थक हैं।

जैसा गाँव का सूना स्थान और जैसे जल के बिना कुआ होता है वैसा ही बिना पढ़ा-लिखा मूर्ख ब्राह्मण है। ये तीनों

नाम के ही धारण करनेवाले हैं—अस्ल में वे सब सच्चे गाँव, कुआ और ब्राह्मण नहीं हैं।

जो धन विद्वानों को दिया जाता है और जिससे अग्नि में हवन किया जाता है वही धन कहाता है और बाक़ी धन धन नहीं।

सम ब्राह्मण को जितना दिया जावे वह सम अर्थात् उतना फलदायक होता है और ब्राह्मण-ब्रुव को जो दान दिया जाता है वह उसका दूना फल देता है। आचार्य को दिया हुआ दान हज़ार गुना फल का देनेवाला और वेदपारग को दिया दान अनन्त फल देनेवाला होता है।

जो ब्राह्मण अपने ब्राह्मण माता-पिता से पैदा हुआ हो और वेद के मन्त्रों से जिसका जनेऊ या जात-कर्म आदि संस्कार न हुए हों और जो गायत्री भी न जानता हो और ब्राह्मण जाति में पैदा होने से ही जीविका करता हो वह ब्राह्मण सम कहाता है।

जिसके गर्भाधान आदि संस्कार तो वेद-मन्त्रों से हुए हों और जो गायत्री भी जानता हो, पर वेद न पढ़ा-लिखा हो तो उसको ब्राह्मण-ब्रुव कहते हैं।

जो अग्निहोत्र करनेवाला और तपस्वी हो; कल्प, वेदाङ्ग, और उपनिषद् के सहित वेदों को जो बिना तनख़्वाह लिये धर्मार्थ पढ़ावे उसको आचार्य कहते हैं।

जिन पवित्र चीज़ों को विद्वान् पसन्द करे और जो पच जानेवाली हों वे ही चीज़ें उसको खिलानी चाहिएँ।

वेद का जाननेवाला और अपने धर्म कर्म में लगा हुआ ब्राह्मण जो खाता है, उसका फल देनेवाले को असंख्य और अविनाशी मिलता है।

व्यास जी कहते हैं कि हाथी, घोड़ा, रथ, पान, पालकी आदि को कोई कोई अच्छा बतलाते हैं परन्तु हे मुनियो! इन्हें हम नहीं चाहते, क्योंकि ये हाथी आदि किस कर्म की सम्पदायें-फल-हैं? वेद-रूपी हल से जोते हुए जो सत्पात्र ब्राह्मणों के उत्तम शरीर हैं उनमें जो पूर्वजन्म में बीज बोया गया था उसी खेती के ये हाथी, घोड़ा आदि फल हैं।

सौ में एक शूर-वीर होता है, हज़ार में एक पण्डित होता है और लाख में एक वक्ता—वेदादि शास्त्रों के गूढ़ विषयों को ठीक ठीक वर्णन कर सकनेवाला—होता है और लाखों में भी दाता होना दुर्लभ है।

मनुष्य संग्राम-भूमि में जीत पा लेने से ही शूर नहीं कहलाता, वेदादि शास्त्रों को पढ़ लेने मात्र से पण्डित नहीं कहलाता, वाणी की चतुराई मात्र से—बनावटी व्याख्यान दे देने मात्र से—वक्ता नहीं होता। किन्तु इन्द्रियों को जो अच्छी तरह जीत ले—अपने क़ाबू में रक्खे—वह शूर है, शास्त्रों में बतलाये हुए धर्म-कर्म को जो ठीक ठीक करता हो वह पण्डित है, वेद के अनुकूल दूसरों की भलाई का जो प्रिय वाणी से उपदेश करता हो वह वक्ता है, और श्रद्धा तथा आदर के साथ जो दान देता हो वह दाता कहलाता है।

प्यार के कारण, भय के कारण या धन आदि के लोभ से

जो एक पंक्ति में भोजन करने के लिए बैठे हुओं में अधिक या कम, और किसी को अच्छी चीज़ें किसी को बुरी परोसता है वह ब्रह्महत्या का दोषी होता है। सब मुनियों की यह राय है।

ऊसर में बोया हुआ बीज, फूटे बर्त्तन में दुहा हुआ दूध, राख में किया हुआ हवन और मूर्ख को दिया हुआ दान निष्फल है।

मृत-सूतक में शूद्र के घर भोजन करके जो ब्राह्मण अपने शरीर को पालता पोषता है, वह मर कर किस योनि में जाता है—यह हम नहीं जानते।

शूद्र का अन्न पेट में रहते हुए जो ब्राह्मण मर जाता है वह या तो सुअर की योनि में जन्म लेता है या उसी शूद्र के कुल में जन्म पाता है।

मनुजी ने भी लिखा है कि—शूद्र का अन्न खानेवाला ब्राह्मण बारह जन्म तक गीध, सात जन्म तक सुअर और सात जन्म तक कुत्ता बनता है।

ब्राह्मण का अन्न खाने से अमृत, देवयोनि, क्षत्रिय का अन्न खाने से दरिद्रता, वैश्य का अन्न खाने से शूद्रता और शूद्र का अन्न खाने से नरक प्राप्त होता है।

जो ब्राह्मण एक महीने तक लगातार शूद्र का अन्न खाता रहता है वह इसी जन्म में शूद्र हो जाता है और मर कर कुत्ते की योनि में जन्म लेता है।

जो मनुष्य बर्त्तन का विचार नहीं रखता अर्थात् जो यह विचार नहीं करता कि किस के बर्त्तन में खाना-पीना चाहिए,

और किसके में नहीं ; किन्तु सबके बर्त्तनों में खा लेता है वह, और बहुत से वर्णसङ्करों के साथ जो मेल-मिलाप रखता हो, और चाहे जिस स्त्री को जो घर में रख लेता हो—डाल लेता हो—ऐसे मनुष्य मर कर नरक भोगते हैं।

पंक्ति में जो कम या अधिक परोसे, जो पाक करनेवाला पञ्चमहायज्ञ न करता हो—जो अपना पेट भरने के लिए ही अन्न पकाता हो, जो ब्राह्मणों की निन्दा करता हो, जो आज्ञा का करनेवाला अर्थात् दूसरों की सेवा करता हो, जो वेद को बेचता हो, जो रुपया लेकर वेद को पढ़ाता हो या जप करता हो तो ये लोग ब्रह्महत्या के दोषी होते हैं।

यह सब व्यासजी का मत है। इसके अनुसार जो व्यवहार और आचरण करेगा वह अवश्य सुख पावेगा।

१३—शङ्ख-स्मृति



हली स्मृतियों में जो धर्म जिस वर्ण का बतलाया गया है वह तो उन सबका कर्त्तव्य है ही; इसके सिवा क्षमा, सत्य, मन को वश में करना और शौच—ये चारों वर्णों के लिए समानरूप से सेवन करने के योग्य कर्म हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्ण द्विजाति कहलाते हैं। इनका दूसरा जन्म यज्ञोपवीत हो जाने के बाद से जानना चाहिए।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के जनेऊ होने के समय से, दूसरे जन्म में, आचार्य्य तो पिता और गायत्री माता है।

जब तक ब्राह्मण के बालकों के, वेद में कहे हुए, संस्कार न हो जावें तब तक विद्वानों को बर्त्ताव में ब्राह्मणादि के बालकों को शूद्र समझना चाहिए। अर्थात् जैसा बर्त्ताव ब्राह्मणादि के साथ करना बतलाया गया है वैसा बर्त्ताव न करना चाहिए। जनेऊ हो जाने के बाद उनको द्विज समझना चाहिए।

संस्कारों का समय

गर्भ की स्थिति जब ज़ाहिरा मालूम होने लगे तब गर्भाधान संस्कार होना चाहिए। गर्भ के हिलने डुलने से पहले ही पुंसवन-संस्कार करना चाहिए। छठे महीने या आठवें महीने में सीमन्त, पैदा होने पर जात-कर्म और सूतक की शुद्धि हो जाने पर नाम-करण संस्कार करना चाहिए।

चारों वर्णों का नाम ऐसा रखना चाहिए जिसके अक्षर दो या चार आदि सम हों। ब्राह्मण का नाम ऐसा रक्खा जावे जिस के उच्चारण में मङ्गल हो जैसे प्रभुदत्त। क्षत्रिय का नाम ऐसा रखना चाहिए जिससे बल ज़ाहिर होता हो जैसे अरिन्दम। वैश्य का नाम धन को ज़ाहिर करनेवाला होना चाहिए जैसे लक्ष्मीचन्द और शूद्र का नाम दासत्व को ज़ाहिर करनेवाला होना चाहिए जैसे देवदास।

ब्राह्मण के नाम के अन्त में शर्मा, क्षत्रिय के नाम के अन्त में वर्मा, वैश्य के नाम के अन्त में गुप्त और शूद्र के नाम के अन्त में दास शब्द लगाना चाहिए।

चौथे महीने में बच्चे को सूर्य्य दिखलाना चाहिए। इसी का नाम निष्क्रमण-संस्कार है।

छठे महीने में अन्न-प्राशन संस्कार होना चाहिए। और मुण्डन-संस्कार कुल की रीति के अनुसार पहले या तीसरे वर्ष में चाहे जब करे।

गर्भ से आठवें वर्ष ब्राह्मण का यज्ञोपवीत, गर्भ से ग्यारहवें वर्ष क्षत्रिय का, और गर्भ से बारहवें वर्ष वैश्य का होना चाहिए। ब्राह्मण को सोलह वर्ष तक, क्षत्रिय को बाईस वर्ष तक और वैश्य को चौबीस वर्ष तक गुरु-मन्त्र अर्थात् गायत्री के ग्रहण करने का अधिकार है। इससे आगे मन्त्राधिकार नहीं रहता।

अपने अपने समय के अनुसार जिन वर्णों का संस्कार नहीं होता वे तीनों ही वर्ण गायत्री से पतित और सब धर्म-कर्मों

के अनधिकारी, व्रात्य, हो जाते हैं—वे सभी शूद्र के समान माने जाते हैं।

मूँज, मूर्वा (ख़ास तिनका), और सन की क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों के बच्चों की करधनी होनी चाहिए। ब्राह्मण ब्रह्मचारी के लिए हरिण के चर्म का आसन, क्षत्रिय के लिए व्याघ्रचर्म का और वैश्य ब्रह्मचारी के लिए बकरे के चर्म का होना चाहिए। ब्रह्मचर्य्य अवस्था में ब्राह्मण के लिए ढाक की लाठी, क्षत्रिय के लिए पीपल की और वैश्य के लिए बेल वृक्ष की होनी चाहिए।

बालों तक ब्राह्मण का, माथे तक क्षत्रिय का और मुँह तक वैश्य ब्रह्मचारी का दण्ड (लाठी) होना चाहिए। दण्ड टेढ़े न हों, बक्कल सहित हों और आग के जले हुए न हों।

ब्राह्मण ब्रह्मचारी के कपड़े और जनेऊ कपास के, क्षत्रिय के अतसी के और वैश्य के ऊन के होने चाहिएँ।

भिक्षा माँगने के समय ब्राह्मण ब्रह्मचारी "भवति भिक्षां देहि" कहे, क्षत्रिय ब्रह्मचारी "भिक्षां भवति देहि" और वैश्य ब्रह्मचारी को "भिक्षां देहि भवति" वाक्य बोलना चाहिए।

ब्रह्मचारी के धर्म

यज्ञोपवीत करा के शिष्य को गुरु पहले शौच सिखलावे कि मल मूत्र के समय किस प्रकार शुद्धि करनी चाहिए। फिर आचार-धर्म के अनुसार व्यवहार, अग्निकार्य्य—सदा सुबह शाम को समिदाधान और सन्ध्योपासन की शिक्षा दे।

जो शिष्य को, जनेऊ आदि करके, वेद पढ़ावे उसे गुरु कहते हैं और जो धन लेकर पढ़ावे उसको उपाध्याय कहते हैं।

माता, पिता और गुरु, तीनों की मनुष्य को सदा सेवा-पूजा करनी चाहिए। क्योंकि जो पुत्र या शिष्य इनका आदर-सत्कार नहीं करता उसके सब पुण्य-कर्म निष्फल हो जाते हैं।

प्रातःकाल सावधान हो कर, नियम से उठ कर स्नान और हवन करने के बाद नम्रता से गुरुओं को अभिवादन करना चाहिए। फिर गुरु की आज्ञा लेकर वेद पढ़ना शुरू करे। वेद पढ़ते समय शुरू और आख़ीर में ओङ्कार का उच्चारण करना चाहिए। छुट्टी के दिनों में वेद न पढ़े।

चतुर्दशी, पौर्णमासी, और अष्टमी को, ग्रहण पड़ने के समय, उल्कापात होने पर, बिजली तड़पते समय, भूकम्प के समय, जन्म-मरण के सूतक में, गाँव के बलवे के समय, वर्षा में जब इन्द्र-धनुष दिखलाई दे तब, कुत्तों के रोने के समय, जब बहुत से आदमी शोर करते हों तब, बाजा बजने के समय और युद्ध के समय वेद न पढ़ना चाहिए।

सवारी पर चढ़ कर, नाव में बैठ कर, देव-मन्दिर में, बाँबी पर बैठ कर और श्मशान-भूमि में बैठ कर वेद न पढ़ना चाहिए।

ब्राह्मण ब्रह्मचारी विशेष कर गृहस्थ ब्राह्मण के घर विधि-पूर्वक भिक्षा माँगे। और गुरु की आज्ञा लेकर पूर्व की ओर मुँह करके सफ़ाई से भोजन करे।

अहङ्कार छोड़ कर गुरु का प्रिय और हितकारी काम करना चाहिए। शाम को सन्ध्या और हवन करके गुरु को ब्रह्मचारी

अभिवादन करे और जो कुछ वे आज्ञा दें उसको पूरा करे। गुरु के पहले सदा उठे और पीछे सोवे।

ब्रह्मचारी मांस खाना, मदिरा पीना, आंखों में सुरमा डालना, श्राद्ध का भोजन करना, नाचना, गाना, बजाना, हिंसा, दूसरे की बुराई करना और विशेष कर स्त्रियों की बात-चीत करना बिलकुल छोड़ दे।

मूँज आदि की मेखला—कर्धनी—मृगछाला और दण्ड को सदा अपने पास रक्खे—धारण करे, और ज़मीन पर सोवे।

वेद पढ़ते समय विचारशील ब्रह्मचारी इस प्रकार व्रत नियम करे; वेद पढ़ चुकने पर गुरु को दक्षिणा दे कर, गुरु की आज्ञा से समावर्तन करके गृहस्थ आश्रम को ग्रहण कर ले।

विवाह की रीति

जो अपने प्रवर या गोत्र की न हो ऐसी सुशील कन्या से विधि-पूर्वक विवाह करे।

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पिशाच ये आठ प्रकार के विवाह हैं। इनमें आख़िरी विवाह बुरा माना गया है। इनमें पहले चार धर्मयुक्त और अच्छे विवाह हैं। गान्धर्व और राक्षस दोनों क्षत्रिय के लिए अच्छे हैं।

जो बड़े यत्न से प्रार्थना करने पर वेद-विधि से विवाह किया जाय उसको ब्राह्म-विवाह कहते हैं। यज्ञ में बैठे हुए ऋत्विज् वर को जो कन्या वेद-विधि से दी जाय वह दैव, और दो गाय या उनकी क़ीमत ले कर जो विवाह वेद-विधि से किया जाय उसको

आर्षविवाह कहते हैं। कन्यावाले से कन्या माँगने के लिए जो वर प्रार्थना करे और वेदोक्त विधि से किया जावे तो उस विवाह का नाम प्राजापत्य है। धन लेकर जो विवाह किया जावे वह आसुर विवाह है; कन्या और वर दोनों की इच्छा से जो विवाह किया जावे उसको गान्धर्व-विवाह कहते हैं। युद्ध करके जो कन्या छीनी जावे उसको राक्षस-विवाह और छल से चुरा कर जो कन्या ले ली जावे उस को पैशाच-विवाह कहते हैं।

अच्छी स्त्री वही है जो घर का काम-काज सँभालने में होशियार हो, पतिव्रता हो, जिसके प्राण पति में ही लगे रहते हों और जो पुत्र आदि सन्तान वाली हो।

पञ्च-महायज्ञों का वर्णन

गृहस्थ पुरुष को चूल्हा, चक्की, बुहारी, ओखली और जल के घड़े से रोज़ हत्या लगती है। इस हत्या रूप पाप की निवृत्ति के लिए गृहस्थ पुरुष को पाँचों महायज्ञ प्रतिदिन ज़रूर करने चाहिएँ। क्योंकि पाँचों यज्ञों के करने से गृहस्थ के हत्या-सम्बन्धी पाप नष्ट हो जाते हैं। वे पाँच यज्ञ ये हैं—देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ और मनुष्य-यज्ञ।

वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी और संन्यासी—ये तीनों द्विज गृहस्थ के भिक्षारूप प्रसाद से जीते हैं।

गृहस्थ ही यज्ञ करता, गृहस्थ ही तप करता और गृहस्थ ही दान देता है। इसलिए गृहस्थ आश्रम ही सबसे उत्तम है।

जिस प्रकार स्त्रियों की रक्षा करनेवाला पति और जिस

प्रकार वर्णों की रक्षा करनेवाला ब्राह्मण है इसी प्रकार गृहस्थ का प्रभु अतिथि है।

चारों आश्रम और स्त्री के परम धर्म

व्रत, उपवास और अनेक प्रकार के धर्म-सेवन से भी स्त्री स्वर्ग को प्राप्त नहीं होती। श्रद्धा-भक्ति के साथ तन, मन, धन से पति की सेवा-पूजा से ही स्त्री को निश्चय स्वर्ग मिलता है।

व्रत, उपवास और अपने किये अनेक प्रकार के यत्नों से राजा को स्वर्ग नहीं मिलता किन्तु धर्मानुसार प्रजा की ठीक ठीक रक्षा करने से राजा को अवश्य स्वर्ग प्राप्त होता है।

स्नान करने, मौन रहने और अग्नि की सेवा–हवन–करने से ही ब्रह्मचारी को स्वर्ग नहीं मिल सकता किन्तु गुरु की पूजा, गुरु में ठीक ठीक श्रद्धा-भक्ति रखने से ब्रह्मचारी को अवश्य स्वर्ग मिलता है।

अग्नि की सेवा—पञ्चाग्नि-ताप से, क्षमा से और अनेक प्रकार बार बार नहाने से ही वानप्रस्थ को स्वर्ग नहीं मिल सकता किन्तु जब भोजन का त्याग—उपवास—करके इन्द्रियों की चञ्चलता जाती रहती है और मन में परमार्थ का विचार होता है तब स्वर्ग-प्राप्ति होती है।

तीनों दण्ड धारण करने से, मौन रहने से और सुनसान जगह में रहने से संन्यासी सिद्धि को नहीं पाता, किन्तु योगाभ्यास से ही सबसे अच्छी गति पाता है।

दक्षिणावाले बड़े बड़े यज्ञों से तथा हवन से गृहस्थ पुरुष

वैसा स्वर्ग को प्राप्त नहीं होता जैसा अतिथि की सेवा से स्वर्ग पाता है। इसलिए गृहस्थ पुरुष को बड़ी कोशिश से भोजन आदि के द्वारा अतिथि का सत्कार करना चाहिए।

इन पहले कहे हुए गुणों से जो युक्त हो, तथा धर्मानुकूल उपाय से जिसने धन इकट्ठा किया हो, उसी से विद्वान् ब्राह्मण यज्ञ करावे और ऐसे ही धर्मात्मा मनुष्य से प्रतिग्रह—दान—ले।

जब पुत्र पौत्रादि हो जावें और वृद्धावस्था भी आ गई हो, तब गृहस्थ पुरुष को चाहिए कि वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करे। वानप्रस्थ के बाद संन्यास आश्रम में सब धनादि पदार्थों को छोड़ कर चला जाना चाहिए। भिक्षा माँग कर खावे और जैसी भिक्षा मिले उसी से सन्तुष्ट रहे। संन्यासी का पात्र तूँबी हो; किसी धातु का न हो। संन्यासी को चाहिए कि आँख से देख कर रास्ते में पैर रक्खे, कपड़े से छान कर पानी पीवे, सच बोले और शुद्ध मन से इधर उधर विचरा करे। सब प्राणियों पर एक सी दृष्टि रक्खे, सबको मित्र समझे। मिट्टी के ढेले, पत्थर और सोने को एक सा समझे। ध्यान और योगाभ्यास में लगा रहे। सदा इस तरह के काम करने से संन्यासी परम गति पाता है।

जीते जी ही जो जन्म और मरण के बन्धनों से छूटा हुआ है, मन की पीड़ा और शरीर के रोग भी जिसको नहीं सताते, उसी को विद्वान् लोग ब्राह्मण कहते हैं।

शरीर के अशुद्ध होने, प्रिय के स्थान में अप्रिय और अप्रिय के स्थान में प्रिय होने, तथा मलिन-स्थान में गर्भवास होने से बिना संन्यास के छुटकारा नहीं मिल सकता।

"यह जगत् बड़ा भयानक है, यह संसार असार है, इसमें कर्म का फल ज़रूर भोगना पड़ता है" इस प्रकार विचारता हुआ जो पुरुष अपना समय व्यतीत करता है वह ज़रूर मुक्ति पाता है।

प्राणायामों के द्वारा इन्द्रियों के दोषों को और धारणाओं से शरीर के पापों को भस्म कर देना चाहिए। प्रत्याहार से सङ्गों को और ध्यान के द्वारा ईश्वर के विरोधी नास्तिकत्व को नष्ट करना चाहिए।

प्राणों को रोक कर ओङ्कार सहित ओम् भूः, ओम् भुवः, ओम् स्वः, ओम् महः, ओम् जनः, ओम् तपः, ओम् सत्यम् इन सात व्याहृति-मन्त्रों सहित गायत्री के तीन बार पढ़ने को प्राणायाम कहते हैं।

संयम के जाननेवालों ने मन के रोकने को धारणा बतलाया है। इन्द्रियों के विषयों से मन हटाने को प्रत्याहार कहा है। हृदय में ध्यान के योग से ब्रह्म के साक्षात् करने को ध्यान कहते हैं।

अध्यात्म-विचार

अध्यात्मरूप से सब देवता, प्राण, तारा-गण और सूर्य्य अपने हृदय में भी ठहरे हुए हैं। अपने शरीर को नीचे की अधरारणी और ओङ्कार को ऊपर की उत्तरारणी मान कर ध्यान के लगातार मन्थन रूप अभ्यास से हृदयस्थित परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार करना चाहिए।

छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा आत्मा मनुष्य के शरीर

में ठहरा हुआ है। जिस पुरुष ने शोकादि छोड़ दिया है वह तेजोरूप आत्मा की महिमा को परमात्मा की कृपा से देखता है।

अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धे हुए मनुष्यों को परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता, क्योंकि उनके विषय-भोगों की लालची इन्द्रियाँ अज्ञानरूपी कपड़ों से ढकी हुई हैं।

यह पुरुष रूप परमात्मा सबके हृदय में हर समय विराजमान है, व्यापक है, वह प्रकट और अप्रकट, सगुण तथा निर्गुण रूप से नित्य है। यही धाता, विधाता, पुराना, कलाहीन और कल्याण-स्वरूप है। इसी परमात्मा को मैं महान् सूर्य के समान तेजवाला और तमोगुण से रहित समझता हूँ कि जिसको जान कर मनुष्य मौत से नहीं डरता; और इसके सिवा मोक्ष के लिए और कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँच महाभूत-पञ्चतत्त्व—कहाते हैं।

मनुष्य के शरीर में आँख, कान, त्वचा, रसना (जो जीभ के आगे के हिस्से में इन्द्रिय है), और घ्राण (जो नाक के आगे के हिस्से में सूँघने की शक्ति है) ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, इनसे ज्ञान होता है—पदार्थ का असली स्वरूप मालूम होता है। इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों के ये पाँच विषय—काम—हैं रूप, शब्द, स्पर्श, रस और गन्ध।

हाथ, पाँव, मूत्रेन्द्रिय, जिह्वा और गुदा ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ कहाती हैं—इनसे मनुष्य सब काम किया करता है।

मन, बुद्धि, आत्मा (महत्तत्त्व), अव्यक्त (प्रधान), ये चार

तत्त्व इन्द्रियों से परे सूक्ष्म और कारण रूप हैं। ये सब मिल कर चौबीस तत्त्व कहाते हैं और आत्मा जो पुरुष (ईश्वर) है वह पचीसवाँ तत्त्व पहले कहे चौबीस तत्त्वों से पृथक् है।

जो मनुष्य साधु, सज्जन, धर्मात्मा होते हैं और जिसको जान कर वे इस असार संसार से मुक्त हो जाते हैं, वह परब्रह्म परमात्मा, गुप्त, अविनाशी और सबसे बढ़ कर है। उस परब्रह्म परमात्मा में न शब्द है, न रस है, न स्पर्श है, न रूप है, और न गन्ध है; उसमें न दुःख है, न सुख। वही व्यापक परमात्मा का शुद्ध परम पद है।

जो जन्म और कर्मों की वासनाओं से रहित, शान्त, दिखलाई न देनेवाला, नित्य और अविनाशी है, जिसका आदि और अन्त भी नहीं है और जो ब्रह्मरूप है वही परमात्मा का परम पद है।

जिस मनुष्य का विज्ञान ही सारथि है और प्रग्रह—लगाम की रस्सी—से जिसका मन बँधा हुआ है वही संसार के रास्ते से परे परमात्मा के परम पद को प्राप्त होता है।

बाल के आगे के हिस्से के एक हज़ार टुकड़े किये जायँ और उनमें से एक टुकड़े का जो सौवां हिस्सा हो उससे भी सूक्ष्म (छोटा) जीव बतलाया गया है।

इन्द्रियों से परे—सूक्ष्म कारण रूप अर्थ—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध ये विषय हैं और इन अर्थों से परे सूक्ष्म कारण मन है, मन से परे बुद्धि और बुद्धि से परे सूक्ष्म कारण महत्तत्त्व वा जीव पद-वाच्य आत्मा है। महत्तत्त्व से परे सूक्ष्म कारण अव्यक्त

नाम की प्रधान व प्रकृति है। अव्यक्त से परे सूक्ष्म पुरुष है। उस सूक्ष्म पुरुष—ब्रह्म से परे सूक्ष्म कारण और कुछ भी नहीं है। किन्तु वही स्थिरता की आख़िरी सीमा और वही परम गति है।

वह परमात्मा इन, सब संसार के चराचर—चलनेवाले और न चलनेवाले—प्राणियों में सदैव एक सा, कपड़ों में कपास या सूत के समान ठहरा हुआ है। सूक्ष्म बुद्धि रखनेवाले मनुष्य, नवीन सूक्ष्मबुद्धि से परब्रह्म परमात्मा को देखते हैं।

गायत्री मन्त्र का माहात्म्य

वेदों में जितने मन्त्र हैं उन सब से गायत्री मन्त्र श्रेष्ठ है। गायत्री के बराबर दूसरे मन्त्र का जप नहीं है। और व्याहृतियों से बढ़कर होम के लिए दूसरे मन्त्र नहीं हैं। ओङ्कार का नाम प्रणव है। व्याहृति और प्रणव के सहित जो मनुष्य सदैव गायत्रा का जप करता है उसको कहीं भी डर नहीं होता। गायत्री से किया हुआ हवन सब कामनाओं को पूरा करनेवाला होता है। जो मनुष्य शान्ति चाहे वह शुद्ध होकर गायत्री का जप और गायत्री से हवन किया करे। गायत्री का जप करनेवाला चाहे हुए लोक और फल को प्राप्त करता है। गायत्री वेदों की माता और पापों की नाश करनेवाली है। इस लोक तथा परलोक में गायत्री से अधिक पवित्र करनेवाला कोई नहीं है। नरकरूपी समुद्र में गिरनेवाले मनुष्य को हाथ पकड़ कर रक्षा करनेवाली गायत्री ही है। इसलिए नियम के साथ मनुष्य शुद्धतापूर्वक नित्य गायत्री का जप करे। गायत्री के जप में जो ब्राह्मण तत्पर रहता हो

उसी का, हव्य (जो अन्न देवताओं के लिए बनाया जाता है) और कव्य (जो पितरों के लिए बनाया जाता है) से सत्कार करे। क्योंकि इस प्रकार के मनुष्य में पाप इस तरह नहीं रहते जैसे कमल के पत्ते पर जल की बूँद नहीं ठहरती।

जप करने से ही ब्राह्मण सिद्धि को प्राप्त हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। जप करनेवाला ब्राह्मण और दूसरे पुण्य के काम कर सके या न कर सके तो भी उस को मैत्र कहते हैं।

जप करने के समय ऊँचे स्वर से न बोले और धीरे धीरे बोल कर जप करने की अपेक्षा मन ही मन में जप करना बहुत अच्छा माना गया है।

गायत्री के जप में लगे हुए मनुष्य को स्वर्ग प्राप्त होता है और गायत्री के जप में लगा हुआ मनुष्य मोक्ष का उपाय भी प्राप्त कर लेता है। इसलिए, सब तरह के प्रयत्न से नहाने के बाद मन को रोक कर भक्ति से सब पापों के नाश करनेवाली गायत्री का जप करना चाहिए।

१४—लिखित-स्मृति

इष्टापूर्त्त धर्म्म की व्याख्या

सज्जन धर्म्मात्मा मनुष्य इष्ट (श्रौत अग्निहोत्र आदि) और पूर्त्त (कुआँ आदि बनवाना) धर्म्म के काम बड़े प्रयत्न से करे। क्योंकि इष्ट कर्मों से स्वर्ग और पूर्त्त कर्मों से मोक्ष प्राप्त होता है।

ज़मीन और गाय का दान करने से मनुष्य को जिन लोकों के भोग मिलते हैं उन्हीं लोकों को, परोपकार के लिए वृक्ष लगानेवाला मनुष्य, प्राप्त होता है।

बावड़ो, कुआँ, तालाब और देव-मन्दिर जो टूट फूट गये हों उनकी मरम्मत करानेवाला भी पूर्त्त कर्मों के फल को भोगता है।

अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदों की रक्षा, पाहुने का सत्कार और वैश्वदेव को इष्ट कहते हैं।

———

१५-दक्ष-स्मृति

बालकपन दोष के योग्य नहीं

आठ वर्ष की अवस्था तक बालक, पैदा हुए बालक के समान होता है। ऐसा बालक यदि कभी झूठ बोल दे, या कहने के अयोग्य कोई बात कह दे तो उसको यज्ञोपवीत होने से पहले दोषी न समझना चाहिए। जनेऊ हो जाने के बाद जो बुरे काम करता है उसको दोष अवश्य लगता है। सोलह वर्ष की उम्र तक यह बालक संसार के व्यवहारों के लायक़ भी नहीं होता।

नित्यकर्म्म और स्नान

प्रातःकाल सूर्य्य उदय होने से ले कर शाम तक मनुष्य को अपने काम में लगा रहना चाहिए। सबेरे सूर्य उदय होने से चार घड़ी पहले जाग कर शास्त्र में कहे हुए अनुसार मल-मूत्रादि त्यागे। फिर ठीक ठीक पवित्र होकर दतौन करके नहावे। मनुष्य के शरीर में मल निकलने के नौ दर्वाज़े हैं, इसलिए मनुष्य-शरीर अत्यन्त मलिन बतलाया गया है। उन नौ दर्वाज़ों से रात दिन मलिनता निकलती रहती है। इस मलिनता को शुद्ध करने के लिए सबेरे का स्नान करना बतलाया गया है।

सोने के समय मनुष्य की इन्द्रियाँ मलिनता से गीली हो जाती हैं और राल वग़ैरह टपकने लगती है, सब अङ्ग सुस्त पड़ जाते हैं। सोकर उठने पर मनुष्य के शरीर में पसीना आदि अनेक प्रकार के मल लगे हुए होते हैं। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि बिना स्नान किये जप, होमादि शुभ कर्म न करे किन्तु स्नान अवश्य करे और इसके बाद जप-होम आदि करना चाहिए।

सबेरे स्नान करनेवाला मनुष्य शरीर की पवित्रता हो जाने से सब जप आदि शुभ कर्म करने के योग्य बनता है। और स्नान करनेवाले मनुष्य में—१—रूप, २—बुद्धि, ३—बल, ४—तेज, ५—नीरोगता, ६—अवस्था, ७—लालच छूटना, ८—मन की शुद्धि से बुरे बुरे स्वप्नों का न होना, ९—तप और १०—तीक्ष्ण बुद्धि ये दस उत्तम गुण हो जाते हैं।

सबेरे का स्नान मन को प्रसन्न करनेवाला, रूप तथा सौभाग्य को बढ़ानेवाला, दुःख तथा शोक का नाश करनेवाला, मान और ज्ञान का देनेवाला होता है।

पोष्य वर्ग

माता, पिता, गुरु, स्त्री, सन्तान, दीन, अनाथ, दास, अभ्यागत, अतिथि और अग्नि ये सब मनुष्य का पोष्य वर्ग कहाता है। इसका पालन-पोषण और सेवा करना मनुष्य को संसार में ही सुख देनेवाला नहीं किन्तु परलोक में भी सुख-

दायक है। इससे इस पोष्य वर्ग का प्रत्येक गृहस्थ को अवश्य पालन-पोषण करना चाहिए।

अपने कुल में वा सम्बन्धियों में जो धन-हीन, दरिद्र, क्षीण, असमर्थ, अनाथ और जो शरण में आये हुए हों, ये सब धनी पुरुषों के लिए पोष्य वर्ग में गिनाये गये हैं अर्थात् पहला पोष्य वर्ग तो प्रत्येक गृहस्थ के लिए साधारण रूप से है और धनी पुरुष के लिए ये दोनों ही पोष्य वर्ग हैं—धनी पुरुष को ऊपर बतलाये हुए पोष्य वर्ग का और इस पोष्य वर्ग का बड़े यत्न से पालन-पोषण करना चाहिए।

पोष्य वर्ग का पालन करना स्वर्ग का सबसे बढ़ कर उत्तम साधन है। और पोष्य वर्ग को दुःख पहुँचाने से नरक होता है। इसलिए पोष्य वर्ग का अवश्य पालन-पोषण करना चाहिए।

जिस एक पुरुष के सहारे से बहुतों का जीवन होता हो वह एक तो मानो जीता हुआ है और बाक़ी अपना ही पेट भरने-वाले पुरुष जीते हुए भी मुर्दे के समान हैं।

कोई कोई मनुष्य तो दूसरों को लाभ पहुँचाने के लिए रोज़गार करते हैं, और कोई कोई अपने कुटुम्ब का पालन करने के लिए ही रुपया कमाते हैं। कोई कोई ऐसे भी हैं कि अपना भी पेट भरने में दुःखी रहते हैं—अपना भी गुज़ारा अच्छी तरह नहीं कर सकते।

यदि मनुष्य अपनी भलाई—कल्याण—चाहे तो दीन, अनाथ और सज्जन विद्वानों को ज़रूर कुछ न कुछ दान दिया

करे। क्योंकि जो दान नहीं देते वे मानों दूसरे के भाग्य से जीने वाले दूसरे की अधीनता के लिए ही पैदा हुए हैं।

विद्वान् और धर्मात्माओं को जो सज्जन दान देता है और जो प्रति दिन हवन करता है उस पुरुष का उतना ही धन समझना चाहिए, बाक़ी धन तो दूसरों का है।

गृहस्थ-आश्रम की उत्तमता

देवता, मनुष्य और पशु-पक्षी आदि तिर्यग्योनि, ये सब गृहस्थ पुरुष से ही जीते हैं; इससे गृहस्थ आश्रम सब से अच्छा है। गृहस्थ से ही पैदा होकर ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी होते हैं, इसलिए गृहस्थ-आश्रम सब आश्रमों का मूल कारण है। गृहस्थ के दुःखी रहने से बाक़ी तीनों आश्रम दुःखी हो जाते हैं।

जड़ की रक्षा करने से शाखा और शाखाओं से डालियाँ और डालियों से पत्ते हो जाते हैं और जो जड़ का नाश हो जाय तो शाखा आदि सब नष्ट हो जाते हैं। इसलिए राजा और तीनों आश्रमों को बड़े यत्न से गृहस्थ आश्रम की रक्षा, आदर और मान-प्रतिष्ठा सदा करनी चाहिए। गृहस्थ पुरुष भी अपने क्रिया-कर्म में सदा लगा रहे तभी सुख होता है।

घर में रहने से ही मनुष्य गृहस्थ नहीं कहलाता, अपने धर्म-कार्य्य से रहित गृहस्थ, पुत्र और स्त्री से गृहस्थ नहीं होता। किन्तु स्नान, हवन और दान किये बिना जो गृहस्थ भोजन करता

है वह मनुष्य और देवता आदि का ऋणी हो कर अधोगति पाता है। उसे नरक भोगना पड़ता है।

कोई मनुष्य तो अन्न खाता है और किसी मनुष्य को अन्न ही खा जाता है। यदि अन्न किसी को नहीं खाता तो सिर्फ़ उसको कि जो वैश्वदेव करके खाता है।

जिसका स्वभाव दूसरों को हिस्सा देने का है, जो क्षमायुक्त है, दयालु है और देवता तथा अतिथियों का भक्त है वही गृहस्थ धार्मिक है।

दया, लज्जा, क्षमा, श्रद्धा, बुद्धिमत्ता, त्याग और कृतज्ञता (दूसरे के किये उपकार को मानना), ये गुण जिस पुरुष में होते हैं वही सच्चा गृहस्थ होता है।

अमृत आदि रूप नौ कर्मों का विचार

गृहस्थ के लिए नौ सुधा (अमृत), नौ मध्यम, नौ कर्तव्य कर्म और नौ विकर्म—बुरे कर्म हैं। नौ छिपे कर्म, नौ कर्म ज़ाहिर करने योग्य, नौ सफल और नौ निष्फल कर्म हैं, और नौ चीज़ें कभी देने योग्य नहीं हैं। ये नौ नौ संख्यावाले नौ काम अर्थात् ८१ इक्यासी काम बतलाये हैं। ये ही गृहस्थ पुरुष को उन्नति के शिखर पर पहुँचाते हैं। उनमें नौ सुधा वस्तु ये हैं—यदि कोई प्रतिष्ठित विद्वान्, सज्जन अपने घर आवे तो मन, नेत्र, मुख और वाणी को सौम्य, कोमल और श्रद्धायुक्त रक्खे और सज्जन को आता देख कर उठ कर लावे—पेशवाई करे,—आने का कारण पूछे, प्रेम से बोले,

सेवा करे और उसके पीछे पीछे चले, ये नौ काम प्रति दिन अभ्यागत के लिए करे। नौ मध्यम दान ये हैं—भूमि, जल, कुश का आसन, पैर धोना, तैल मलना, बैठने के लिए कुछ आसन आदि देना, शय्या—खाट, आये हुए अतिथि को यथाशक्ति कुछ देना (क्योंकि गृहस्थ के घर में अतिथि बिना भोजन किये हुए नहीं रह सकता), माँगनेवाले को मिट्टी व जल जो माँगे सो देना, ये नौ दान बहुत छोटे हैं; अच्छे घरों में ये सदा हुआ ही करते हैं। सन्ध्या, स्नान, जप, होम, वेद-पाठ, देवताओं का पूजन, वैश्वदेव, क्षमा और यथाशक्ति अन्न निकाल कर अतिथि का सत्कार करना ये नौ शुभ कर्म हैं। दूसरी तरह से—पितर, देवता, मनुष्य, दीन, अनाथ, तपस्वी, गुरु, माता-पिता इन सबका यथायोग्य भोजन से सत्कार करे। ये नौ कर्म जितेन्द्रिय विद्वानों को ज़रूर करने चाहिएँ। इन कर्मों को करके मनुष्य सब धर्म-कर्म करनेवाला माना जाता है।

झूठ बोलना, परस्त्री-गमन करना, अभक्ष्य का भक्षण करना, अगम्या स्त्री के साथ गमन करना, न पीने के योग्य शराब आदि पीना, चोरी करना, हिंसा करना, वेदरहित बुरे कर्म करना, धर्म के विरुद्ध किसी के साथ मित्रता करना, ये नौ काम निन्दा के योग्य तथा बुरे हैं, इनको सदा छोड़े रहे।

चुग़ली करना, झूठ बोलना, छल-कपट, काम, क्रोध, दूसरे का बुरा चाहना, द्वेष, दम्भ—दिखावा और दूसरे के साथ द्रोह करना, ये नौ छिप कर होनेवाले निन्दित काम हैं। इनको छोड़ देना चाहिए।

गाना, बजाना, खेती करना, दास-कर्म, वणिज-व्यापार, नमक बनाना–बेचना, जुआ खेलना, हथियार बनाना और अपनी प्रशंसा करना, यह भी नौ कर्मों का तीसरा उदाहरण है।

अवस्था, धन, घर का छिद्र (कोई बुरी बात), विष उतारने का मन्त्र, मैथुन, ख़ास दवा, तप, दान, और अपमान—कहीं बेइज़्ज़ती हो गई हो तो वह—ये नौ बातें छिपाने योग्य होती हैं।

अयोग्य काम, क़र्ज़ का निबटारा, दान देना, वेद पढ़ना, किसी चीज़ का बेचना, कन्या का दान, और वृषोत्सर्ग, इन बातों को एकान्त में न करे।

माता-पिता, गुरु, मित्र, नम्र, उपकारी, दीन, अनाथ, सज्जन, धर्मात्मा, विद्वान्, इन को दान देना सफल है। और धूर्त्त, क़ैदी, मल्ल, कुवैद्य, कपटी, शठ, चाटु (मिठबोला ठग), चारण, और चोर इन नौ को दान देना निष्फल है।

मामूली चीज़ें, भिक्षा, मानस दुःख, स्त्री, मित्र का धन, भय से डर कर शरण में आया मनुष्य, दूसरे की रक्खी हुई चीज़ें और वंश के होते हुए अपना सब धन, ये चीज़ें बड़ी आपत्ति आजाने पर भी कभी किसी दुश्मन वग़ैरह को न देनी चाहिए। जो मनुष्य इन चीज़ों को ऐसे बुरे वक़्त पर डर कर दूसरे को दे देता है वह मूर्ख समझा जाता है और प्रायश्चित्त का भागी बनता है।

इन पहली कही हुई बातों को जाननेवाला—अपने बर्ताव में लानेवाला पुरुष मनुष्यों में अधिपति—प्रधान, माननीय

माना जाता है। इस लोक में ऐसे पुरुष को लक्ष्मी प्राप्त होती है और परलोक में भी सुख मिलता है।

दान-धर्म का विचार

सुख की इच्छा करनेवाला पुरुष अपने समान दूसरे प्राणियों को देखे, क्योंकि सुख और दुःख जैसे अपने को होते हैं वैसे ही दूसरे प्राणियों को भी होते हैं। सुख या दुःख जो दूसरे के लिए किया जाता है, उस किये हुए सबका फल अपने आत्मा में होता है।

बिना दुःख उठाये धन नहीं मिलता और धन के बिना धर्म-सम्बन्धी काम भी ठीक ठीक नहीं होते। कर्महीन मनुष्य धर्म नहीं कर सकता और धर्महीन को कभी सुख नहीं मिल सकता।

संसार में सब मनुष्य सुख की ही इच्छा करते हैं और वह सुख धर्म करने से ही मिल सकता है। इसलिए प्रत्येक प्राणी को बड़ी होशियारी से धर्म करना चाहिए।

न्यायानुसार प्राप्त हुए धन से परलोक के सुधरने के काम यज्ञ वग़ैरह करने चाहिएँ। अच्छे समय में गुणी, विद्वान्, सुपात्र को विधिपूर्वक दान देना चाहिए। दिये हुए दान का फल क्रम से उतना ही दूना, सहस्रगुना, और अनन्त होता है, जिस प्रकार कि दान का फल कुपात्र, सुपात्र के भेद से न्यूनाधिक होता है। ब्राह्मणादि विद्वान् सुपात्र को दान देने का दूना फल और आचार्य को दान देने से सहस्रगुना फल और जिस ने वेदों

के अभिप्राय को अच्छे प्रकार जान लिया हो ऐसे वेद-पारग विद्वान् को दान देने से अनन्त फल होता है।

विधि-रहित तथा कुपात्र को दान देने से, देनेवाले का दान सिर्फ़ फ़िज़ूल ही नहीं जाता, किन्तु उसका बाक़ी धन भी बरबाद हो जाता है।

जो मनुष्य अपने दुःख दूर करने के लिए या सिर्फ़ अपने दुःखी परिवार का पालन-पोषण करने के लिए धन माँगता हो ऐसे पुरुष को खोज कर दान देना चाहिए। यह दान उत्तम माना गया है।

जिस के माता-पिता मर गये हों ऐसे अनाथ बच्चे के उपनयन आदि संस्कार करके जो मनुष्य अपने पास रखता है और उसको योग्य बना कर गृहस्थ बना देता है उस पुरुष के पुण्य की कुछ गिनती नहीं है—अनन्त पुण्य माना जाता है। अग्निहोत्र और अग्निष्टोम यज्ञों के करने से वैसा कल्याण नहीं प्राप्त होता जैसा कि अनाथ बच्चे की नींव स्थापित कर देने से होता है।

संसार की जो जो चीज़ें अत्यन्त इष्ट और जो जो चीज़ें अपने को प्यारी हों वे चीज़ें दूसरों को भी प्यारी होती ही हैं इसलिए ऐसी ही चीज़ें सुपात्र, विद्वान् को देनी चाहिएँ। ऐसा दान करने से अक्षय सुख मिलता है।

स्त्री कैसी होनी चाहिए ?

यदि आज्ञा में चलनेवाली हो तो स्त्री ही घर का मूल है।

और यदि वह वशवर्त्तिनी हो तो गृहस्थ आश्रम से बढ़कर दूसरा आश्रम नहीं है। ऐसी पतिव्रता स्त्री के साथ ही धर्म, अर्थ और काम के त्रिवर्ग फल को मनुष्य भोगता है।

जिस की स्त्री सब तरह से अनुकूल हो तो उसको अपने घर में ही स्वर्ग है। और जिसकी स्त्री प्रतिकूल—पति से विरुद्ध—है उसको घर ही नरक के समान है।

स्त्री और पुरुष में परस्पर पूरी प्रीति का होना स्वर्ग में भी दुर्लभ है। एक तो प्रेम चाहनेवाला हो और दूसरा विरक्त (प्रेमी नहीं) हो तो इससे अधिक और क्या कष्ट हो सकता है?

घर में रहना सुख के लिए होता है, और उस सुख का मूल कारण धर्मपत्नी ही है। जो स्त्री नम्र, कोमल हो, चित्त की बात जान लेनेवाली तथा सर्वथा पति के अधीन रहनेवाली हो तो असल में वही पत्नी है।

जो स्त्री दुःखी रहती हो, सदा खेद माननेवाली हो, आपस में एक दूसरे को पीड़ित करे या छिद्र देखे, ऐसी प्रतिकूल स्त्रीवाले पुरुष को तथा विशेष कर दो स्त्रीवाले पुरुष को घर में सदा दुःख ही दुःख होता है।

जिस प्रकार जलौका—जोंक जिस प्राणी के चिपट जाती है उसका सारा ख़ून चूस लेती है, इसी तरह बुरी स्त्री भूषण, वस्त्र और भोजनादि से पालन-पोषण करते रहने पर भी पति को सताया करती है। जोंक तो सिर्फ़ ख़ून को ही चूसा करती है पर प्रतिकूल स्त्री पुरुष के धन, अन्न, मांस, बल और सुख सबको नष्ट कर देती है।

बुरी स्त्री छोटी उम्र में तो अपने पति से कुछ डरती रहती है, पर जवानी की उम्र में अपने पति का सामना करने लगती है, और बुढ़ापे में ऐसी स्त्री अपने पति को तिनके के समान समझने लगती है। अपनी इच्छा के अनुसार काम करने में स्वतन्त्र स्त्री को यदि प्रेम के कारण पति ने न रोका तो पीछे वह स्त्री रोकने पर सामना करने लगती है; जिस प्रकार कि—लापरवाही करने से रोग बढ़ कर प्रबल हो जाता है और रोगी को दबा लेता है।

जो स्त्री अपने अनुकूल हो, जिस की वाणी कोमल तथा प्रिय हो, जो चतुर—बुद्धिमती—हो, साधु सरल स्वभाव की और पतिव्रता हो तो ऐसी स्त्री लक्ष्मी के समान ही है।

जो स्त्री मन से सदा प्रसन्न रहे, पति को बैठाने तथा प्रतिष्ठा करने में चतुर हो और जो पति में प्रीति रखनेवाली हो, वही स्त्री सच्ची स्त्री है; इसके सिवा दुःखदायिनी होती है।

जिस पुरुष के शिष्य, स्त्री, बालक, भाई, मित्र, सेवक और अपने आश्रित शरणागत, नम्र, कोमल एवं शिक्षित होते हैं उसकी संसार में बड़ी बड़ाई होती है।

पहली एक स्त्री धर्मपत्नी कहलाती है और दूसरी स्त्री कामासक्ति को बढ़ानेवाली मानी गई है। दूसरी स्त्री का फल इस लोक में प्रत्यक्ष ही दिखलाई देता है। सज्जन धर्मात्मा मनुष्य को सदा एक ही स्त्री रखनी चाहिए, दूसरी नहीं।

यदि शास्त्रोक्त विधि से विवाहिता स्त्री में कोई बड़ा दोष हो तो भी कुछ बुराई नहीं है। ऐसी दशा में मनुष्य दूसरी गुणवती स्त्री से विवाह कर सकता है।

जो पुरुष व्यभिचार आदि बुराइयों के बिना स्त्री को युवा अवस्था में त्याग देता है वह मर कर दूसरे जन्म में बन्ध्या स्त्री बनता है।

जो स्त्री रोगी पति का तिरस्कार करती है वह कुतिया आदि की बुरी योनि में जन्म पाती है।

शरीर की शुद्धि

शुद्धि करने का उपाय मनुष्य को सदा बड़े ही प्रयत्न से करना चाहिए। क्योंकि बड़प्पन की स्थिति और पुष्टि का मूल कारण—असली जड़—पवित्रता ही है। शास्त्रों में शुद्धि दो प्रकार की बतलाई गई है। एक तो बाहरी शरीर की शुद्धि, दूसरी भीतर की। बाहरी शरीर की शुद्धि जल से और मिट्टी से होती है और भीतर की शुद्धि मन को छल-कपट-रहित करने से होती है। अशुद्ध रहने की अपेक्षा बाहर की शुद्धि अच्छी मानी गई है और बाहरी शुद्धि की अपेक्षा भीतर की शुद्धि श्रेष्ठ है। दोनों ही प्रकार की शुद्धि करनेवाला ठीक ठीक शुद्ध माना जाता है, दूसरा नहीं।

शौच करने के समय मूत्रेन्द्रिय में एक बार, गुदेन्द्रिय में तीन बार, बायें हाथ में दश बार, दोनों को मिला कर सात बार और पैरों में तीन बार मिट्टी लगा कर धोना चाहिए। यह शुद्धि गृहस्थियों के लिए बतलाई गई है। ब्रह्मचारी को गृहस्थ से दूनी, वानप्रस्थ मनुष्य को गृहस्थ से तिगुनी और संन्यासी को गृहस्थ से चौगुनी शुद्धि करनी चाहिए। हर बार पानी इतना डालना चाहिए कि लगाई हुई मिट्टी बिलकुल धुल जावे।

जिन पुरुषों का अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता वे चाहे हज़ार बार मिट्टी लगावें या सैकड़ों भरे हुए घड़े अपने ऊपर डालें तो भी शुद्ध नहीं होते।

योगाभ्यास तथा तत्त्वज्ञान-विषय

प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, तर्क और समाधि ये छः योग के अङ्ग—भाग—माने गये हैं।

मनुष्य आनन्द की प्राप्ति के लिए प्राणिमात्र के साथ ईर्ष्या, द्वेष, वैर-विरोध छोड़ कर मित्र-दृष्टि करे। इस प्रकार की मैत्री से योगी ब्रह्मलोक में पहुँच जाता है।

सिर्फ़ वन में रहने से या अनेक शास्त्रों को पढ़ने विचारने से तथा व्रत, तप और यज्ञों के करने से ही किसी को योग सिद्ध नहीं होता। पद्मासन लगा कर बैठे रहने से, नाक के आगे के हिस्से को देखते रहने से और शास्त्र-विरुद्ध अनेक प्रकार की दिखावटी शुद्धि करने से ही किसी को योगी नहीं कह सकते। मन्त्र जपने से, मौन रहने से, धूनी लगाने से, अनेक प्रकार के पुण्य करने से और लोक-व्यवहारों में लगे रहने से भी कोई योगी नहीं हो सकता। किन्तु योग के विचार में तत्पर होने से, लगातार योग का अभ्यास करने से, योग ही में अटल श्रद्धा विश्वास होने से और बार बार संसारी विषयों से बड़ी उदासीनता और वैराग्य होने से योग सिद्ध होता है; नहीं तो नहीं। परमात्मा की चिन्ता का आनन्द, पवित्र रहने,

अपने आत्मा में क्रीड़ा करने से और सब प्राणियों में एक सी दृष्टि होने से योग सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं।

संसारी विषयों में जिसका चित्त लगा रहता है, वह कभी योगसिद्धि नहीं पा सकता। इसलिए योगी पुरुष विषयों की फँसावट को बड़े यत्न से छोड़ दे।

मन को संसार की वृत्तियों से हटाकर, निर्बल करके, क्षेत्रज्ञ आत्मा को परमात्मा के ध्यान में जोड़ देना ही मुक्ति है। यही असली योग है।

मन की मलिनता, अविद्या, चित्त की चञ्चलता, लज्जा और शङ्का—चित्त के इन व्यापारों को जीत कर योगी पुरुष, मन को अपने वश में करे। पाँच इन्द्रिय कुटुम्ब रूप हैं। उन इन्द्रियों में छठा मन बहुत बड़ा है। उसको जीतने में देवता, मनुष्य और राक्षस सभी असमर्थ होते हैं। कोई ही जीत पाता है। इसी का जीत लेना परम योग कहाता है।

इन्द्रियों को मन से हटा कर और मन को आत्मा में लगा कर, सब संसारी पदार्थों से रहित क्षेत्रज्ञ आत्मा को परमात्मा के ध्यान में लीन कर दे।

जो दूसरे के राज्य को ज़बरदस्ती छीन ले वह शूर नहीं कहाता किन्तु सच्चा शूर वही है जिसने सब इन्द्रियों को जीत लिया हो।

विषयों में फँसनेवाली सब इन्द्रियों को आत्मा में लीन करके जो योगी रमता है, उसी का सच्चा ध्यान और सच्चा ज्ञान है; बाक़ी सब प्रपञ्च है।

सांसारिक विषय-भोगों को त्याग कर आत्मा की शक्ति रूप से निश्चय कर, मन का निश्चल होना समाधि कहाता है।

योगी ब्रह्म को स्वयं ही जान सकता है। ब्रह्म-ज्ञान का आनन्द कहने में नहीं आ सकता। जो पुरुष योग-मार्ग से हीन होता है वह ब्रह्म को इस प्रकार नहीं जान सकता जिस प्रकार कि जन्म का अन्धा पुरुष घड़े का रूप नहीं देख सकता।

सदा योगाभ्यास करनेवाला पुरुष ब्रह्म को ख़ुद जान सकता है। अत्यन्त सूक्ष्म होने से सनातन परब्रह्म दिखाने के योग्य नहीं होता। उसे कोई किसी को दिखला नहीं सकता।

जिसने मन की मलिनता त्याग दी वह विषयों के साथ लड़ सकता है अर्थात् संन्यासी हो सकता है। जिसने मन की मलिनता नहीं छोड़ी वह संन्यासी होने के योग्य नहीं होता; क्योंकि उसको तो संसारी विषय ही दबा लेते हैं। जिस प्रकार तरङ्गों के उठने से जल एक क्षण भी नहीं ठहर सकता इसी प्रकार विषय-वासनाओं की हवा से जिसका मन चलायमान हो जाता है ऐसा संन्यासी भी बुरे कामों में ज़रूर फँस जाता है।

संन्यासी आठ प्रकार की बुरी वासनाओं से सदा ब्रह्मचर्य्य की रक्षा रक्खे; अकेला वन में विचरे, किसी के साथ अधिक प्रेम न करे, किन्तु परमात्मा को ही अपना प्रेमी समझे।

१६—गौतम-स्मृति

इस स्मृति में ब्रह्मचर्य्य आश्रम के धर्म, ब्रह्मचारी के नित्य नियम, आदि ऐसे विषय हैं जिनके विषय में हम पहली स्मृतियों में संक्षेप रूप से लिख आये हैं। इसलिए यहाँ, ग्रन्थ के अधिक बढ़ जाने के भय से, दुबारा उन विषयों पर लिखना हमने उचित नहीं समझा।

१७—शातातप-स्मृति

पूर्व जन्म में किये पापों के चिह्न

जिस मनुष्य ने प्रायश्चित्त के योग्य काम करके प्रायश्चित्त नहीं किया, वह मरने के बाद नरक भोग कर पाप-चिह्नों के सहित मनुष्य-योनि में जन्म लेता है।

पातक जतानेवाले चिह्न जन्म-जन्मान्तर तक पापियों को हुआ करते हैं। बार बार प्रायश्चित्त और पश्चात्ताप करने से पातक कम हो जाता है और चिह्न भी छूट जाते हैं।

महापातक का चिह्न सात जन्म तक, उपपातक का पाँच जन्म तक और मामूली पापों का चिह्न तीन जन्म तक ज़ाहिर होता रहता है।

बुरे कामों के करने से पैदा होनेवाले रोग जप, देवपूजन, हवन और दान आदि शुभ कर्मों के करने से कम हो जाते हैं।

पूर्वजन्म में किया हुआ पाप नरक भोगने के बाद व्याधि रूप बन कर दुःख देता है। उस रोग की शान्ति, जप आदि बड़े बड़े कठिन पुण्य कर्मों के करने से होती है।

कुष्ठ, क्षयी, संग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, मृगी, भगन्दर, भयानक फोड़ा, बवासीर और आँखों का नाश इत्यादि रोग, पहले जन्म में महापापों के करने से हुआ करते हैं। इन पापरूप रोगों की निवृत्ति के लिए बड़े बड़े दान, तप और यज्ञ करने चाहिएँ।

१८-वाशिष्ठ-स्मृति

धर्म का विचार



सुख चाहनेवाला मनुष्य अपने कल्याण के लिए धर्म को अच्छी तरह जाने, माने और सुने। धर्म को जान कर उसका सेवन करनेवाला मनुष्य इस लोक में प्रामाणिक धर्मात्मा कहाता है, उसकी अत्यन्त प्रशंसा होती है और जन्मान्तर में वह सुख भोगता है।

वेद और धर्म-शास्त्रों में मनुष्य के लिए जो कर्त्तव्य (करने योग्य काम) बतलाया गया है वही धर्म कहाता है। जिस बात का प्रमाण वेद और धर्म-शास्त्रों में न मिले उसके लिए शिष्ट (धर्मात्मा) मनुष्यों का आचरण ही प्रमाण मानना चाहिए। जिनको किसी प्रकार की इच्छा न हो, जो निर्लोभी तथा निष्काम हों ऐसे पुरुष शिष्ट कहाते हैं। धर्म वही है जो काम, लोभ आदि के कारण के बिना किया जाय।

आदर्श से पूर्व, कालक वन से पश्चिम, पारियात्र से उत्तर, हिमालय से दक्षिण और विन्ध्याचल से उत्तर में जो देश है वह आर्यावर्त्त कहाता है। उस आर्यावर्त्त देश में जो जो धर्म और आचार हैं वे सब विश्वास करने योग्य हैं। किन्हीं किन्हीं आचार्यों ने गङ्गा और यमुना के बीच के देश को आर्यावर्त्त

बतलाया है। और किन्हीं किन्हीं आचार्यों की राय है कि जहाँ तक करसायल हिरण स्वभाव से विचरते हैं वहाँ तक के देशों में ब्रह्मतेज की प्रधानता होने से धर्म की भूमि है।

तीनों वेदों की विद्या को जो भले प्रकार जाननेवाले हों, वे धर्म का तत्त्व जाननेवाले विद्वान् जिस धर्म को बतलावें उस धर्म को पवित्र करनेवाला और शोधक समझना चाहिए। उन विद्वानों के बतलाये हुए धर्म-मार्ग को अच्छे प्रकार श्रद्धापूर्वक मानना चाहिए और उसमें किसी प्रकार की शङ्का न करनी चाहिए।

विद्या कैसे पुरुष को पढ़ानी चाहिए ?

विद्या ने ब्राह्मण के पास आकर कहा कि हे ब्राह्मण ! तू मेरी रक्षा कर; मैं तेरा ख़ज़ाना हूँ। निन्दा करनेवाले, कठोर बोलनेवाले और लम्पट शिष्य को यदि मुझे न देगा तो मैं अपना प्रभाव या फल दिखलाऊँगी।

आचार्य स्वयं बहुत दुःख सहता हुआ और शिष्य को अमृत पिलाता हुआ, वेद को पढ़ाना रूप सत्य कर्म की पवित्र ध्वनि (आवाज़) से शिष्य के दोनों कान भर देता है और शिष्य की मानस (मन से पैदा हुई), वाचिक (वाणी से पैदा हुई), और कायिक (शरीर से होनेवाली), बुराइयों को नष्ट कर देता है। शिष्य को चाहिए कि ऐसे पढ़ानेवाले को माता-पिता के समान समझे; उससे कभी दुश्मनी न करे। क्योंकि उसने विद्या पढ़ाने के साथ साथ क्या क्या अच्छी बातें नहीं सिखलाईं ? अर्थात् सभी भलाई की बातें अध्यापक सिखला देता है।

जो शिष्य मन, वाणी तथा शरीर से अपने गुरु का आदर नहीं करते, वे जिस प्रकार गुरु की रक्षा करने के योग्य नहीं होते, इसी प्रकार पढ़ी हुई विद्या भी ऐसे कुशिष्यों की रक्षा नहीं करती।

विद्या कहती है कि हे ब्राह्मण! तुम जिसको शुद्ध, अप्रमादी, ब्रह्मचारी और बुद्धिमान् समझो और जो तुम—पढ़ानेवाले—से कभी द्रोह या विरोध न करता हो, ऐसे विद्या के ख़ज़ाने की रक्षा करनेवाले शिष्य को मुझे दो अर्थात् पढ़ाओ।

जिस प्रकार आग घास को जला देती है वैसे ही गुरु का अनादर करनेवाले शिष्य को तथा ऐसे कुशिष्य को पढ़ाने वाले अध्यापक को भी वेद-विद्या भस्म कर देती है। इसलिए, यथाशक्ति सम्मान न करनेवाले शिष्य को विद्या न पढ़ानी चाहिए।

आततायी के मारने में कोई बुराई नहीं

ऋषियों की राय है कि आततायी को मार डालने पर हत्या का कुछ भी पाप नहीं लगता। आततायी मनुष्य छः प्रकार के माने गये हैं। १–दूसरों के मकान में आग लगा देनेवाला, २–दूसरों को ज़हर देनेवाला, ३–हाथ में हथियार लेकर जो मारने को आता हो वह, ४–धन का नाश करने, छीनने या लूटनेवाला, ५–खेती का नाश कर देनेवाला और ६–किसी की स्त्री को ज़बरदस्ती छीन लेनेवाला या ज़बरदस्ती उसका पातिव्रत धर्म नष्ट करनेवाला।

वेद, वेदान्त का अच्छी तरह जाननेवाला पूरा विद्वान्

ब्राह्मण भी आततायी बन कर अपने मारने को आता हो तो उस को भी बिना ही विचारे मार डाले, क्योंकि ऐसी हालत में ब्रह्महत्या का पाप नहीं लगता। वेदपाठी, कुलीन, ब्राह्मण आततायी को जो मार डाले तो वह मारनेवाला ब्रह्महत्यारा नहीं होता, क्योंकि वहाँ तो क्रोध से क्रोध की लड़ाई मानी जाती है।

सदाचार की प्रशंसा

चारों वर्णों के लिए आचार ही सबसे बढ़ कर धर्म है। जिस पुरुष का अन्तःकरण सदाचार से पवित्र नहीं है वह इस लोक और परलोक में बरबाद हो जाता है।

तप करना, वेद पढ़ना, अग्निहोत्र करना और दान-दक्षिणा देना आदि काम, धर्म-रहित और सदाचारहीन पुरुष को कभी दुःख-सागर के पार नहीं कर सकते। यदि वेदाङ्गों सहित सभी वेदों को पढ़ा हो तो भी वे वेद, आचार-हीन पुरुष को पवित्र नहीं करते। आचार-हीन पुरुष को, पढ़े हुए वेदों की विद्या, मौत के समय इस प्रकार त्याग देती है जिस प्रकार पङ्ख निकल आने पर पक्षियों के बच्चे घोंसले छोड़ कर उड़ जाते हैं।

आचार-हीन पुरुष को, पढ़े हुए वेद, वेदाङ्ग और यज्ञविधि क्या प्रसन्न कर सकती हैं? कभी नहीं। जिस प्रकार अन्धे पुरुष को किसी दर्शनीय चीज़ के रूप से कुछ भी प्रसन्नता या आनन्द नहीं होता, इसी प्रकार आचारहीन को वेद-विद्या से कुछ भी सुख नहीं मिल सकता।

छल-कपट के साथ बर्ताव करनेवाले मायावी पुरुष को पढ़े

हुए वेद, पाप से पार नहीं करते। किन्तु अच्छे आचार-विचार का पुरुष वेद के कुछ ही मन्त्र अच्छी तरह श्रद्धापूर्वक, शुद्धि के साथ, पढ़े तो वे ही मन्त्र उसको पवित्र कर देते हैं।

दुराचारी पुरुष संसार में निन्दित, सदा दुःखी, रोगी, और थोड़ी उम्र का होता है। शुद्ध आचरण होने से धर्म, धन, लक्ष्मी, शोभा और प्रतिष्ठा आदि सब प्राप्त होते हैं और आचार बुरी बातों का नाश कर देता है।

सुरूप आदि सब लक्षणों से हीन होने पर भी जो पुरुष सदाचारी है, श्रद्धा करता है, और किसी की बुराई नहीं करता वह सौ वर्ष तक जी सकता है।

खाना, पीना, चलना, फिरना और दूसरों से मिलना इत्यादि काम धर्मात्मा पुरुष को बीच दरजे के नियम-बद्ध करने चाहिएँ। वाणी तथा बुद्धि के काम, तप, धन और आयु की अच्छे प्रकार रक्षा रखनी चाहिए। दिन में उत्तर की ओर मुँह करके और रात में दक्षिण की ओर मुँह करके मल-मूत्र का त्याग करना चाहिए। ऐसा करने से उम्र बढ़ती है। अग्नि, सूर्य्य, गाय, विद्वान्, चन्द्रमा, जलाशय, और सन्ध्या इन सबके सामने मुँह करके पेशाब करने से बुद्धि नष्ट हो जाती है। नदी, राख, गोबर, जोते हुए खेत, रास्ता, बोये हुए खेत और जमी हुई घास पर पेशाब न करना चाहिए। बादल की छाया होने पर, अँधेरा होने पर और जहाँ किसी प्रकार का कीड़े आदि का डर हो वहाँ, रात हो या दिन, जिस तरफ़ सुभीता देखे उसी ओर को मुँह करके मनुष्य मल-मूत्र का त्याग कर सकता है।

हाथ माँजने के लिए दरिया के किनारे से बालू या मिट्टी लेनी चाहिए। जल के भीतर से, देवस्थान से, किसी जानवर के बिल से, चूहे के रहने की जगह से और किसी पुरुष के हाथ माँजने की बची हुई या बरतन मलने से बची हुई मिट्टी, शुद्धि करने के लिए कभी न लेनी चाहिए।

पेशाब करने के बाद गुप्तेन्द्रिय को एक बार मिट्टी और जल से धोना चाहिए। बायें हाथ को तीन बार और दोनों हाथ मिला कर दो बार मिट्टी और जल से शुद्ध करना चाहिए। शौच के बाद एक बार गुप्तेन्द्रिय को और पाँच बार गुदेन्द्रिय को, दस बार बायें हाथ को और दोनों हाथों को मिला कर सात बार मिट्टी और जल से शुद्ध करना चाहिए।

तप करना, दान देना, गुरु आदि मान्यों का सत्कार करना, व्रत करना, नियम से रहना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, किसी की हिंसा न करना, किसी प्राणी को किसी प्रकार से दुःख न पहुँचाना और दया आदि धर्मकार्य्य करना द्विजों का परम कर्तव्य है। जो इन शुभ कामों को नहीं करता वह निकम्मा माना जाता है।

योगाभ्यास, तप, मन का दमन, दान, सच बोलना, शुद्ध रहना, दया, शास्त्रों का पढ़ना-लिखना, तत्त्व-ज्ञान का अभ्यास, संसारी व्यवहार का अच्छे प्रकार ज्ञान होना और आस्तिकता, ये लक्षण जिसमें पाये जावें वही सच्चा ब्राह्मण है। ब्राह्मणपन के ये चिह्न माने गये हैं।

जो मन को वश में रखते हों, वेदों को पढ़ने-लिखने, सुनने

से जिनके कान भर गये हों, जो जितेन्द्रिय हों, जो किसी प्राणी को किसी प्रकार भी सताने से दूर रहते हों, जिन्होंने दान लेने में अपना हाथ सिकोड़ रक्खा हो, वे ही सच्चे ब्राह्मण कहाते हैं। ऐसे मनुष्य दूसरों को सच्चे कल्याण का रास्ता बतला सकते हैं और संसार का बड़ा उपकार कर सकते हैं।

नास्तिक—वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा न करनेवाला,—दूसरों की चुग़ली करनेवाला, अपना उपकार करनेवाले की हानि करनेवाला और बहुत समय तक क्रोध को न त्यागनेवाला मनुष्य (किसी वर्ण का हो) अपने कर्म से चाण्डाल के समान है।

बहुत समय तक किसी प्राणी के साथ वैर रखना, दूसरों की बुराई करना, झूठ बोलना, वेद को दोष लगाना, दूसरों की चुग़ली करना और निर्दयी होना ये लक्षण शूद्रत्व को ज़ाहिर करनेवाले हैं। द्विजों को इन बातों से सदा अलग रहना चाहिए।

शरीर के अङ्ग तथा नाख़ून बजाना नहीं चाहिए। दाँतों से नाख़ून का काटना बुरा है। अञ्जलि से जल पीना भी बुरा है। पैरों या हाथों से जल को पीटना या ताड़ना न चाहिए। ईंट फेंक कर फल न गिराना चाहिए, फल से भी फल झाड़ कर न गिराना चाहिए। दम्भ या पाप कभी न करना चाहिए और धर्म-रहित कभी न होना चाहिए। वेद-विद्या को सर्वोपरि विद्या समझनी चाहिए। वैदिक विद्या ही संसार-सागर से पार करनेवाली है।

हाथ, पाँव, आँख तथा शरीर के दूसरे अङ्गों द्वारा कभी चपलता न करनी चाहिए। यह शिष्ट होने का सब से अच्छा रास्ता है। इस मार्ग पर चलनेवाला सभ्य कहलाता है।

धर्म का उपदेश और तृष्णा का त्याग

सदा धर्म करो; अधर्म नहीं। सदा सच बोलो; झूठ नहीं। दूरन्देश बनो; सङ्कुचित विचारवाले नहीं। परम अविनाशी, सब अनित्य पदार्थों में सदा परम तत्त्व रूप ईश्वर को देखो; असार संसार को नहीं। यही सच्चा कल्याण का मार्ग है; दूसरा नहीं।

वृद्ध अवस्था में बाल सफ़ेद हो जाते और दाँतभी गिर पड़ते हैं। परन्तु जीवन की और धन की तृष्णा बूढ़ी नहीं होती। जो शरीर के बूढ़े होते हुए भी बूढ़ी नहीं होती, जो तुच्छ बुद्धिवालों से कदापि त्यागी नहीं जा सकती तथा जो मरण तक साथ में लगी हुई पूरी व्याधि है, ऐसी दुःखदायिनी तृष्णा को त्यागने पर ही सुख हो सकता है। नहीं तो नहीं। तृष्णा दुःखसागर में डुबोनेवाली है। जहाँ तक हो सके तृष्णा को कम करना चाहिए। जो मनुष्य तृष्णा कम करता है वही सच्चा सुखी है।

❀ समाप्त ❀

—:o:—

बाल-कालिदास



लेखक

पण्डित रूपनारायण पाण्डेय



प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

बालसखा पुस्तकमाला—पुस्तक २४वीं ।

बाल-कालिदास

या

कालिदास की कहावतें



लेखक

पण्डित रूपनारायण पाण्डेय



प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९२२

संशोधित संस्करण] [मूल्य ।=)

Printed and published by Bishweshwar Prasad,
at The Indian Press Ltd., Benares-Branch.

विषय-सूची

कालिदास का परिचय ।



विकुल-गुरु कालिदास कौन थे ? कहाँ के रहने वाले थे ? कब हुए ? इन सब बातों का ठीक निश्चय करने के लिए कालिदास के किसी ग्रन्थ में कुछ सामान नहीं । इतने बड़े महाकवि का स्वार्थत्याग तो देखिए, उसने कहीं पर अपना परिचय या सन् संवत् कुछ नहीं दिया । कालिदास सचमुच स्वाभाविक महाकवि थे । उनके बनाये अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक का अँगरेज़ी में जो अनुवाद हुआ उस अँगरेज़ी अनुवाद के भी जर्मन भाषा में किये गये अनुवाद को पढ़ कर जर्मनी के कवि 'गेटे' ने कहा था कि "अगर कोई वसन्त के फूल और शरद ऋतु के फल पाने की अभिलाषा करे— अगर कोई मन को अपनी ओर खींचने वाली, अर्थात् वशीकरण की, वस्तु देखना चाहे—अगर कोई प्रसन्नता और प्रफुल्लता से मिलना चाहे—अगर कोई स्वर्ग और पृथ्वी को एक जगह देखने की इच्छा रक्खे, तो, वह कालिदास के अभिज्ञान-

शाकुन्तल को पढ़े।" कालिदास वास्तव में सरस्वती के अनन्य उपासक थे। संस्कृत भाषा के देवभाषा नाम को यथार्थ बनाने वाले कवियों में कालिदास का नाम सब से पहले नहीं तो वाल्मीकि और व्यास के बाद ही लिया जा सकता है। कालिदास के बनाये हुए इतने ग्रन्थ प्रचलित हैं—(१) रघुवंश, (२) मेघदूत, (३) कुमारसम्भव, (४) विक्रमोर्वशी, (५) मालविकाग्निमित्र, (६) अभिज्ञानशाकुन्तल, (७) श्रुतबोध, (८) ऋतुसंहार, (९) नलोदय। इनके सिवा ज्योतिर्विदाभरण, स्मृतिचन्द्रिका आदि और भी कई ग्रन्थ कालिदास के नाम से प्रचलित हैं। किन्तु उनको बहुत लोग कालिदासकृत नहीं मानते।

कालिदास की कविता में यह विशेषता है कि वह सरस और सरल ऐसी होती है कि सुनते ही समझ में आ जाती है। कालिदास की उपमा बड़ी अनूठी होती है। चाहे जिधर से—चाहे जिस तरह से देखिए, वह चुभ जाती है। कालिदास की कविता को जो कोई पढ़ेगा उसे कहना ही पड़ेगा कि शेक्सपियर के सिवा कालिदास के पास आसन पाने वाला और कवि पृथ्वी पर नहीं हुआ। शेक्सपियर मनुष्य के हृदय के भावों को प्रकट करने में अगर बढ़ा चढ़ा है तो कालिदास भी वर्णन करने में उससे बहुत बढ़ कर हैं। कालिदास की कविता में भाव तो अच्छे होते ही हैं लेकिन भाषा भी ऐसी होती है कि कानों में अमृत की वर्षा करती है। उनकी उपमायें और वर्णन तो चमत्कार से भरे पड़े हैं ही, लेकिन उनमें बहुत सी विज्ञान (साइंस) की

बातें भी उनकी बढ़ी चढ़ी जानकारी की साक्षी दे रही हैं। गुरुत्वाकर्षण-शक्ति (Gravitation), चीज़ों के कड़े होने का कारण, जलकण के संयोग से इन्द्रधनुष की उत्पत्ति; धुआँ, पानी, हवा और गर्मी के मेल से बादल का बनना; चन्द्रमा और सूर्य्य के आकर्षण से समुद्र में ज्वार-भाटा का आना, सूर्य्य की किरणों से उत्पन्न चन्द्रमा का प्रकाश, पृथ्वी की परछाईं पड़ने से सूर्य-ग्रहण और चन्द्रग्रहण का होना, पृथ्वी की परछाईं का चन्द्रमा में कलंक-कालिमा-रूप से दिखाई पड़ना, गर्भ की दशा में माता-पिता जो सोचते विचारते या करते हैं वैसा ही पुत्र होता है—इत्यादि विज्ञान की बातें कालिदास के ग्रंथों में भरी पड़ी हैं। जब इन बातों का कालिदास ने समय समय पर अपनी कविता में उल्लेख किया है तब यह मानना ही पड़ेगा कि उन्हें इन बातों का पूरा पूरा ज्ञान था। इन बातों के सिवा कालिदास को भूगोल का भी ज्ञान था। उन्होंने मेघदूत में पर्वतों, नदियों और देशों का बड़ा विशद और सुन्दर वर्णन किया है। रघुवंश में भी रघु की दिग्विजययात्रा के प्रसंग में फ़ारिस और चीन आदि देशों का अच्छा और ठीक ठीक वर्णन पाया जाता है।

इतना सब होने पर भी कालिदास जी बड़े ही नम्र थे। उनमें अभिमान का लेश भी न था। उनका यह गुण बालकों के बड़े काम का है। महाकवि कालिदास रघुवंश के आरम्भ में लिखते हैं—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥
मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।
प्रांशुलभ्ये फले मोहादुद्‌बाहुरिव वामनः ॥

अर्थात् कहाँ यह सूर्य से उत्पन्न वंश! और कहाँ मेरी थोड़ी पूँजी वाली बुद्धि! सच तो यों है कि मोहवश मैं डोंगी से समुद्र पार करना चाहता हूँ। मैं मन्दमति, कवियों के यश की चाह में, वैसे ही हँसा जाऊँगा जैसे कोई बौना आदमी लंबे आदमी के पाने लायक़ ऊँचे फल को तोड़ने के लिए उचकता हो।

कालिदास किस समय हुए—इस बारे में लोगों की जुदी जुदी राय है। कोई उनको ईसा की पाँचवीं सदी में मानता है, और कोई छठी सदी में मानता है और कोई पहली सदी में मानता है। लेकिन उनका पहली सदी में होना ही बहुत सम्भव है। क्योंकि यह बात सिद्ध है कि वह विक्रमादित्य महाराज, जिनका संवत् चलता है, उनकी सभा में थे। विक्रमादित्य प्रथम ईसा की पहली सदी के भी एक सौ वर्ष पूर्व थे। इस हिसाब से कालिदास ईसा के सौ वर्ष पहले के ठहरते हैं।

कालिदास कौन थे—इस विषय में कहावत प्रसिद्ध है कि शारदानन्दन नाम के एक राजा की कन्या विद्यावती बड़ी ही पण्डिता थी। बड़े बड़े पण्डित उससे शास्त्रार्थ में परास्त हो गये। पण्डितों ने मिलकर सलाह की कि इस

राजकन्या का विवाह किसी महामूर्ख के साथ कराना चाहिए ; क्योंकि यह हम लोगों का अपमान करती है। पण्डितों ने मूर्ख की खोज में फिरते फिरते एक जगह देखा कि एक चरवाहा वृक्ष पर चढ़ा हुआ जिस डाल पर खड़ा था उसीको काट रहा था। पण्डितों ने सोचा कि इससे बढ़ कर मूर्ख कौन होगा ? यह नहीं सोचता कि डाल के साथ ही आप भी पृथ्वी पर गिर पड़ेगा। पण्डितों ने किसी तरह राज़ी करके उस मूर्ख को राजसभा में उपस्थित किया और कहा कि यह बड़े भारी पण्डित और हमारे गुरु हैं। राजकुमारी से शास्त्रार्थ करने आये हैं। मगर यह मूक-शास्त्रार्थ करेंगे; कुछ दिनों के लिए इन्होंने मौनव्रत धारण कर लिया है। राजकन्या शास्त्रार्थ के लिए राज़ी हो गई। राजकन्या ने एक उँगली उठाई; चरवाहे ने दो उँगलियाँ उठाईं। राजकुमारी का मतलब यह था कि ईश्वर एक है। चरवाहा समझा कि वह एक आँख फोड़ने को कह रही है। उसने दो उँगलियाँ दिखाईं कि मैं तुम्हारी दोनों आँखें फोड़ दूँगा। राजकुमारी समझी कि वह कह रहा है कि ईश्वर एक नहीं, प्रकृति-पुरुष दो हैं। राजकुमारी ने तीन उँगलियाँ उठाईं। उसका मतलब यह था कि माया के तीन गुणों से सृष्टि हुई है। चरवाहा समझा कि यह भी मारने का इशारा है, उसने थप्पड़ दिखाया। राजकुमारी समझी, वह कहता है कि तीन गुण नहीं, पृथ्वी, जल, तेज, वायु,

आकाश—इन पाँच तत्त्वों से सारी सृष्टि है। इस प्रकार विचार में राजकन्या परास्त हुई और चरवाहा जीत गया। प्रतिज्ञा के अनुसार विद्यावती को उसी मूर्ख से ब्याह करना पड़ा। विद्यावती के महल में चरवाहा गया। इतने में महल के पास ऊँट बोला। विद्यावती ने मूर्ख से पूछा—कस्य शब्दमेतत् ? (किस की यह आवाज़ है ?), मूर्ख बोला 'उष्ट'। विद्यावती ने समझा सुनने में भूल हुई। फिर पूछा। अब की मूर्खराज बोले 'उट'। बात छिपी नहीं रही। शुद्ध उष्ट्र शब्द न कह सकने से मूर्ख की मूर्खता खुल गई। विद्यावती दुःख के मारे बेहोश हो गई। मूर्ख चरवाहा भी लज्जित होकर महल से चल दिया।

सरस्वती की आराधना और जी लगा कर विद्याभ्यास करने से वही मूर्ख कुछ दिन में महाकवि कालिदास हो गया और फिर लौट कर विद्यावती के पास आया। विद्यावती ने किवाड़ न खोल कर पूछा—अस्ति कश्चिद्वाग्विशेषः ? (अर्थात् वाणी में कुछ विशेषता है ?) कालिदास ने इस वाक्य के तीन शब्द लेकर तीन महाकाव्य बनाये। 'अस्ति' से आरम्भ करके 'कुमारसम्भव' बनाया। 'कश्चित्' से आरम्भ करके 'मेघदूत' बनाया, और 'वाक्' से आरम्भ करके 'रघुवंश' बनाया। उसके बाद विद्यावती बहुत प्रसन्न हुई। कालिदास विक्रमादित्य की सभा के प्रधान रत्न समझे जाने लगे।

इस कालिदास की कथा में हम दो बातें ऐसी पाते हैं जो बालकों के बड़े काम की हैं। १—यह कि चाहे जितना मूर्ख मोटी समझ का मनुष्य हो, वह मन लगा कर मेहनत करे तो कुछ ही दिनों में भारी पण्डित बन सकता है। २—यह कि अपढ़ आदमी का कोई आदर नहीं करता, स्वयम् अपनी स्त्री भी अनादर की दृष्टि से देखती है। इस लिए मन लगा कर पढ़ना लिखना चाहिए। इनके सिवा कालिदास के चरित्र से तीसरी शिक्षा जो मिलती है उसकी ओर हम ऊपर इशारा कर ही आये हैं। अर्थात् बड़ी भारी योग्यता प्राप्त करके भी नम्रता गुण को न छोड़ना चाहिए।

रूपनारायण पाण्डेय।



वक्तव्य

यह बतलाने की तो कोई ज़रूरत ही नहीं कि बालकों का हृदय मोम की तरह सुकुमार होता है—उस पर जो छाप पड़ जाती है वह अन्त तक नहीं मिटती। उस पर किसी भाव या विचार को अंकित कर देना बहुत ही सहज हुआ करता है। बालक लोग बचपन में जो याद कर लेते हैं वह उन्हें कभी नहीं भूलता। यह भी देखा गया है कि लड़कपन में मनुष्य जो देखता या पढ़ता है उसीके अनुसार कार्य करने की प्रवृत्ति उसमें प्रबल होती है। यही विचार कर मैंने महाकवि कालिदास के सब ग्रंथों से उनकी चुनी हुई उत्तम कहावतों का संग्रह कर यह पुस्तक बालकों के आगे उपस्थित की है। इसकी सब कहावतें अनमोल रत्न हैं। उनमें सामाजिक, नैतिक और प्राकृतिक 'सत्यों' का बड़ी खूबी के साथ वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ को जो बालक पढ़ेंगे उनकी न केवल अच्छे कामों की ओर रुचि ही होगी, वरन् वे थोड़े ही परिश्रम में बहुत सा लौकिक ज्ञान प्राप्त कर

लेंगे। इसके सिवा वे जिस सभा में इसमें की कोई समयानुकूल उक्ति कह देंगे वहाँ लोग उनकी प्रशंसा किये बिना न रह सकेंगे।

इस संग्रह का पठन-पाठन प्रचलित होने से एक लाभ यह भी होगा कि वे ही बालक बड़े होने पर महाकवि की सारी ग्रन्थावली पढ़ने का प्रयत्न अवश्य करेंगे, और उससे उनकी प्रतिभा तथा विद्याबुद्धि का विकास होना अवश्यम्भावी है।

इस संग्रह को बालकों के लिए उपयोगी बनाने में कोई कसर नहीं रक्खी गई है। हर एक कहावत के नीचे सरल भाषा में उस कहावत का सारांश भी विस्तार के साथ लिख दिया गया है, जिसे पढ़ कर बालक आसानी से सब मतलब समझ लेंगे, और यह भी जान जायँगे कि किस मौक़े के लिए कौन कहावत है।

कहने को तो यह संग्रह बालकों के लिए किया गया है, लेकिन इससे बड़े और सयाने भी लाभ उठा सकते हैं। जो महाशय संस्कृत भाषा नहीं जानते वे इस संग्रह को पढ़ कर कालिदास की अमृत-मधुर कविता का रस कुछ कुछ पा सकेंगे। इन कहावतों को कण्ठस्थ कर लेने से मनुष्य सहज ही सभाचतुर बन सकेगा।

मुझे पूर्ण आशा है कि कम से कम हिन्दी को अपनी मातृभाषा समझ कर गौरव का अनुभव करने वाले सज्जन तो अवश्य ही इस पुस्तक की एक एक प्रति ख़रीद कर

अपने बालकों के हाथ में दे देंगे। रहे सयाने लोग, उनसे भी मैं अनुरोध करता हूँ कि वे अवश्य इस पुस्तक को ख़रीद कर कविवर कालिदास की कविता का रसास्वादन करें।

विनीत

रूपनारायण पाण्डेय।

बाल-कालिदास

—:o:—

रघुवंश

प्रथम सर्ग

(१)

हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा ॥ १० ॥

सोना खोटा है या खरा, इसका निर्णय आग में तपने से ही होता है ॥ १० ॥

तात्पर्य यह कि किसी आदमी या वस्तु के अच्छे या बुरे होने का निर्णय कठोर परीक्षा से ही होता है।

(२)

सन्ततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्म्मणे ॥ ६९ ॥

शुद्ध वंश (घराने) की संतान, इस लोक और परलोक, दोनों लोकों में कल्याण का कारण होती है ॥ ६९ ॥

तात्पर्य यह कि जो असल बाप से पैदा है वह औलाद, इस लोक में भी अपने बाप-दादे का नाम बढ़ाती है और परलोक में भी श्राद्ध आदि करके उन्हें (बाप-दादों को) प्रसन्न रखती है।

(३)

प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः ॥ ७६ ॥

जो पूजने योग्य हैं उनकी पूजा न करने से मङ्गललाभ में रुकावट पड़ती है ॥ ७६ ॥

—:०:—

तात्पर्य यह कि जो लोग मङ्गल की कामना रखते हों उन्हें पूजनीय पुरुष का कभी अनादर न करना चाहिए ।

द्वितीय सर्ग

(४)

न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः
शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ॥ ३४ ॥

वायु का वेग यद्यपि बड़े बड़े वृक्षों को उखाड़ कर फेंक सकता है, मगर पहाड़ से उसका कुछ वश नहीं चलता ॥ ३४ ॥

तात्पर्य यह कि चाहे कोई कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, परन्तु जो उससे अधिक शक्ति वाला है उसका वह कुछ नहीं बना विगाड़ सकता ।

(५)

शस्त्रेण रक्ष्यम् यदशक्यरक्षं
न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति ॥ ४० ॥

जिसकी रक्षा करने का भार अपने ऊपर है उसकी रक्षा

अगर शस्त्र से न की जा सके तो वह शस्त्रधारियों के लिए निन्दा की बात नहीं हो सकती ॥ ४० ॥

(६)

महीतलस्पर्शनमात्रभिन्न
मृद्धं हि राज्यम् पदमैन्द्रमाहुः ॥ ५० ॥

समृद्ध (भरा पूरा) राज्य इन्द्रपद के समान ही कहलाता है। अन्तर केवल यही है कि वह पृथ्वी पर होता है ॥ ५० ॥

(७)

क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः
क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ़ः ।
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः
प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा ॥ ५३ ॥

शस्त्र के घाव, अथवा विपत्ति से जो निर्बलों को बचावे उसी को 'क्षत्र' कहते हैं। 'क्षत्र' शब्द का यही अर्थ जगत में प्रसिद्ध है। जो क्षत्र (क्षत्रिय) इस (अर्थ) के विपरीत आचरण करता है, अर्थात् निर्बलों को विपत्ति से नहीं बचाता, उसका राज्य, या निन्दा-मलिन जीवन, किस काम का ? अर्थात् उसने अपने कर्त्तव्य का पालन न करके अगर राज्यभोग किया ही, अथवा बहुत दिनों तक वह जिया ही तो उससे क्या ? उसका वह निन्दित राज्यभोग और कलङ्कित जीवन वृथा है! ॥ ५३ ॥

(८)

स्थातुं नियोक्तुर्न हि शक्यमग्रे
विनाश्य रक्ष्यम् स्वयमक्षतेन ॥ ५६ ॥

जिस चीज़ की रखवाली का भार अपने ऊपर है उसको (अपने आगे ही) नष्ट कराकर, आप बेदाग़ शरीर लेकर, सेवक, स्वामी के आगे नहीं जा सकता ॥ ५६ ॥

(९)

सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुः * * * ॥ ५८ ॥

पण्डितों या सज्जनों का कहना है कि बातचीत होते ही (विद्वानों में) परस्पर एक प्रकार का सम्बन्ध (मित्रता) हो जाता है ॥ ५८ ॥

तृतीय सर्ग

(१०)

क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति ॥ २९ ॥

अच्छे काम में किया गया परिश्रम अवश्य ही सफल होता है ॥ २९ ॥

(११)

पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वराः
मलीमसामाददते न पद्धतिम् ॥ ४६ ॥

सर्वसाधारण को वेदोक्त मार्ग दिखलाने वाले समर्थ

पुरुष कभी मैले मन (नीच विचार) वालों की राह पर नहीं चलते ॥ ४६ ॥

अर्थात् जिनको साधारण लोग अपना आदर्श मानते हैं वे महापुरुष कभी बुरे काम नहीं करते।

(१२)

यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः * * * ॥ ४८ ॥

जिनका यश ही सर्वस्व है उन्हें शत्रुओं से अपने यश की सर्वदा रक्षा करनी चाहिए ॥ ४८ ॥

अर्थात् हमेशा इससे सावधान रहना चाहिए कि शत्रु लोग झूठी निन्दा फैला कर बदनाम करने का अवसर न पासकें।

(१३)

पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते ॥ ६२ ॥

मनुष्य के गुण सब जगह अपने पद को प्राप्त कर लेते हैं ॥ ६२ ॥

अर्थात् गुणी आदमी जहाँ जाता है वहीं उसकी प्रतिष्ठा होती है।

चतुर्थ सर्ग

(१४)

प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम् ॥ ६४ ॥

नम्रता ही महापुरुषों के क्रोध को शान्त करने का सहज उपाय है ॥ ६४ ॥

(१५)

आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव ॥ ८६ ॥

बादलों की तरह सज्जनों का 'लेना' औरों को देने ही के लिए होता है ॥ ८६ ॥

अर्थात् बादल जिस तरह वर्षा करने के लिए ही समुद्र से जल लेते हैं वैसे सज्जन लोग भी दूसरों (दीन दुखियों) को देने के लिए ही किसीसे कुछ लेते (या माँगते) हैं; अपने लिए नहीं ।

पञ्चम सर्ग

(१६)

सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः
कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा ॥ १३ ॥

सूर्य के तपते रहने पर (भी) अन्धकार कैसे लोगों के देखने में बाधा डाल सकता है ? ॥ १३ ॥

तात्पर्य यह है कि प्रतापशाली राजा के रहते प्रजा को किसी तरह का कष्ट नहीं होता ।

(१७)

पर्य्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः
कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः ॥ १६ ॥

पारी पारी करके देवता लोगों के पी जाने से (क्योंकि चन्द्रमा अमृतमय है, और अमृत ही देवता लोगों का भोजन है)जो चन्द्रमा की कलायें घटती हैं, वह उनका घटना बढ़ने की अपेक्षा सराहनीय है ॥ १६ ॥

तात्पर्य यह कि अपनी जातिवालों का दुःख मिटाने में होनेवाली दरिद्रता अमीरी से कहीं बढ़ कर है।

(१८)

* * * निर्गलिताम्बुगर्भम्
शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि ॥ १७ ॥

पानी की वर्षा करके ख़ाली होगये शरद् ऋतु के बादल को चातक भी (पानी के लिए) नहीं दिक़ करता॥ १७॥

अर्थात् दान करने से दरिद्रावस्था को प्राप्त दानी मनुष्य को, समझदार लोग, आप अत्यन्त दरिद्र होकर भी, माँग माँग कर पीड़ा नहीं पहुँचाते।

(१९)

उष्णत्वमग्न्यातपसंप्रयोगात्
शैत्यं हि यत् सा प्रकृतिर्जलस्य ॥ ५४ ॥

आग या घाम लगने से पानी भले ही गर्म होजाय, किन्तु उसका स्वभाव ठंडापन ही है॥ ५४ ॥

अर्थात् बड़े लोगों का स्वभाव शान्त रहना ही है। यदि किसी कारण से कभी उनको क्रोध आता भी है

तो वह बहुत देर तक नहीं ठहरता ; वे शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं ।

षष्ठ सर्ग

(२०)

नक्षत्रताराग्रहसङ्कुलाऽपि
ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः ॥ २२ ॥

नक्षत्र, तारागण और ग्रहों के भरे रहने पर भी चन्द्रमा से ही रात उजियाली होती है ॥ २२ ॥

अर्थात् छोटे छोटे राजा ज़िमींदार और रईसों के रहते भी सम्राट् से ही पृथ्वी सनाथ होती है ।

(२१)

* * *भिन्नरुचिर्हि लोकः ॥ ३० ॥

हर एक आदमी की रुचि एक दूसरे से भिन्न हुआ करती है ॥ ३० ॥

(२२)

न हि प्रफुल्लं सहकारमेत्य
वृक्षान्तरं काङ्क्षति षट्पदाली ॥ ६९ ॥

ख़ूब फूले हुए आम के पेड़ को पाकर फिर भ्रमरों के झुण्ड दूसरे वृक्ष पर जाना नहीं चाहते ॥ ६९ ॥

तात्पर्य यह कि यथेष्ट (काफ़ी) आश्रय को पाकर फिर कोई अन्य आश्रय की इच्छा नहीं करता ।

(२३)

रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन ॥ ७९ ॥

मणि और काञ्चन (सुवर्ण) का संयोग हो ॥ ७९ ॥ अर्थात् योग्य का सम्बन्ध योग्य से ही अच्छा और उचित होता है सब लोग ऐसे ही सम्बन्ध को पसंद करते हैं ।

सप्तम सर्ग

(२४)

मनो हि जन्मान्तरसङ्गतिज्ञम् ॥ १५ ॥

मनुष्य का मन पूर्वजन्म के संबंध को सहज ही जान लेता है ॥ १५ ॥

तात्पर्य यह कि अपना मन जिस किसी को देख कर अकारण स्नेह करने लगे उससे अवश्य ही पूर्वजन्म का कोई संबंध है—ऐसा समझना चाहिए ।

अष्टम सर्ग

(२५)

प्रतिकारविधानमायुषः
सति शेषे हि फलाय कल्पते ॥ ४० ॥

आयु (ज़िंदगी) अगर कुछ शेष होती है तभी दवा आदि उपाय कारगर होते हैं ॥ ४० ॥

अर्थात् अगर ज़िंदगी नहीं है तो लाख दवा-दारू और दौड़-धूप करो, परंतु फल कुछ नहीं होता ।

(२६)

अभितप्तमयोऽपि मार्दवं
भजते कैव कथा शरीरिषु ॥ ४३ ॥

जब इतना कड़ा लोहा भी आँच से गल जाता है तब शरीरधारी मनुष्य की तो कोई बात ही नहीं है ॥ ४३ ॥

अर्थात् कड़े से कड़े हृदय का आदमी भी विपत्ति की आँच में अधीर हो उठता है ।

(२७)

विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेत्
अमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥ ४६ ॥

ईश्वर की इच्छा से कहीं विष भी अमृत का काम कर जाता है, और कहीं अमृत भी विष बन जाता है ॥ ४६ ॥

अर्थात् ईश्वर की इच्छा से कहीं बुराई में भलाई और कहीं भलाई में बुराई पैदा हो जाती है ।

(२८)

धिगिमां देहभृतामसारताम् ॥ ५१ ॥

देहधारियों की ऐसी असारता (अभी हैं, घड़ी भर में मर गये) को धिक्कार है ! ॥ ५१ ॥

(२९)

वसुमत्या हि नृपाः कलत्रिणः ॥ ८३ ॥

भू-पति (राजा) लोगों की स्त्री पृथ्वी ही है ॥ ८३ ॥

तात्पर्य यह कि राजा लोगों को अपनी स्त्री से भी बढ़ कर पृथ्वी के पालन या रक्षा का ध्यान रखना चाहिए।

(३०)

परलोकजुषां स्वकर्मभिः
गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम् ॥ ८४ ॥

पर-लोक जाने वाले जीवों की गतियाँ, उनके कर्मों के अनुसार भिन्न भिन्न मार्गों में हुआ करती हैं ॥ ८५ ॥

(३१)

स्वजनाश्रु किलातिसन्ततं
दहति प्रेतमिति प्रचक्षते ॥ ८६ ॥

लोग कहते हैं कि अत्यंत दुःख से विलाप कर रहे स्वजनों के आँसू प्रेत (मृतक) को जलाते हैं ॥ ८६ ॥

(३२)

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां
विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः ॥
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्
यदि जंतुर्ननु लाभवानसौ ॥ ८७ ॥

पंडितों का कहना है कि मरना ही शरीरधारियों की प्रकृति (उनके लिए स्वाभाविक) है, और जीवित रहना ही विकृति (अस्वाभाविक) है। घड़ी भर भी इस संसार में साँस लेना (जीते रहना) ग़नीमत समझना चाहिए ॥ ८७ ॥

तात्पर्य यह कि हर घड़ी मौत सिर पर सवार है। किसी का अचानक मर जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं, बल्कि जीवित रहना ही विचित्र है।

(३३)

अवगच्छति मूढचेतनः
प्रियनाशं हृदि शल्यमर्पितम् ॥
स्थिरधीस्तु तदेव मन्यते
कुशलद्वारतया समुद्धृतम् ॥ ८८ ॥

जो लोग नासमझ (मोहमुग्ध) हैं वे ही किसी प्रिय जन के मरण को हृदय में लगने वाली कटारी समझते हैं। किंतु जो लोग ज्ञानी महापुरुष हैं वे उसी (प्रियजन-वियोग) को कल्याण का द्वार खुलना मानते हैं ॥ ८८ ॥

अर्थात् साधारण लोग ही आत्मीयवियोग में रोते और सिर पटकते हैं। किंतु जो लोग मृत्यु के तत्त्व को जानते हैं वे उससे विचलित नहीं होते।

(३४)

स्वशरीरशरीरिणावपि
श्रुतसंयोगविपर्ययौ यदा ॥
विरहः किमिवानुतापयेद्
वद बाह्यैर्विषयैर्विपश्चितम् ॥ ८९ ॥

जब अपने शरीर और शरीर में स्थित आत्मा का ही परस्पर संयोग और वियोग होते देखा जाता है,

तब बतलाओ, विद्वान् लोग पुत्र-स्त्री आदि बाहरी विषयों के वियोग में क्यों शोक करें ? ॥ ८९ ॥

मतलब यह कि जब अपना ही शरीर बने रहने का कोई ठिकाना नहीं—अपनी ही ज़िंदगी का कोई भरोसा नहीं, तब औरों के न रहने या मर जाने का ही शोक क्या ?

(३५)

द्रुमसानुमतां किमंतरं
यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः ॥ ९० ॥

यदि वायु के वेग से वृक्ष और पहाड़ दोनों ही विचलित हो उठें तो फिर उनमें अंतर ही क्या रहा ? ॥ ९० ॥

मतलब यह कि विषयवासना और दुःख शोक आदि के घात-प्रतिघात से साधारण लोग ही हिल उठते हैं, बड़े लोग नहीं ।

नवम सर्ग

(३६)

अपथे पदमर्पयंति हि
श्रुतवंतोऽपि रजोनिमीलिताः ॥ ७४ ॥

कभी कभी ज्ञानी लोग भी रजोगुण (वासना) से (ज्ञान—) दृष्टि रुँध जाने पर कुमार्ग में पैर रख देते हैं ॥ ७४ ॥

(३७)

कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो
बीजप्ररोहजननीं ज्वलनः करोति ॥ ८० ॥

खेत में लगी हुई आग धरती को जला कर भी उसकी उपजाऊ शक्ति को बढ़ाती है ॥ ८० ॥

तात्पर्य यह कि बड़े लोगों का दिया हुआ दण्ड उस समय कड़ा जान पड़ने पर भी अन्त को अच्छा फल करता है।

दशम सर्ग

(३८)

अव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः
कार्य्यसिद्धेर्हि लक्षणम् ॥ ६ ॥

किसी काम में किसी रुकावट का न पड़ना उस काम की सिद्धि का सच्चा लक्षण है ॥ ६ ॥

(३९)

स्वयमेव हि वातोऽग्नेः
सारथ्यं प्रतिपद्यते ॥ ४० ॥

हवा आप ही अग्नि की सहायता करती है ॥ ४० ॥

मतलब यह कि सच्चे मित्रों से कहना नहीं पड़ता; वे आप ही सहायता करते हैं।

एकादश सर्ग

(४०)

तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते ॥ १ ॥

तेजस्वी पुरुषों की अवस्था नहीं देखी जाती ॥ १ ॥

मतलब यह कि जो होनहार या प्रतापी हैं वे छुटपन से ही अपना चमत्कार दिखाने लगते हैं ।

(४१)

किं महोरगविसर्पिविक्रमो
राजिलेषु गरुडः प्रवर्तते ॥ २७ ॥

बड़े बड़े विषधारी नागों पर झपटने वाला गरुड़ पनिया (पानी के) साँप पर वार नहीं करता ॥ २७ ॥

मतलब यह कि जो लोग पराक्रमी हैं वे बराबरी वाले शत्रु से ही भिड़ते हैं; अपने से छोटों पर हमला नहीं करते ।

(४२)

सद्य एव सुकृतां हि पच्यते
कल्पवृक्षफलधर्मिकाङ्क्षितम् ॥ ५० ॥

पुण्यात्मा लोगों के मनोरथ कल्पवृक्ष की तरह शीघ्र फलते हैं ॥ ५० ॥

(४३)

पावकस्य महिमा स गण्यते
कक्षवज्ज्वलति सागरेऽपि यः ॥ ७५ ॥

अग्नि की महिमा यही है कि वह सूखी घास के समान सागर के जल में भी जलता है ॥ ७५ ॥

तात्पर्य यह कि सच्ची शक्ति रखने वाला आदमी साधारण शत्रु की तरह प्रबल शत्रु को भी परास्त कर सकता है ।

(४४)

खातमूलमनिलो नदीरयैः
पातयत्यपि मृदुस्तटद्रुमम् ॥ ७६ ॥

नदी की लहरों से जिसकी जड़ कट गई है उस किनारे पर के पेड़ को हलकी हवा भी गिरा देती है ॥ ७६ ॥

तात्पर्य यह कि अन्य कारणों से दुर्बल हो रहे शत्रु को बहुत ही सहज में जीता जा सकता है ।

(४५)

केवलो पि सुभगो नवाम्बुदः
किं पुनस्त्रिदशचापलाञ्छितः ॥ ८० ॥

नवीन मेघ-माला एक तो यों ही बहुत भली मालूम पड़ती है, दूसरे अगर उसमें इन्द्र-धनुष भी हो तो फिर उसकी शोभा का क्या कहना है ॥ ८० ॥

तात्पर्य यह कि एक स्वाभाविक सुन्दर वस्तु से अगर दूसरी भी मनोहर वस्तु मिल जाती है तो फिर मणिकाञ्चन-संयोग हो जाता है ।

(४६)

निर्जितेषु तरसा तरस्विनां
शत्रुषु प्रणतिरेव कीर्तये ॥ ८९ ॥

अपने पराक्रम से जीते गये शत्रु से नम्र व्यवहार करना ही शूर वीरों के लिए गौरव की बात है ॥ ८९ ॥

द्वादश सर्ग

(४७)

काले खलु समारब्धाः
फलं बध्नन्ति नीतयः ॥ ६९ ॥

समय पर जिसका प्रयोग किया जाता है वही नीति (पालिसी) सफल होती है ॥ ६९ ॥

चतुर्दश सर्ग

(४८)

अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थात्
यशोधनानां हि यशो गरीयः ॥ ३५ ॥

जो लोग यशोधन (यश को ही सर्वस्व समझने वाले) हैं, उन्हें, सांसारिक सुखभोग की सामग्री की कौन कहे, अपने शरीर से भी अधिक यश प्यारा होता है ॥ ३५ ॥

(४६)

छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वे-
नारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः ॥ ४० ॥

संसार के लोगों ने पृथ्वी की छाया को भी निर्मल चन्द्रमा का कलङ्क मान रक्खा है ॥ ४० ॥

मतलब यह कि सर्वथा शुद्ध लोगों के लिए भी संसार की बदनामी से बचना कठिन है ।

(५०)

असर्पणः शोणित-काङ्क्षया किं
पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः ॥ ४१ ॥

असहनशील सर्प क्या रुधिर पीने की इच्छा से पैर से कुचलने वाले को काटता है ? ॥ ४१ ॥

मतलब यह कि तेजस्वी लोग, किसी लाभ के लिए नहीं, वरन् अपने अपमान का बदला लेने के लिए, शत्रु या अपमान करने वाले पर आक्रमण करते हैं ।

(५१)

आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया ॥ ४६ ॥

गुरु या बड़ों की आज्ञा को बिना सोचे विचारे मान लेना चाहिए ॥ ४६ ॥

पञ्चदश सर्ग

(५२)

धर्म्मसंरक्षणार्थाय
प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः ॥ ४ ॥

धर्म की रक्षा करने के लिए ही पृथ्वी पर भगवान् का अवतार होता है ॥ ४ ॥

(५३)

जयो रन्ध्रप्रहारिणाम् ॥ १७ ॥

जो लोग कोई छिद्र पाकर उस मौक़े पर चोट मारते हैं वे अवश्य अपने शत्रु पर जय पाते हैं ॥ १७ ॥

षोडश सर्ग

(५४)

प्रह्वेष्वनिर्बन्धरुषो हि सन्तः ॥ ८० ॥

सज्जनों का क्रोध नम्र मनुष्य पर अधिक समय तक नहीं रहता ॥ ८० ॥

सप्तदश सर्ग

(५५)

वयोरूपविभूतीनामेकैकं मदकारणम् ॥

* * * ॥ ४३ ॥

जवानी, सुन्दरता, और ऐश्वर्य, इनमें से हर एक में मनुष्य को मतवाला बना देने की शक्ति है ॥ ४३ ॥

(५६)

कातर्यं केवला नीतिः
शौर्यं श्वापदचेष्टितम् ॥ ४७ ॥

कोरी नीति (चाहे कोई दबाता ही चला जाय, मगर आप भलमंसी के मारे चुपचाप लातें खाते जायँ) कायरपन है, और कोरी बहादुरी (कोई बोलता ही नहीं, मगर हम उसे मारने को तैयार हैं) पशुओं का काम या लक्षण है ॥ ४७ ॥

(५७)

न हि सिंहो गजास्कन्दी
भयाद्गिरिगुहाशयः ॥ ५२ ॥

हाथी का शिकार करने वाला शेर किसी भय के मारे पहाड़ की कन्दराओं में नहीं रहता; उसका यह स्वभाव ही है ॥ ५२ ॥

तात्पर्य यह कि वीर लोग भय के मारे लड़ाई को नहीं टाल जाते, बिना किसी के छेड़ किये न बोलना उनका स्वभाव ही होता है ।

(५८)

वृद्धौ नदीमुखेनैव
प्रस्थानं लवणाम्भसः ॥ ५४ ॥

बाढ़ के समय भी समुद्र अपनी मर्यादा (हद) को नहीं

छोड़ता (या उमड़ नहीं पड़ता), बल्कि जो नदियाँ उसको जल देती हैं उन्हीं में वह (उसका जल) गमन करता है ॥ ५४ ॥

तात्पर्य यह कि बड़े और गम्भीर लोग बढ़ती होने पर मर्यादा को नहीं छोड़ते, अपनी ही राह पर चलते हैं।

(५९)

समीरणसहायोऽपि
नाम्भःप्रार्थी दवानलः ॥ ५९ ॥

वायु के सहायक (अनुकूल) होने पर भी दावानल कभी पानी के पास नहीं जाता ॥ ५६ ॥

तात्पर्य यह कि प्रबल सहायक पाकर भी अपने से प्रबल शत्रु से भिड़ना उचित नहीं।

(६०)

अम्बुगर्भो हि जीमूतः
चातकैरभिवन्द्यते ॥ ६० ॥

चातक पक्षी पानी-भरे मेघ का ही अभिनन्दन करते हैं ॥ ६० ॥

तात्पर्य यह कि समृद्धिशाली मनुष्य का ही प्रार्थी लोग आदर करते हैं।

(६१)

जयश्रीर्वीरगामिनी ॥ ६१ ॥

जयलक्ष्मी वीर को ही पसंद करती है ॥ ६९ ॥

(६२)

प्रवृद्धौ हीयते चन्द्रः
समुद्रोऽपि तथाविधः ॥ ७१ ॥

पूर्ण वृद्धि होते ही चन्द्रमा घटने लगता है; समुद्र में भी 'ज्वार' के बाद ही 'भाटा' शुरू होता है ॥ ७१ ॥

तात्पर्य यह कि पूर्ण उन्नति के बाद अवनति का आरम्भ होना प्रकृति (Nature) का नियम ही है ।

अष्टादश सर्ग

(६३)

सकृद्विविग्नानपि हि प्रयुक्तं
माधुर्यमीष्टे हरिणान् ग्रहीतुम् ॥ १३ ॥

डरे हुए मृग भी मधुर गीत से पकड़े जा सकते हैं ॥ १३ ॥

तात्पर्य यह कि मीठी बोली से भड़के हुए लोग भी क़ाबू में किये जा सकते हैं ।

(६४)

* * * सुखोपरोधि
वृत्तंहि राज्ञामुपरुद्धवृत्तम् ॥ १८ ॥

सुख में बाधा डालने वाले राजकाज के बन्धन में राजा लोगों की दशा क़ैदियों की ऐसी रहती है ॥ १८ ॥

तात्पर्य यह कि राजा लोगों को घड़ी भर के लिए भी चैन नहीं, राजकाज की उलझन में वे क़ैदी की तरह चिन्तित रहते हैं।

(६५)

दृष्टो हि वृण्वन् कलभप्रमाणो-
ऽप्याशाः पुरोवातमवाप्य मेघः ॥ ३८ ॥

छोटा सा बादल का टुकड़ा भी पुरवाई हवा पाकर सारे आकाश को छा लेता है—ऐसा देखा जाता है ॥ ३८ ॥

मतलब यह कि राजा छोटी उमर का होने पर भी राज-सिंहासन को पा कर सम्पूर्ण राज्य का शासन कर सकता है।

ऊनविंश सर्ग

(६६)

स्वादुभिस्तु विषयैर्हृतस्ततो-
दुःखमिन्द्रियगणो निवार्य्यते ॥ ४९ ॥

मधुर स्वादिष्ट विषयों की ओर झुकी हुई इन्द्रियों को उधर से फिराना वहुत ही कठिन होता है ॥ ४९ ॥

कुमार-सम्भव

—०—

प्रथम सर्ग

(६७)

एको हि दोषो गुणसन्निपाते
निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥ ३ ॥

चन्द्रमा की किरणों में जैसे उसका कलङ्क छिप जाता है वैसे ही बहुत से गुणों में मनुष्य का एक दोष छिप जाता है ॥ ३ ॥

(६८)

क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने
ममत्वमुच्चैःशिरसां सतीव ॥ १२ ॥

क्षुद्र (ओछे हृदय का) आदमी भी अगर शरणागत होता है तो उस पर महात्मा लोग वैसी ही ममता करने लगते हैं जैसी कि सज्जनों से ॥ १२ ॥

(६९)

अनन्तपुष्पस्य मधोर्हि चूते
द्विरेफमाला सविशेषसङ्गा ॥ २७ ॥

वसन्त ऋतु में और और फूलों के रहते भी, भौंरों के झुण्ड, केवल आम की मञ्जरी से ही जाकर लिपटते हैं ॥ २७ ॥

मतलब यह कि संसार में अनेक लोग हैं, लेकिन जिस पर जिसका पूर्वानुराग होता है उसी को वह चाहता है ।

(७०)

ऋते कृशानोर्न हि मन्त्रपूत-
मर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम् ॥ ५१ ॥

अग्नि के सिवा अन्य (सुवर्ण आदि) चमकीले पदार्थ मन्त्र से पवित्र आहुति को नहीं पा सकते ॥ ५१ ॥

मतलब यह कि केवल आकार से नहीं, वरन् गुणों से ही प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ।

(७१)

अभ्यर्थनाभङ्गभयेन साधुः
माध्यस्थमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे ॥ ५२ ॥

साधु लोग, इस भय से कहीं प्रार्थना निष्फल न हो, अपनी इष्ट वस्तु पर भी चाह नहीं प्रकट करते ॥ ५२ ॥

(७२)

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते
येषां न चेतांसि त एव धीराः ॥ ५९ ॥

विकार (चित्त चलायमान) होने के सामान वर्तमान होने पर भी जिनके मन में विकार नहीं आता वे ही धीर कहलाते हैं ॥ ५९ ॥

तात्पर्य यह कि बुराई के सामान जुटे रहने पर भी जो बुराई की तरफ़ नहीं झुकता वही सच्चा सच्चरित्र है ।

द्वितीय सर्ग

(७३)

शाम्येत्प्रत्यपकारेण
नोपकारेण दुर्जनः ॥ ४० ॥

दुर्जन लोग बुराई के बदले बुराई करने से ही शान्त रहते हैं; बुराई के बदले भलाई करने से नहीं ॥ ४० ॥

(७४)

विषवृक्षोऽपि संवर्द्ध्य
स्वयम् छेत्तुमसाम्प्रतम् ॥ ५५ ॥

विषवृक्ष को भी अपने हाथ से लगाकर—बढ़ाकर—फिर काटना उचित नहीं ॥ ५५ ॥

तात्पर्य यह कि जिसको आश्रय दे, वह चाहे जैसा अपकारी (बुराई करने वाला) निकले, अपने हाथ से उसकी जड़ में कुल्हाड़ी चलाना, सज्जनों की दृष्टि में, ठीक नहीं।

तृतीय सर्ग

(७५)

प्रयोजनापेक्षितया प्रभूणां
प्रायश्चलं गौरवमाश्रितेषु ॥ १ ॥

प्रभु लोग प्रायः अपने प्रयोजन से अपने आश्रित जनों

को गौरव दिया करते हैं; अतएव स्वामियों के द्वारा किया गया सेवकों का ऐसा आदर स्थिर नहीं होता॥ १॥

(७६)

व्यादिश्यते भूधरतामवेक्ष्य
कृष्णेन देहोद्वहनाय शेषः॥ १३॥

पृथ्वी का भार उठाने की शक्ति देखकर ही नारायण ने शेषनाग को निज-शरीर-वहन करने का भार दिया है॥ १३॥

तात्पर्य यह कि मालिक लोग जाने बूझे आदमी को ही किसी विशेष कार्य का भार देते हैं।

(७७)

अप्यप्रसिद्धं यशसे हि पुंसा-
मनन्यसाधारणमेव कर्म॥ १९॥

जो काम असाधारण होता है वह प्रसिद्ध न होने पर भी पुरुषों को अवश्य यशस्वी बनाता है॥ १९॥

तात्पर्य यह कि प्रसिद्धि की पर्वा न करके शक्तिशाली लोगों को बड़े काम करने चाहिएं; तत्काल ही न सही, परंतु किसी न किसी समय उस कार्य के लिए उनको सुयश अवश्य मिलता है।

(७८)

समीरणो नोदयिता भवेति
व्यादिश्यते केन हुताशनस्य॥ २१॥

अग्नि की सहायता करने के लिए वायु से कौन कहता है ? ॥ २१ ॥

तात्पर्य यह कि सच्चे मित्र से सहायता करने के लिए कहना ही नहीं पड़ता ; वह आप ही मदद के लिए खड़ा हो जाता है ।

(७९)

प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां
पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः ॥ २८ ॥

प्राय: एक ही पुरुष में सब गुणों का समावेश करने की प्रवृत्ति विधाता में नहीं पाई जाती ॥ २८ ॥

अर्थात् ब्रह्मा की सृष्टि में कोई भी ऐसा नहीं जिसमें सभी गुण हों ।

(८०)

आत्मेश्वराणां न हि जातु विघ्नाः
समाधिभेदप्रभवो भवंति ॥ ४० ॥

जो जितेन्द्रिय हैं, अर्थात् जिन्होंने मन (आदि इंद्रियों) का दमन कर लिया है उनकी समाधि (या निष्ठा) को विघ्नसमूह कदापि विचलित नहीं कर सकते ॥ ४० ॥

(८१)

नहीश्वरव्याहृतयः कदाचित्
पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम् ॥ ६३ ॥

ईश्वरों (अलौकिक शक्तिशालियों) के वाक्य कभी मिथ्या नहीं होते ॥ ६३ ॥

चतुर्थ सर्ग

(८२)

स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो-
विवृतद्वारमिवोपजायते ॥ २६ ॥

स्वजन को देखकर (दुखिया के) दु:ख का जैसे द्वार खुल जाता है, ऐसा वह उमड़ पड़ता है ॥ २६ ॥

(८३)

दयितास्वनवस्थितं नृणां
न खलु प्रेम सुहृज्जने ॥ २८ ॥

पुरुषों में स्त्री का प्रेम चाहे न भी रहे परन्तु मित्र का स्नेह कभी नहीं मिटता ॥ २८ ॥

तात्पर्य यह कि स्त्रियों के प्रति पुरुषों का जो प्रेम होता है वह किसी कारण से स्थिर नहीं भी रह सकता । किन्तु मित्रों के प्रति पुरुषों का जो प्रेम होता है वह सदा वैसा ही बना रहता है ।

(८४)

अनपायिनि संशयद्रुमे
गजभग्ने पतनाय वल्लरी ॥ ३१ ॥

आपत्तिशून्य वृक्ष के सहारे रहने वाली लता भी उस समय ज़मीन में लोटने लगती है जब कोई हाथी आकर उस पेड़ को उखाड़ डालता है ॥ ३१ ॥

(इस वाक्यांश में कालिदास ने विधवा स्त्री की शोचनीय दशा का निदर्शन कराया है ।)

(८५)

शशिना सह याति कौमुदी
सह मेघेन तडित्प्रलीयते ।
प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति
प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ॥ ३३ ॥

चाँदनी चन्द्रमा के साथ ही अस्त हो जाती है; मेघ के साथ ही बिजली भी लीन हो जाती है । स्त्रियों की गति पति ही है—इस बात को जड़ वस्तुओं ने भी सिद्ध कर दिखाया है ॥ ३३ ॥

तात्पर्य यह कि स्त्री को पति का अनुगमन करना चाहिए, यह केवल शास्त्र की आज्ञा ही नहीं है; उसके उदाहरण जड़ जीवों में भी पाये जाते हैं ।

(८६)

रविपीतजला तपात्यये
पुनरोघेन हि युज्यते नदी ॥ ४४ ॥

सूर्य-किरणों से सूखी हुई नदी गर्मी के बाद फिर जलराशि से परिपूर्ण हो जाती है ॥ ४४ ॥

तात्पर्य यह कि दुःख के बाद सुख का मिलना स्वाभाविक ही है ।

पञ्चम सर्ग

(८७)

प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ॥ १ ॥

सौन्दर्य की सफलता प्रेमी से प्रेम पाने ही में होती है ॥ १ ॥

(८८)

पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं
शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः ॥ ४ ॥

कोमल सिरिस (मौलसिरी) का फूल भौंरे के भार को सह सकता है ; मगर पत्ती के बोझ को नहीं ॥ ४ ॥

तात्पर्य यह कि सुकुमार लोग कठिन तपस्या (शारीरिक कष्ट) नहीं कर सकते ।

(८९)

क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः
पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ॥ ५ ॥

इष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए दृढ़ निश्चय वाले मन को और निम्नगामी जल की गति को कौन फिरा सकता है ? ॥ ५ ॥

(६०)

न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं
सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते ॥ ६ ॥

केवल भ्रमरों के झुंड से ही नहीं, सेवार के साथ भी कमल का फूल सुशोभित होता है ॥ ६ ॥

तात्पर्य यह कि जिसमें सच्चा सौन्दर्य है वह असुन्दर वस्तु के साथ भी सुन्दर जान पड़ता है ।

(६१)

न धर्म्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ॥ १६ ॥

धर्म्मवृद्ध (धर्माचरण से महत्व को प्राप्त) लोगों की अवस्था नहीं देखी जाती ॥ १६ ॥

(६२)

भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां
वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः ॥ ३१ ॥

साधुजन समदर्शी होने पर भी विशेष आकार-प्रकार के लोगों के प्रति अधिक सम्मान प्रकट करते हैं ॥ ३१ ॥

(६३)

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ॥ ३३ ॥

धर्म करने का पहला साधन (सामग्री या उपाय) शरीर ही है ॥ ३३ ॥

तात्पर्य यह कि धर्मात्मा को शरीर-रक्षा पर पहले दृष्टि

रखनी चाहिए । क्योंकि अगर शरीर अस्वस्थ होगा तो फिर धर्म के नियमों का पालन नहीं किया जा सकेगा ।

(६४)

* * * सङ्गतं
मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते ।। ३६ ।।

पण्डितों का कहना है कि परस्पर सात बातें होने से (या सात क़दम एक साथ चलने से) ही सज्जनों में मित्रता हो जाती है ।। ३९ ।।

(६५)

* * * कः करं
प्रसारयेत्पन्नगरत्नसूचये ।। ४३ ।।

विषधर नाग के सिर की मणि लेने के लिए कौन हाथ बढ़ाने का साहस करेगा ? ।। ४३ ।।

मतलब यह कि प्रतापी और तेजस्वी यदि अपनी सम्पत्ति को सुरक्षित रक्खे तो फिर कोई उस पर हाथ सफ़ा करने का साहस नहीं कर सकता ।

(६६)

वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका
विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ॥ ४४ ॥

चन्द्रमा और तारागण से परिपूर्ण रात्रि कहीं सन्ध्याकाल (शुरू शाम) में ही अरुणोदय (प्रातःकाल की ललाई, जो

सूर्य उदय होने के पहले ही पूर्व दिशा में छिटक जाती है) के योग्य हो जाती है ? ॥ ४४ ॥

मतलब यह कि अवस्था के अनुसार सब सोहता है। जवानी में बूढ़ों का पहनावा (या बुढ़ापे में जवानी का पहनावा) भला नहीं लगता।

(९७)

न रत्नमन्विष्यति
मृग्यते हि तत् ॥ ४५ ॥

रत्न किसी को नहीं खोजता, रत्न को ही सब खोजते हैं ॥ ४५ ॥

मतलब यह कि योग्य आदमी को अपना आदर कराने की ज़रूरत नहीं होती; लोग आप ही उसका आदर करते हैं।

(९८)

मनोरथानामगतिर्न विद्यते ॥ ६४ ॥

मनुष्य के मनोरथ जहाँ न जा सकें ऐसी कोई जगह या चीज़ नहीं है ॥ ६४ ॥

(९९)

अपेक्ष्यते साधुजनेन वैदिकी
श्मशानशूलस्य न यूपसत्क्रिया ॥ ७३ ॥

कोई भी विद्वान् वैदिक यज्ञ-स्तंभ के समान मसान में गड़ी हुई 'सूली' के काठ की पूजा न करेगा ॥ ७३ ॥

तात्पर्य यह कि सुपात्र (मनुष्य) की तरह कुपात्र की पूजा नहीं हो सकती, चाहे वे एक ही वंश के क्यों न हों।

(१००)

अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं
द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् ॥ ७५ ॥

जो लोग नीच और मूर्ख हैं वे ही महात्मा लोगों के अलौकिक, अचिन्त्य चरित्रों की निन्दा किया करते हैं ॥ ७५ ॥

(१०१)

न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः ॥ ७८ ॥

सारा संसार ही जिसकी मूर्ति है उसके आकार का ठीक निश्चय कौन कर सकता है ? ॥ ७८ ॥

मतलब यह कि यह विचित्र ब्रह्माण्ड भर जब परमेश्वर का रूप है तब उस 'अनेकरूपरूपाय' का कोई एक रूप मान कर यह कहना कि 'यही उसका रूप है' अनुचित और भ्रम है।

(१०२)

न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ॥ ८२ ॥

मनमाना करनेवाला लोक-निन्दा से नहीं डरता ॥ ८२ ॥

(१०३)

न केवलं यो महतोऽपभाषते
शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ॥ ८३ ॥

बड़े लोगों को बुरा कहने वाला ही नहीं, बल्कि उसके शब्दों को सुनने वाला भी पापभागी होता है ॥ ८३ ॥

(१०४)

क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ॥ ८६ ॥

किसी काम में परिश्रम करो और अगर वह सफल हो गया तो फिर सब थकावट दूर हो कर नया बल आ जाता है ॥ ८६ ॥

षष्ठ सर्ग

(१०५)

स्त्रीपुमानित्यनास्थैषा
वृत्तं हि महितं सताम् ॥ १२ ॥

स्त्री और पुरुष का भेदभाव रखना भ्रम है; सज्जनों की दृष्टि में चरित्र ही पूजनीय है ॥ १२ ॥

अर्थात् सज्जन लोग, स्त्री है या पुरुष, यह नहीं देखते, वे गुणों का ही आदर करते हैं।

(१०६)

क्रियाणां खलु धर्म्याणां
सत्पत्न्यो मूलकारणम् ॥ १३ ॥

मनुष्यों के धर्माचरण का मूल-कारण अच्छी स्त्रियाँ ही होती हैं ॥ १३ ॥

(१०७)

प्रायः प्रत्ययमाधत्ते स्वगुणेषूत्तमादरः ॥ २० ॥

बड़े लोगों द्वारा (अपना) आदर होते देख प्रायः लोगों को अपने गुणों पर विश्वास होता है ॥ २० ॥

मतलब यह कि वही यथार्थ गुणी है जिसका आदर उत्तम पुरुष करते हैं।

(१०८)

विक्रियायै न कल्पन्ते सम्बन्धाः सदनुष्ठिताः ॥ २९ ॥

सज्जनों के जोड़े हुए सम्बन्धों का परिणाम कष्ट देने वाला नहीं होता ॥ २९ ॥

(१०९)

विनियोगप्रसादा हि
किङ्कराः प्रभविष्णुषु ॥ ६२ ॥

स्वामी की कोई आज्ञा पाकर ही सेवक लोग अपने को कृतार्थ मानते हैं ॥ ६२ ॥

(११०)

अशोच्या हि पितुः कन्या
सद्भर्तृप्रतिपादिता ॥ ७९ ॥

सत्पात्र वर को कन्या देने से फिर माता-पिता को उस कन्या) के लिए कुछ शोच नहीं करना पड़ता ॥ ७९ ॥

(१११)

प्रायेण गृहिणीनेत्राः
कन्यार्थेषु कुटुम्बिनः ॥ ८५ ॥

कुटुम्बी (गृहस्थ) लोगों को, कन्या के मामले में प्रायः स्त्री की ही सलाह से काम करना पड़ता है ॥ ८५ ॥

(११२)

भवन्त्यव्यभिचारिण्यो
भर्तुरिष्टे पतिव्रताः ॥ ८६ ॥

पतिव्रता स्त्रियों का नियम है कि वे (कभी) अपने स्वामी की इच्छा के विरुद्ध अभिलाषा नहीं करतीं ॥ ८६ ॥

सप्तम सर्ग

(११३)

स्त्रीणां प्रियालोकफलोहि वेशः ॥ २२ ॥

स्त्रियों का शृङ्गार उनके प्रिय जन के देखने से ही सफल समझा जाता है ॥ २२ ॥

(११४)

कालप्रयुक्ता खलु कार्यविद्‌भि-
र्विज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेति ॥ ९३ ॥

काम निकालने का ढंग जानने वाले लोग ठीक समय पर प्रभुओं के निकट जो प्रार्थना करते हैं वह अवश्य ही पूरी होती है ॥ ९३ ॥

अष्टम सर्ग

(११५)

महत्त्वमसतां हृतान्तरम् ॥ ५७ ॥

* * * दुष्ट नीच लोग प्रभुता पाकर ऊँच-नीच (या भले-बुरे) के अन्तर को मिटा देते हैं ॥ ५७ ॥

(हिन्दी में भी इसी मेल की कहावत है कि "चौपट्ट नगरी, अनबूझ राजा। टका सेर भाजी, टका सेर खाजा ॥")

(११६)

विक्रिया न खलु कालदोषजा
निर्मल प्रकृतिसुस्थिरोदया ॥ ६५ ॥

समय के दोष से उत्पन्न होने वाला विकार साफ़ स्वभाव वाले सज्जनों में अधिक देर तक नहीं ठहरता ॥ ६५ ॥

(११७)

उन्नतेषु शशिनः प्रभा स्थिता
निम्नसंश्रयपरं निशातमः ॥
नूनमात्मसदृशी प्रकल्पिता
वेधसैव गुणदोषयोर्गतिः ॥ ६६ ॥

ऊँचे (वृक्षों की चोटी, मकानों के ऊपरी भाग इत्यादि) पर चाँदनी है, और रात्रि का अन्धकार नीचे पड़ा हुआ है। इससे जान पड़ता है कि विधाता ने ही गुण और दोष की गति उनकी योग्यता के अनुसार बनाई है ॥ ६६ ॥

दशम सर्ग

(११८)

स्तोत्रं कस्य न तुष्टये ॥ ६ ॥

स्तुति (प्रशंसा) सुन कर कौन खुश नहीं होता ? ॥ ६ ॥

(११६)

अर्थेष्ववश्यकार्येषु
सिद्धये क्षिप्रकारिता ॥ २४ ॥

अवश्य करने के कामों में फुर्ती करने से अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २४ ॥

एकादश सर्ग

(१२०)

रत्नाकरे युज्यत एव रत्नम् ॥ ११ ॥

रत्नाकर (समुद्र) में ही रत्नों का होना सर्वथा सम्भव है ॥ ११ ॥

तात्पर्य यह कि उत्तम वस्तु श्रेष्ठ स्थान में ही अधिकता से पाई जाती है ।

द्वादश सग

(१२१)

प्रभुप्रसादो हि मुदे न कस्य ॥ ३२ ॥

मालिक की प्रसन्नता किसको आनंद नहीं देती ? ॥ ३२ ॥

(१२२)

ध्रुवमभिमते को वा पूर्णे मुदा न हि माद्यति ॥ ५८ ॥

अपनी इच्छा पूर्ण होने पर कौन आनंद में मग्न नहीं होता ? ॥ ५८ ॥

पञ्चदश सर्ग

(१२३)

* * * महतां वृथा भवे-
दसद्ग्रहान्धस्य हितोपदेशना ॥ २६ ॥

असत् आग्रह (हठ) से अंधे हो रहे मनुष्य को महापुरुषों का हित की बात बताना वृथा ही होता है । (क्योंकि वह उनकी नहीं सुनता, अपने ही मन की करता है) ॥ २६ ॥

मेघदूत

पूर्वमेघ

(१२४)

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥

जो लोग कामी (या काम के क़ाबू में) हो जाते हैं उन्हें, स्वभावत: जड़ और चेतन का ज्ञान नहीं रहता ॥ ५ ॥

(१२५)

याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ ६ ॥

(अपने से) अधिक गुणी (श्रेष्ठ) मनुष्य से की गई प्रार्थना का निष्फल (पूर्ण न) होना भी अच्छा; किंतु नीच जन से की गई सफल प्रार्थना (भी) नहीं अच्छी ! ॥ ६ ॥

क्योंकि उत्तम पुरुष अगर प्रार्थना पूर्ण न कर सकेगा तो वह प्रार्थी कि हँसी भी नहीं उड़ावेगा; किंतु नीच मनुष्य यदि प्रार्थना पूर्ण भी कर देगा तो पचास जगह कहेगा कि अमुक मनुष्य से मैंने ऐसा सलूक किया--जिससे प्रार्थी की आँख सदा सर्वत्र नीची रहेगी ।

(१२६)

आशाबन्धः कुसमसदृशं प्रायशोह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥ १० ॥

स्त्रियों का प्रेममय हृदय फूल के समान होता है; विरह की दशा में (मिलने की) आशा का बंधन ही उसको शीघ्र-पतन से बचाये रहता है ॥ १० ॥

(१२७)

न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ॥ १७ ॥

क्षुद्र (छोटा) मित्र भी, यदि उसका उपकारी मित्र (किसी तरह का) आश्रय पाने के लिए आता है तो वह उसके किये पहले उपकारों को याद कर उससे मुँह नहीं मोड़ता; तब ऊँचे (विचार के) मित्रों के लिए तो कहना ही क्या है ! ॥ १७ ॥

(१२८)

सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु ॥ १९ ॥

बड़े लोगों का कुछ उपकार करो तो वह उपकार का अंकुर उनकी सज्जनता के जल से सिंच कर, बहुत शीघ्र फल देता है ॥ १९ ॥

(१२९)

रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥ २० ॥

भीतर के ख़ाली सब हलके (ओछे) होते हैं; पूर्ण ही गौरवशाली (भारी) हुआ करते हैं ॥ २० ॥

तात्पर्य यह कि जिसमें कुछ तत्त्व नहीं है वह लाख बने, लेकिन उसे लोग चुटकियों में उड़ा देते हैं, और जो

विद्वान् या सम्पन्न है उसका गौरव सब जगह होता है, उसे कोई नहीं हिला सकता।

(१३०)

मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥ ३९ ॥

मित्र के किसी काम को कर देने का वादा करके कभी कोई उसमें ढिलाई नहीं करता ॥ ३९ ॥

(१३१)

आपन्नार्तिं प्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ॥ ५४ ॥

अच्छे लोग शरणागत का दुःख दूर करने में ही अपनी सम्पत्ति या वैभव की सफलता मानते हैं ॥ ५४ ॥

(१३२)

के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारंभयत्नाः ॥ ५५॥

कोई कार्य करने के पहले उसका परिणाम सोचे बिना उद्योग करनेवाले लोग सफलमनोरथ तो होते ही नहीं, बल्कि उन्हें हार और तिरस्कार से लज्जित भी होना पड़ता है ॥ ५५ ॥

उत्तरमेघ

(१३३)

सूर्य्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥ १९ ॥

सूर्य के अस्त हो जाने पर कमल अपनी शोभा को नहीं बनाये रख सकता ॥ १९ ॥

तात्पर्य यह कि मालिक के पीछे उसकी सम्पत्ति, देखरेख न होने के कारण, नष्टभ्रष्ट हो जाती है ।

(१३४)

प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥ ३२ ॥

प्रायः सभी कोमल—आर्द्र—हृदयवाले लोग दया-परिपूर्ण हुआ करते हैं ॥ ३२ ॥

(१३५)

कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः सङ्गमात् किञ्चिदूनः ॥ ३९ ॥

मित्र के द्वारा प्राप्त अपने प्यारे का संदेसा प्रियमिलन से कुछ ही कम होता है ॥ ३९ ॥

(१३६)

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥ ४९ ॥

संसार में सदा सुखी या सदा दुखी कोई नहीं रहता । मनुष्य की दशा गाड़ी के पहिये के समान कभी ऊपर चढ़ जाती और कभी नीचे गिर जाती है ॥ ४९ ॥

(१३७)

स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥ ५२ ॥

कुछ लोग कहते हैं कि वियोग में स्नेह कम हो जाता है, किन्तु यह कहना ठीक नहीं । क्योंकि उस समय भोग के

अभाव से, प्रियजन के ऊपर, अनुराग जमा हो होकर "प्रेम की राशि" बन जाता है ॥ ५२ ॥

तात्पर्य यह कि जो चीज़ ख़र्च में लाई जाती है वही चुकती है, और जिसका ख़र्च नहीं होता वह जमा होती रहती है—इसी नियम के अनुसार बिछोह के दिनों में भोग न होने के कारण स्नेह का ख़र्च नहीं होता और इसी से वह दिन दिन जमा होकर और भी गाढ़ा होता जाता है।

(११८)

प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥ ५४ ॥

सज्जन लोग मित्र की प्रार्थना का उत्तर, बातों से नहीं, वरन् कार्य से ही देते हैं ॥ ५४ ॥

मालविकाग्निमित्र

प्रथम अंक

(११९)

पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥ ६ ॥

जितने पुराने काव्य हैं वे सभी अच्छे नहीं। किसी काव्य

को॰नवीन जान कर दूषित या हीन कहना भी ठीक नहीं । जो समझदार हैं वे परीक्षा करके अच्छे और बुरे का निर्णय करते हैं। जो लोग दूसरों के विश्वास पर आँख मूँद कर निश्चय कर बैठते हैं वे मूढ़ हैं ।। ६ ।।

(१४०)

त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् ।। २८ ।।

'नाटक' के अभिनय में सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी लोगों के अनेक-रसमय विचित्र चरित्र दिखाये जाते हैं। यही कारण है कि भिन्न भिन्न रुचिवाले अनेक लोग एक नाटक से ही सन्तुष्ट किये जा सकते हैं (नाटक की यही श्रेष्ठता और विशेषता है) ।। २८ ।।

(१४१)

पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः ।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य ।। ३५ ।।

जैसे बादल की बूंद सीप में पड़ने से मोती बन जाती है वैसे ही सिखलाने वाले का गुण सुपात्र सीखनेवाले में उत्तम रूप धारण कर शिक्षक को भी यशस्वी बनाता है ।। ३५ ।।

मतलब यह कि अच्छा विद्यार्थी गुरु से पाई हुई विद्या को अपनी योग्यता से और भी बढ़ा लेता है; जिससे उसके गुरु की भी प्रशंसा होती है।

(१४२)

अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरूढ़मूलत्वात्।
नवसंरोपणशिथिलः तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुम् ॥ ४७॥

नये रोपे हुए वृक्ष की जड़ शिथिल रहती है और इसीसे वह सहज ही उखाड़ा जा सकता है। इसी तरह जो शत्रु हाल ही में राज्यासन पर बैठा है, और इसी कारण प्रजा के हृदय में जिसकी जड़ नहीं जमी है उसे भी अनायास उखाड़ डाला जा सकता है॥ ४७॥

(१४३)

सप्रतिबन्धं कार्यं प्रभुरधिगन्तुं सहायवानेव।
दृश्यं तमसि न पश्यति दीपेन विना सचक्षुरपि ॥ ५८ ॥

रुकावट वाले काम में सहायक के बिना सिद्धि नहीं मिलती। देखो, आँखों के रहते भी, अन्धकार में दीपक के बिना कुछ नहीं दिखाई पड़ता॥ ५८॥

(१४४)

शिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था
सक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां
धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ॥ १०८ ॥

कोई शिक्षक ऐसे होते हैं जो आप, स्वयं, उस काम को अच्छी तरह करके दिखा सकते हैं। और कोई ऐसे होते हैं जो विद्यार्थी को सिखा कर उसीके द्वारा उस काम को अच्छा

कर दिखा सकते हैं। किन्तु जिस शिक्षक में ये दोनों बातें हैं, अर्थात् जो आप भी निपुण (होशियार) है और विद्यार्थियों को भी अपनी ही तरह निपुण बना सकता है उसे तो सब शिक्षकों में श्रेष्ठ मानना ही चाहिए॥ १०८॥

(१४५)

यस्योद्यमः केवलजीविकायै
तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति ॥ ११६ ॥

जो केवल जीविका के लिए शास्त्रों का अभ्यास करता है उसे लोग ज्ञान का वैपारी बनिया कहते हैं ॥११६॥

(१४६)

प्रायः समानविद्याः
परस्परयशःपुरोभागाः ॥ १४३ ॥

जो किसी विद्या में बराबरी का दावा रखते हैं वे प्रायः एक दूसरे के छिद्र देखा करते हैं। कारण यही है कि एक दूसरे को अपने बराबर होने देना नहीं चाहता॥ १४३॥

द्वितीय अङ्क

(१४७)

मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः।
पङ्कच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः ॥ २० ॥

रीठे के फल मलने से जैसा गँदला पानी साफ़ हो जाता

है उसी तरह बुद्धिमान् विद्वान् के संसर्ग (सोहबत) से बुरा भी अच्छा बन जाता है ।। २० ।।

(१४८)

उपदेशं विदुः शुद्धम् सन्तस्तमुपदेशिनः ।
श्यामायते न विद्वत्सुः यः काञ्चनमिवाग्निषु ॥ २६ ॥

उपदेशक के उसी उपदेश को सज्जन लोग शुद्ध समझते हैं जो अग्नि में पड़े हुए सुवर्ण की तरह विद्वानों के समाज में मलिन न हो, बल्कि और भी चमक उठे ।। २६ ।।

तृतीय अंक

(१४९)

* * * तत्वावबोधैकफलो न तर्कः ।। ४९ ।।

तर्क (बहस) से ही तत्व का निर्णय होता हो—यह बात नहीं है ।। ४९ ।।

चतुर्थ अंक

(१५०)

छेदो दंशस्य दाहो वा क्षतस्यारक्तमोक्षणम् ।
एतानि दष्टमात्राणामायुष्याः प्रतिपत्तयः ॥ ४६ ॥

जहाँ सर्प ने डस लिया हो उस अंग को तुरन्त काट

डालना, जला (दाग) देना, या वहाँ का खून निकाल देना ही मृत्यु से बचने के उपाय हैं ॥ ४९ ॥

(१५१)

प्रतिपक्षेणापि पतिं सेवन्ते भर्तृसेवना नार्यः ।
अन्यसरितामपि जलम् समुद्रगाः प्रापयन्त्युदधिम् ॥ १५० ॥

पतिव्रता स्त्रियाँ सौत के साथ भी पति की सेवा करती हैं; देखो गंगा आदि नदियाँ अन्य नदियों (के जल) को साथ लेकर समुद्र से मिलने जाती हैं ॥ १५० ॥

विक्रमोर्वशी

प्रथम अंक

(१५२)

वसुधाधरकन्दराविसर्पी
प्रतिशब्दोऽपि हरेर्हिनस्ति नागान् ॥

पर्वत की कन्दरा में गूँज रही सिंह के गरजने की प्रतिध्वनि भी गजराजों को गिरा देती है ॥

मतलब यह कि पराक्रमी प्रभु के अनुचर भी प्रभु के प्रताप से शत्रुओं का नाश कर सकते हैं ।

द्वितीय अङ्क

(१५३)

तप्तेन तप्तमयसा घटनाय योग्यम् ॥

तपे हुए लोहे से ही तपे लोहे का 'जोड़' पक्का होता है ॥ मतलब यह कि दोनों में स्नेह का जोश होने से ही दृढ़ मेल (मैत्री) होता है ।

तृतीय अङ्क

(१५४)

सर्वः कल्पे वयसि यतते लब्धुमर्थान्कुटुम्बी
पश्चात्पुत्रैरुपहितभरः कल्पते विश्रमाय ॥

हर एक विज्ञ कुटुम्बी मनुष्य नई उमर (जवानी) में कमाने की कोशिश करता है और पीछे (बुढ़ापे में) पुत्रों पर गृहस्थी का भार डाल कर आप विश्राम लेता है ॥

(१५५)

यदेवोपनतं दुःखं सुखं तद्धि रसान्तरम् ।
निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः ॥

जिस वस्तु से दुःख मिलता है वही वस्तु दूसरे रूप में सुखदायक भी होजाती है । देखो, धूप में तपे हुए पथिक को वृक्ष की छाँह अधिक सुख देने वाली हुआ करती है ।

धूप भी सूर्य की छाया है, किन्तु वही [छाया] वृक्ष की छाया होने से दुःख की जगह सुख देती है।

चतुर्थ अङ्क

(१५६)

राजा कालस्य कारणम् ॥

राजा ही 'समय' का कारण है ॥

तात्पर्य यह कि राजा जैसा चाहे वैसा ही समय (ज़माना) हो सकता है।

(१५७)

महदपि परदुःखं शीतलं सम्यगाहुः ॥

दूसरे के भारी दुःख को भी साधारणतः लोग साधारण ही समझा करते हैं। (इसी तरह की एक कहावत हिन्दी में भी है—"जाके पायँ न गई बेंवाई। सो का जानै पीर पराई")।

(१५८)

स्वार्थात्सतां गुरुतरा प्रणयिक्रियैव ।

सज्जनों की दृष्टि में मित्र का काम अपने काम से भी बढ़ कर होता है।

पंचम अंक

(१५९)

न हि सुलभवियोगा कर्तुमात्मप्रियाणि
प्रभवति परवत्ता * * * ॥

पराधीन मनुष्य का विरह सदा सहजसिद्ध सुलभ है; क्योंकि वह अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकता। (कहा भी है—"पराधीन सपने सुख नाहीं") ॥

(१६०)

शमयति गजानन्यान् गन्धद्विपः कलभोऽपि सन्
प्रभवतितरां वेगोदग्रं भुजङ्गशिशोर्विषम् ॥
भुवमधिपतिर्बालावस्थोऽप्यलं परिरक्षितुं
न खलु वयसा जात्यैवायं स्वकार्य्यसहो गुणः ॥

मदमस्त हाथी का बच्चा भी और हाथियों को परास्त कर सकता है; साँप के बच्चे का भी विष अत्यन्त उग्र हुआ करता है; राजकुमार बालक होने पर भी अच्छी तरह पृथ्वी का शासन और पालन कर सकता है; अतएव कहना पड़ेगा कि अपना काम करने की शक्ति अवस्था पर नहीं, बरन जाति पर निर्भर है ॥

(१६१)

परस्परविरोधिन्योरेकसंश्रयदुर्लभम् ।
सङ्गतं श्री-सारस्वत्योर्भूयादुद्भूतये सताम् ॥

लक्ष्मी और सरस्वती का वैर चिरकाल से चला आता

है ; इन दोनों का एक ही पात्र में होना दुर्लभ समझा जाता है । ईश्वर से प्रार्थना है कि सज्जनों के अभ्युदय और मङ्गल के लिए यह लक्ष्मी और सरस्वती का दुर्लभ सङ्गम भी संसार में सुलभ हो ॥

अभिज्ञान शाकुन्तल

प्रथम अङ्क

(१६२)

अपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययम् चेतः ॥ ६ ॥

किसी कार्य के करने की चातुरी को तब तक मैं उत्तम नहीं मानता, जब तक उसे देख कर विद्वान् लोग सन्तुष्ट न हों । सुशिक्षित (उस कार्य में निपुण) लोगों को भी अपने ऊपर विश्वास नहीं होता ॥ ६ ॥

(१६३)

* * भवितव्यातां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ॥ ३७ ॥

होनहार के द्वार (ज़रिये) सब जगह हुआ करते हैं ॥ ३७ ॥

(१६४—१६५)

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मालनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ॥

* * * *

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ ४७ ॥

सेवार के बीच में भी कमल की शोभा होती है, चन्द्रमा के बीच का चिह्न मलिन (श्याम) होने पर भी (चन्द्रमा की) शोभा को बढ़ाता है। * * * * * जो स्वभाव-सुन्दर हैं उनके लिए, कौन ऐसी वस्तु है जो आभूषण नहीं बन जाती ? ॥ ४७ ॥

तात्पर्य यह कि जिसमें सच्चा सौन्दर्य है उसके अङ्ग में, चाहे जो वह पहन-ओढ़ ले, सब भला लगता है।

(१६६)

सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥ ६२ ॥

शुद्ध हृदय और आचरण वाले लोगों की चित्तवृत्ति ही सन्देह-युक्त विषय के निर्णय में प्रमाण-स्वरूप हुआ करती है ॥ ६२ ॥

अर्थात् ऐसे सज्जनों का ख़याल कभी अन्यथा या मिथ्या नहीं होता।

(१६७)

न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ॥ १०३ ॥

बिजली कभी पृथ्वीतल से नहीं प्रकट होती ॥ १०३ ॥

तात्पर्य यह कि स्वर्गीय सौन्दर्य पार्थिव (पृथ्वी के) पदार्थ से नहीं निकलता।

द्वितीय अंक

(१६८)

* * * कामी स्वतां पश्यति ॥ ३ ॥

कामी पुरुष, स्त्रियों की हरकतों को अपने ही प्रति समझता है ॥ ३ ॥

(१६९)

शमप्रधानेषु तपोवनेषु
गूढ़ं हि दाहात्मकमस्ति तेजः ॥
स्पर्शानुकूला अपि सूर्यकान्ता-
स्ते ह्यन्यतेजोभिभवाद्दहन्ति ॥ ३४ ॥

शान्तिप्रधान ऋषियों के आश्रम में जलाने की शक्ति रखने वाला तेज छिपा रहता है। देखो, सूर्यकान्त मणि बहुत ही शीतल होती है, लेकिन वह दूसरे (सूर्य) के तेज को नहीं सह सकती। सूर्य का तेज पड़ते ही जला देती है ॥ ३४ ॥

(१७०)

लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं
श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत् ॥ ५४ ॥

लक्ष्मी को चाहने वाले के लिए लक्ष्मी चाहे दुर्लभ भी हो, लेकिन लक्ष्मी जिसे चाहती हो वह लक्ष्मी के लिए कभी दुर्लभ नहीं हो सकता ॥ ५४ ॥

तृतीय अंक

(१७१)

ननु कमलस्य मधुकरः सन्तुष्यति गन्धमात्रेण ॥ १६२ ॥

भ्रमर कमल की गन्ध से ही सन्तोष कर लेता है ॥ १६२ ॥

अर्थात् बहुत दिन साथ रहने का अवकाश न होने पर भी मित्र से दो चार बातें कर लेने से ही मित्र को संतोष हो जाता है।

चतुर्थ अंक

(१७२)

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतारुणपुरस्सर एकतोऽर्कः ॥
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवैष दशान्तरेषु ॥ ३३ ॥

एक तरफ़ तो चन्द्रमा नीचे गिर रहा है और दूसरी तरफ़ अरुण की लाली प्रकट करते हुए सूर्य नारायण ऊपर चढ़ रहे हैं। सूर्य-चन्द्र के एक साथ पतन और उदय को दिखला कर मानो विधाता संसार को यह शिक्षा दे रहे हैं कि सब दिन बराबर नहीं जाते ॥ ३३ ॥

(१७३)

पादन्यासं क्षितिधरगुरोर्मूर्ध्नि कृत्वा सुमेरोः
क्रान्तं येन क्षपिततमसा मध्यमं धाम विष्णोः ॥

सोऽयं चन्द्रः पतति गगनादल्पशेषैर्मयूखै-
रत्यारूढिर्भवति महतामप्यपभ्रंशहेतुः ॥ ३६ ॥

जो पर्वतराज सुमेरु के शिर पर किरण-रूपी चरण रख कर अन्धकार को दूर करता हुआ विष्णुपद अर्थात् आकाश पर चढ़ गया था वही यह चन्द्रमा लुढ़कता लुढ़कता नीचे गिर रहा है। सच है, जो लोग अपनी शक्ति से बढ़ कर काम करने की अभिलाषा करके दुर्लभ पद पर चढ़ने का दुस्साहस करते हैं, वे चाहे जितने बड़े हों, उनका अंत को अवश्य ही अधःपतन होता है ॥३६ ॥

(१७४)

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः ॥
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥ १२६ ॥

बड़े-बूढ़ों की सेवा करो, अपनी सौतों को प्रिय सखी समझो, स्वामी अगर कभी कुछ तिरस्कार भी करे तो कभी क्रोध करके उससे विरोध न बढ़ाओ, नौकर-चाकरों से सहानुभूति रक्खो और भोग-विलास तथा अभ्युदय प्राप्त होने पर अहंकार न करो। ऐसा करने वाली स्त्रियाँ ही 'गृहिणी' के पद को पाती हैं। और जो इसके विपरीत काम करती हैं वे स्त्रियाँ कुल का कंटक होती हैं ॥ १२६ ॥

पञ्चम अंक

(१७५)

क्षणात् प्रबोधमायाति तमसा लङ्घ्यते पुनः ।
निर्वास्यतः प्रदीपस्य शिखेव जरतो मतिः ॥ ४ ॥

बुड्ढे मनुष्य की बुद्धि बुझते हुए दीपक की ज्योति के समान कभी जग उठती है और कभी मैली पड़ जाती है ॥ ४ ॥

(१७६)

भानुः सकृद्युक्ततुरंग एव
रात्रिन्दिवं गन्धवहः प्रयाति ॥
शेषः सदैवाहितभूमिभारः
षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः ॥ ६ ॥

सूर्यदेव एक ही बार के जुते रथ पर चढ़ कर अब तक जगत् में घूम रहे हैं, हवा दिन रात डोला करती है और शेष-जी सदैव अपने शिर पर पृथ्वी का भार धारण किये हुए हैं; प्रजा से उसकी कमाई का छठा हिस्सा 'कर' लेने वाले राजा का भी यही धर्म, अर्थात् कर्त्तव्य, है ॥ ६ ॥

(१७७)

औत्सुक्यमात्रमवसादयति प्रतिष्ठा
क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव ॥
नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम् ॥ ७ ॥

राजपद मिलने से केवल (राजा बनने की) हौस मिट

जाती है, किन्तु मिले हुए राज्य को पालने में दिन दिन कष्ट ही मिलते रहते हैं। अपने हाथ में लेकर लगाई गई छतरी के समान राज्य से सुख तो थोड़ा ही मिलता है, लेकिन परिश्रम बड़ा करना पड़ता है ॥ ७ ॥

(१७८)

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् ॥ ८ ॥

देखो, कड़ी धूप को अपने शिर लेकर ये वृक्ष अपनी छाया से पास आये हुए आश्रित लोगों के ताप को हरते हैं ॥ ८ ॥ मतलब यह कि सज्जन लोग आप कष्ट उठा कर भी दूसरों के—शरणागतों के—कष्ट को दूर करते हैं।

(१७९)

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दा-
न्पर्युत्सुको भवति यत् सुखितोपि जन्तुः ।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥ २५ ॥

रम्य रूप और मीठे बोल सुन कर सुखी जीव भी उनके लिए उत्कंठित होते हैं, इसका कारण यही तो नहीं है कि उस रूप और बोली से उसका पहले का कोई सम्बन्ध रहता है, जिसे वह इस जन्म में भूल जाता है ? मेरी समझ में तो पूर्वानुराग ही इस का कारण है कि उसी रूप और बोली को देख सुन कर मनुष्य मोहित हो जाता है ॥ २५ ॥

(१८०)

भवन्ति नम्रस्तरवः फलोद्गमैः
नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः ॥
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥ ४३ ॥

फल पा कर वृक्ष झुक जाते हैं, पानी-भरे बादल भी झुक आते हैं । इसी तरह अच्छे पुरुष भी सम्पन्न होने पर नम्रता दिखाते हैं । सच तो यह है कि परोपकार करनेवालों का स्वभाव ही ऐसा होता है ॥ ४३ ॥

(१८१)

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां
जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते ॥
अतः समीपे परिणेतुरेष्यते
प्रियाप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः ॥ ६८ ॥

सधवा स्त्री अगर हमेशा अपने पिता के यहाँ रहती है तो, वह चाहे सती ही क्यों न हो, उसके चरित्र के बारे में लोग कानाफूसी करने लगते हैं । इसी लिए कन्या के भाई बाप, वह चाहे पति को प्यारी हो या न हो, उसे उसकी ससुराल में रखने की ही चेष्टा करते हैं ॥ ६८ ॥

(१८२)

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीणां
संदृश्यते किमुत याः परिबोधवत्यः ॥

प्रागन्तरिक्षगमनात्स्वमपत्यजातं
अन्यद्विजैः परभृतः किल पोषयन्ति ॥ ६६ ॥

सीखी और बुद्धिमती मनुष्य-रमणियों की तो बात ही नहीं, पक्षी जाति की स्त्रियाँ भी बिना सीखे—बिना बुद्धि के—स्वाभाविक चतुर होती हैं। कोकिलाओं को देखो, उनके बच्चे जब तक उड़ने के लायक़ नहीं होते तब तक दूसरे (कौए) से उनको पलवा लेती हैं [कोकिलाओं का क़ायदा है कि वे अंडे कौए के झोंझ में देती हैं। कौए अपने ही अंडे समझ कर उनके अंडों को भी सेते हैं। जब बच्चे परदार होते हैं तो वे उड़ कर अपने दल में मिल जाते हैं। कौए और कोयल का रंग तथा आकार प्रायः एक सा होता है] ॥ ६६ ॥

तात्पर्य यह कि स्त्री जाति को चातुरी सीखने की ज़रूरत नहीं, वह स्वाभाविक चतुर हुआ करती है।

(१८३)

आजन्मनः शाठ्यमशिक्षितो य-
स्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य ॥
पराभिसन्धानमधीयते यै-
र्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः ॥ १०७ ॥

प्रायः देखा जाता है कि जन्म के सीधे—छल छंद न जाननेवाले—लोगों की बात तो अप्रमाण (झूठ) मानी जाती है और जो लोग दूसरे को छलना भी एक विद्या (गुण) समझे हुए हैं वे सच्चे समझे जाते हैं ॥ १०७ ॥

(१८४)

उपयन्तुर्हि दारेषु प्रभुता विश्वतोमुखी ॥ ११२ ॥

स्त्री के ऊपर स्वामी की प्रभुता सब तरह है ॥ ११२ ॥

(१८५)

कुमुदान्येव शशाङ्कः
सविता बोधयति पङ्कजान्येव ॥
वशिनां हि परपरिग्रह-
संश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः ॥ ११८ ॥

चन्द्रमा केवल कुमुदिनी को ही खिलाता है, और सूर्य केवल कमलिनी को ही जगाते हैं। जितेन्द्रिय लोगों की चित्तवृत्ति सदा पराई स्त्री से विमुख रहती है ॥ ११८ ॥

षष्ठ अंक

(१८६)

रन्ध्रोपपातिनोऽनर्थाः ॥

छिद्र (असावधानता) में ही अनर्थ होते हैं ॥

(१८७)

हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः ॥ २१६ ॥

हंस दूध पी लेता है और उसमें मिले हुए पानी को छोड़ देता है ॥ २१६॥

सारांश यह कि विवेकी लोग हर एक बात या वस्तु का सारांश ग्रहण कर लेते हैं, और बुरे अंश को छोड़ देते हैं।

(१८८)

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निः
विप्रकृता पन्नगः फणां कुरुते।
तेजस्वी संक्षोभात्
प्रायः प्रतिपद्यते तेजः॥ २३१॥

ईंधन की लकड़ी चलाने से आग जल उठती है, और छेड़ने से नाग फन उठाता है। तेजस्वी पुरुष क्षोभ को प्राप्त होने पर ही अपना तेज दिखाते हैं॥ २३१॥

सप्तम अंक

(१८९)

सिद्ध्यन्ति कर्म्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्॥
किं प्राभविष्यदरुणस्तमसां वधाय
तञ्चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्॥ ६॥

कार्य में नियुक्त भृत्य लोग जो बड़े बड़े काम कर डालते हैं सो सब उनके प्रभुओं का ही प्रताप है। भला अरुण (प्रातः-काल के समय) अन्धकार का नाश कर सकते थे, अगर सूर्य देव उनके पृष्ठपोषक न होते?॥ ६॥

(१९०)

पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते॥ ४९॥

पहले छोड़ी गई भलाई दुःख के रूप में आगे आती है ॥ ४६ ॥

(१६१)

आलक्ष्य दन्तमुकुलाननिमित्तहासैः
अव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन् ॥
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो-
धन्यास्तदङ्गरजसा कलुषी भवन्ति ॥ ७० ॥

अकारण हँसी से कुछ दिखलाई दे रहे दाँतों से मनोहर मुख वाले, और अस्फुट आधे आधे अक्षरों का उच्चारण कर मन को हरने वाले, तथा सदा गोद में रहने के लिए उत्सुक बच्चों को लेकर उनके अंग की धूल से अपने शरीर को मलिन करने वाले लोग धन्य हैं ! ॥ ७० ॥

(१६२)

भवनेषु सुधासितेषु पूर्वं
क्षितिरक्षार्थमुषन्ति ये निवासम् ।
नियतैकयतिव्रतानि पश्चात्
तरुमूलानि गृहीभवन्ति तेषाम् ॥ ८५ ॥

जो लोग जवानी में पृथ्वी की रक्षा करने के लिए अमल धवल महलों में रहते हैं वे ही (राजा) लोग बुढ़ापे में मुनिव्रत धारण कर वृक्षमूल को अपना घर बना लेते हैं ॥ ८५ ॥

(१६३)

स्रजमपि शिरस्यन्धः

क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया ॥ १२७ ॥

अन्धा आदमी माला को भी, ऊपर छोड़ने से, साँप समझ कर उसे फेंक देता है ॥ १२७ ॥

तात्पर्य यह कि भ्रम या कुसंस्कार के कारण अज्ञानी लोग भलाई को भी बुराई समझ कर छोड़ बैठते हैं ।

इति ।

